॥ १ ੴ सतगुर प्रसादि

श्री

प्राण-संगली सटिप्पण

(द्वितीय भाग)

श्री गुरू नानक साहब विरचित प्राणों का अपूर्व कवच

जो

सुरत शब्द-योग साधन प्रसिद्ध अमोघ तारोँ
से रचा हुआ काल कर्म माया कृत्
विघ्नोँ से गुरमुखोँ का सुरक्षक
तथा हितकर है

जिसको

गुरुमुखी अक्षरोँ से भाषा अक्षरोँ मेँ टिप्पण
सहित तय्यार करके गुरू साहब के संक्षिप्त
जीवन-चरित्र समेत संत सम्पूरण सिंह
ने प्रेम प्रसाद रूप से
अर्पण किया

जिसे मालिक बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद ने अपने ख़र्च से
अपने यंत्रालय मेँ प्रकाशित किया।

Allahabad:

PRINTED AT THE BELVEDERE STEAM PRINTING WORKS,
BY E. HALL.

1913.

प्रथम बार १०००]

[दाम १)

निवेदन

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जक्त-प्रसिद्ध महात्माओं की बानी व उपदेश को जिन का लोप होता जाता है बचा लेने का है। अब तक जितनी बानियाँ हम ने छापी हैं उन में से बिशेष तो पहिले छपी ही नहीं थीं और कोई २ जो छपी थीं तो ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या छेपक त्रुटि या ग़लती से भरी हुईं कि उन से पूरा लाभ नहीं उठ सकता था।

हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ ऐसे हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकर शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नक़ल कराके मँगवाये हैं और यह कार्रवाई बराबर जारी है। भर सक तो पूरे ग्रंथ मँगा कर छापे जाते हैं और फुटकर शब्दों की हालत में सर्व साधारण के उपकारक पद चुन लिये जाते हैं। कोई पुस्तक बिना कई लिपियों का मुक़ाबला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी जाती, ऐसा नहीं होता कि औरों के छापे हुए ग्रन्थों की भाँति बेसमझे और बेजाँचे छाप दी जाय। लिपि के शोधने में प्राय: उन्हीं ग्रंथकार महात्मा के पंथ के जानकार अनुयायी से सहायता ली जाती है और शब्दों के चुनने में यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि वह सर्व साधारन की रुचि के अनुसार और ऐसे मनोहर और हृदय-बेधक हों जिन से आँख हटाने को जी न चाहे और अंत:करन शुद्ध हो।

कई बरस से यह पुस्तक-माला छप रही है और जो जो कसरें जान पड़ती हैं वह आगे के लिये दूर की जाती हैं। कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत नोट में दे दिये जाते हैं। जिन महात्मा की बानी है उन का जीवन-चरित्र भी साथ ही छापा जाता है और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उन के संक्षेप बृत्तांत और कौतुक फुट-नोट में लिख दिये जाते हैं।

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

सूचीपत्र

श्री प्राण-संगली दूसरा भाग

पृष्ठ

पृष्ठ

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ निवेदन ॥

श्री प्राणसंगली क्या वस्तु है और कहाँ पर किस प्रकार से इसकी प्रगटता हुई यिह संपूर्ण वार्ताएँ इस ग्रंथ के प्रथम भाग मैं इतिहासिक कथन से स्फुट कर दी गई हैं। उतथा-निका प्राणसंगली मैं अलबत्त किंचित भेद द्रिष्ट आया था, जिसके विषय मैं भेद का कारण निवेदन करने मैं शीघ्रता से चूक रहि गई।

जीवन चरित्र श्रीगुरू नानक साहब जी, जो कि प्रथम भाग मैं उक्त ग्रंथ के प्रारंभ मैं है, उसका बहुत सा निर्भार श्री नानक प्रकाश तथा इतिहास गुरू षालसा पर है; अर्थात् इन्हीं ग्रंथोँ के आधार पर जीवन चरित्र लिखा गया था। उसकी तय्यारी के पश्चात जो कि श्री प्राणसंगली का समग्र ग्रंथ हमको प्राप्त हुआ था, उसमैं की उतथानिका प्राय: हमने नहीं सुणी हुई थी जिसकी सत्यता की खोज मैं भारी यत्न के साथ प्राचीन तथा प्रमाणित हस्त लिखित श्रीगुरू महाराज जी की जन्म साखी से पड़ताल की गई। अतिरिक्त जिसके पंजाब पबलिक लायब्रेरी-लाहौर मैं भी एक पुरातन हस्त लिखित अक्सी जन्म साखी से भी पड़ताल कर ली गई थी।

यद्यपि इस प्रमाण भूत उतथानिका के आगे हमारे लिखे जीवन चरित्र गत उतथानिका अपूर्ण थी, तथापि समयानुसार अपने ढंग की उसे भी पूर्ण ही समझ कर रहने दिया। और असल उतथानिका पंजाबी भाषा मैं होने के कारण उस पर फुटनोट देकर सरल भाषा मैं उसका आशय स्पष्ट कर दिया। नानक प्रकाश आदि ग्रंथकर्त्ताओं को या तो समय पर यिह

उत्थानिका प्राप्त नाँ हुई होगी, या मिलने पर भी वर्तमान काल की कुतार्किक बुद्धियौं को अनुमान करके, उन्हौंने इसका उपयोगी सारांश ले लिया होगा। सो हम अपनी निसंशयता प्राप्ती के बिचार को यहाँ निवेदित करके आशा करते हैं कि द्विबिध उत्थानिका मैं संशयापन्न पाठक भी अब संशय से रहित हो जावेंगे।

कई एक गुरमुखौं को यिह पूछने का भी अवसर मिला है कि इतने बड़े परिस्रम के साथ इस परम पवित्र ग्रंथ को मँगाकर भी फिर स्री गुरू अर्जुनदेव जी ने इसे स्री गुरू ग्रंथ साहब की बीड़ मैं क्यौं नाँ गुंथन किया? जिसका उत्तर हमारी तुच्छ बुद्धि मैं यिह स्फुरता है कि यावत् परमार्थी विद्या है सो दो प्रकार की है:-- एक शास्त्रीय अर्थात् किताबी और दूसरी हारदिक अर्थात् जिसका संबंध हृदय ही के साथ रहता है, भाव क्या कि एक सर्बत्र अधिकारी मात्र के कृतार्थ कर्त्ता उपदेश होते हैं, दूसरे किसी विशेष अधिकारी के नमित्त उच्चारे गए बचन। सो स्री गुरू ग्रंथ साहब के परम गंभीर तथा अत्युच्च विशाल अनुभव वान अमृत मई बचन बहुत करके सर्ब देश, सर्ब काल तथा सर्ब अवस्था मैं सर्ब प्रकार के अधिकारियौं की शिष्यक कोटी के हैं, प्रंतु स्वसंबेद्यात्मक तथा पिंड ब्रह्मांड और इनके पार पारावार रहित भेद दर्शा-यक स्री प्राणसंगली की अमोलक बाणी ब्यर्थ टेकौं मैं फँसे हुए, कर्म धर्म आदि आचार को ही कल्याण मूलक मानकर (उन मैं) प्रबृत्त तथा आदि पुरुष से भ्रांत, अपने रत्न जन्म को बृथा गँवाते पड़े राजा शिवनाभ जी जैसे, पूर्णत: तन मन धन को सतिगुरौं के नाम पर वार देने वाले अनन्य अधिकारियौं के नमित्त ही विशेष करके उच्चारण हुई है। इस कारण स्री गुरू ग्रंथ साहब के साथ स्री गुरू पंचम साहब ने इसे सहबासित नहीं ठहिराया॥ इसमैं दूसरा हेतु यिह भी

जान पड़ता है कि इस ग्रंथ मैं कहीं २ बीच २ ऋद्धि सिद्धि आदि प्राप्ति के विशेष २ उपाव निरूपित हैं, जिन से कि कलियुगी लोगौं के प्रवृत्ति मार्ग मैं ही बारंबार गिरते रहने की संभावना हो सक्ती थी; जिस करके कि केवल भगवंत प्रायण करने मैं ही उद्यत गुरबाणी की बीड़ के योग्य इसे नाँ समझा गया ।

तीसरा कारण और भी है:-श्री गुरू ग्रंथ साहब बिबेक वैराग्य, भक्ति योग तथा ज्ञान आदि गुह्य रत्नौं का भंडार है, जिस पर मुंदावनी की मोहर छाप का ताला गुरू साहब ने लगा दिया है, सो जिस प्रकार एक चाबी तो षज़ानची के पास होती है और एक षास सरकारी चाबी 'प्रबंधक षज़ाना अथवा स्वयं कलकटर के पास' इसी प्रकार इस गुरमत गुह्य भंडार की चाबी एक तो षज़ानची सरूप भाई गुरदास जी के पास उनकी ही बाणी है और दूसरी सरकारी चाबी श्री प्राण[१] संगली है । चाबी ताले के साथ हर समय भला कब लग सक्ती है । सो जो कारण भाई गुरदास जी की बाणी को बीड़ मैं नाँ गुंथन करने का है, वही कारण प्राणसंगली को उससे प्रथक रखने का समझना चाहिये ।

चौथा कारण और भी प्रकट करना कुछ आवश्यक प्रतीत होता है:-जिस प्रकार राजधानी के अनेक प्रकार के कार्यौं का पसारा होने से प्राय: कोई न कोई बखेड़ा पड़ा ही रहता है, जिनके शांत करने के वास्ते बहुत करके कमिश्नैं बैठा करती हैं, इसी प्रकार संसार भगवंत की राजधानी है-जिसमैं काल और काल की सेना द्वारा अनेक प्रकार के अध्यात्मक आधिदैविक आदि बखेड़े खड़े किये जाया करते रहते हैं जिनसे

(१) जोकि "संतन हथि राखी कूंजी" इस गुर प्रमाण पूर्बक उस कर्त्तार के चरणाऽनुरागी सच्चे संतों के हाथ दीगई है-जिसका समाचार ग्रंथ की समाप्ती पर जाकर विदित होगा ।

अपनी प्रजा को पीड़ित पाकर (ऐसे अवसरोँ पर) नित्य, नमित्त अवतार भेजकर भगवंत भी अपनी नेत म्रयादा की द्रिढ़ स्थिरता का प्रबंध करता रहता है। प्रंतु कभी ऐसी भयंकर दशा मैँ जीव ग्रस्त हो जाते हैँ कि सर्वत्र भूमि आकाश पाप रूपी मेघ से आच्छादित हो जाने करके धर्म का सूर्य महान अश्रद्धा मई स्याम घटा टोप मैँ ऐसा लोप हो जाता है कि कथन चिंतन तक को भी अविकाश नहीं रहता। उस काल समय पर अकाल पुरुष अपने दिव्य तेजोमई विशेष अंश को संत सरूप प्रगट करके भेजता है; जैसा कि अपने से परम तेजोमई अपूर्ब निजरूप दिव्य अंश को परम संत स्वरूप प्रगटा कर (भाई गुरदास साहब के बचन अनुसार "गुर नानक जग माहि पठाया" अवतार सम काल ही गुरू रूप मैँ गुरू नानक साहब को भेजा। जिन्होँ ने कि वाईसराय के सपेश्ल इजलास वत् शिवनाभ से आदि लेकर गुप्र प्रगट सिद्धौँ के साथ सपैश्ल कौंसल करते हुए प्राण संगली रूप गुप्त प्रमार्थी कोड निरमाण की। जो कि इत्तर पद्धति ग्रंथोवत उस समय मैँ गुरमत की गुप्त पद्धति रूप आद ग्रंथ था सो जिस प्रकार Law Codes (ला कोडज़) अर्थात् कानूनी पद्धतियाँ या जिस भाँत मतौँ के पद्धति ग्रंथ सदैव काल से गुप्त ही रखे जाते हैँ, इसी प्रकार उस काल मैँ इस ग्रंथ का भी गुप्त रहना ही गुरू साहब ने उचित समझा। क्योँकि विशेष काल पाकर राजधानियोँ के बखेड़े शांत हो जाने पर वुह गुप्त कानून भी प्रगट हो जाया करते हैँ, इस वास्ते (तब) गुरमत का इतना विशेष प्रचार नाँ होने तथा साधारण लोगौँ के इसका गूढ़ आशय समझने मैँ असमर्थ होने आदि कारणौँ से इतना काल प्रयंत जिसका गुप्त रहना ही श्रावश्यक था; अब जीवौँ की बुद्धियौँ को गुरमत का पूरा महत्त समझते तथा इसमैँ प्रबृत्त देखकर गुरू साहब की अंतरीव आज्ञा से ही (गुरमुखी अक्षरोँ

से देवनागरी मेँ हो कर) इसको प्रकाशित होने का अवसर मिल रहा है ता कि गुरमुख जन गुरू साहब के गुप्त भेदोँ से भी अनवगत अर्थात् अनजान नाँ रहेँ। आशा है कि प्रेमी जन अवश्य करके ही इससे अपने परम प्रयोजन को सिद्ध करेंगे।

बहुत से सज्जन यिह पूछते हैँ कि प्राणसंगली रचना काल मेँ 'प्रथम' किन अक्षरोँ मेँ थी इसके उत्तर मेँ यिह निवेदन है कि स्री गुरू ग्रंथ साहब की बीड़ तीन भाँत की है:- एक पंचम पातिशाही स्री गुरू अर्जनदेव जी की (कर्तारपुर वाली बीड़) दूसरी दशम पातिशाह स्रीगुरू गुरू गोविंद सिंह साहब जी की (दमदमे साहब वाली बीड़), और तीसरी भाई बन्नो साहब की (माँगट वाली बीड़)। इस तीसरी बीड़ में उक्त भाई साहब ने प्रथम बीड़ पर से उतार कराते समय पंचम पातिशाह जी की आज्ञा के बिनाँ ही, दो तीन अध्याय प्राणसंगली के शामिल कर दिये थे। प्रंतु अपने अनन्य सेवक की प्रेममई परोपकारी प्रवृत्ति पर उस बीड़ की प्रवानगी की मोहर लगाते हुए स्री गुरू महाराज ने उसको खारी बीड़ के नाम से संबोधन कर दिया था। जिस करके आज प्रयंत सर्वत्र गुर सिक्खोँ मेँ उसकी प्रवृति नहीं होने पाई। उसी बीड़ मेँ प्राणसंगली के आरंभ मेँ यिह नोट (Note) लिखा हुआ है कि यिह प्राणसंगली तोरकी अक्षरोँ से लिखी गई; (किसी एक प्रति पर लिखारी से यिह नोट छूटा हूआ भी द्रिष्ट आया है) जिससे अनुमान होता है कि प्रथम यिह ग्रंथ तोरकी अक्षरोँ मेँ ही लिखा गया होगा। स्वयं स्रीगुरू नानक देव जी का बचन भी इस बात का सूचक प्रतीत होता है, जो कि उपदेश समाप्ति पर उन्होँने आज्ञा रूप मेँ राजा शिवनाभ से कहा था "जब पंजाब से हमारा कोई सिक्ख यिह ग्रंथ लेने आवे तो इसे लिखवा देना"। जैसा कि स्रीगुरू अंगद साहब दूसरे पातिशाह के समय का प्रसिद्ध (आद)

लिखारी भाई पैड़ा ही संगला दीप मैं भेजा गया था जो कि ग्रंथ को लाया। संभव है कि वोह तोरकी अक्षरौं से ही गुरमुखी मैं लिखकर लाया होवे। यिह कारण उस काल मैं गुरमुखी अक्षरौं की अप्रगटता से; पश्चात गुरमुखी अक्षरौं मैं आने का है।

कई एक पाठकौं को यिह भी संशय है कि संगला दीप की यिह बोली ही नहीं थी, संभव है कि गुरू महाराज जी ने स्वात्म संवेद्य शक्ति से प्रथम उसी बोली मैं ही वारतिक उपदेश किया होवे और पश्चात् अपनी देशी बोली की कविता मैं इसे ग्रंथ के रूप मैं गुंथन कर लिया हो। यदि यिह निश्चय हो भी जावे कि इसी रूप मैं ही प्राणसंगली की रचना हुई, भला विदेशी लोग विदेशी वाक्य रचना मई उपदेशौं को समझ कैसे जाते थे; जब कि देशी लोग भी देशी बोली की कविता मई शिष्याऔं को समझने वाले बहुत विरले होते हैं।

इतिहास के यत्किंचित जानकार को भी तो ऐसी बातैं बहुत बड़ी नहीं द्रिष्ट आतीं, प्रंतु प्रश्न कर्त्ताऔं को उत्तर देना आवश्यक है:-

जिस २ देश मैं श्रीगुरू साहब गए हैं, ग्रोष्टियैं उसी उसी देश की बोलियौं मैं ही उन्हौंने की हैं प्रंच जब उपदेश मैं प्रवृत होते थे तब सर्ब साधारण (अपनी) बोली की कविता मैं ही उपदेश उच्चारण किया करते थे। और प्रायः गुरू साहब का उपदेश ब्यवहार होता ही कविता मैं था। साखी मक्का मदीना और शेष शर्फ की गोष्टि इस मैं प्रमाण है-क्योंकि इन मैं अरबी तथा फारसी बोली मैं तो गोष्टि रही है, प्रंतु ज़हाँ २ पर उक्त गोष्टियौं मैं शब्द उच्चारण उपयोगी प्रतीत हुआ वहाँ पर श्री गुरू ग्रंथ साहब वाली बाणी मैं ही शब्द उच्चारण किये गये हैं। हाँ! देश काल के अनुसार विदेशानुसारी शब्द

कई एक शब्दोँ मैँ अवश्य आजाते रहे हैँ। और कहीँ पर विदेशी बोली मैँ ही शब्द उच्चारण करके अंतिम सिद्धांत की पंक्तियोँ का अपनी बोली मैँ कथन किया है।

आज कल्ह के लोगोँ को यद्यपि सहज सुभाव किसी का कविता बोलते जाना एक आश्चर्य कारी बात जान पड़ती है किंतु इतिहास वेत्ताओँ की द्रिष्टि मैँ यिह एक साधारण (अभ्यास की) बात है क्योँकि उस समय मैँ तो सरकारी दफ-तरोँ तक की काररवाई तथा चिठी पत्री आदि का व्यव-हार भी प्राया: कविता मैँ ही हुआ करता था। पिछले समयोँ का प्रभाव आज प्रयंत भी भारत बर्ष मैँ देखने मैँ आता है कि नगरैाँ तथा ग्रामोँ के बच्चे भी गलीओँ कूचौँ तथा खेतौँ मैँ स्वरचित गीत गाते फिरते द्रिष्ट आया करते हैँ। जब भारतवर्ष के बच्चोँ तक मैँ अब प्रयंत अैसा विद्या के बीज संसकारोँ का प्रभाव द्रिष्ट आता है तो पूर्ण योगीराजोँ तथा पूर्ण कवियोँ के आगे यिह कौन सा दुर्घट कार्य हो सक्ता है जिसमैँ कि पाठकोँ को संशय का अवसर मिले। अतयेव इस बात का प्रमाण कि प्राणसंगली इसी प्रकार से उपदेश की गई और साथ साथ ही लिखी जाती रही, आपही (स्वयं) यिह ग्रंथ है।

और यद्यपि भाई मन्मुख जी (जिनका वृत्तांत प्रथम भाग मैँ आ चुका है) संगलादीप मैँ बहुत काल रहे; और शिवनाभ आदि लोगौँ का उनके साथ सत्संगादि व्यवहार का परचा रहा। जिन से राजा शिवनाभ ने (उनके वहाँ होते ही) बहुत सी गुरबाणी कंठ भी कर'ली थी; जिससे गुरबाणी का आशय समझने तथा पंजाबी बोली को समझ सकने का 'उसके' उचित अभ्यास का अनुमान किया जा सक्ता है; तथापि जहाँ गुरू महाराज के तेज प्रताप तथा कृपा कटाक्ष संयुक्त सतय संकल्प से उनमत्तौँ, गूँगोँ तथा श्वान आदिकोँ

को शास्त्र अर्थ करने की शक्ति प्राप्त होती रही है और ऐसे शास्त्रार्थों में बड़े २ पंडितों तथा विद्वानों को भी हारना पड़ा तो राजा शिवनाभ जैसे परम प्रेमी तथा तन मन धन वारने वाले अनन्य सेवकों को फिर उनके अपनी बोली में बोले हुए शब्द समझने की शक्ति भला कैसे नाँ हो सक्ती।

कुछ भी हो—जो कुछ असली भेद है कर्त्तार जाने या श्री गुरू नानक देव जी आप। हम को जैसा इतिहास से पता मिला और जिस प्रकार हमारे अपने वीचार में तुला, प्रिय पाठकों के आगे निवेदन कर दिया है। जिनको तसल्ली नाँ होवे उनकी बुद्धि की मौज। गुरबाणी के आशय के साथ ज्यों की त्यों मिलती हुई और कहीं २ साँगो पाँग (किसी) "दक्षणी ओअंकार" आदि बाणी की प्रदर्शक होती हुई यिह अमोलक रत्न रूपी पुस्तक पाकर चाहे अपने नर जन्म को इससे सफल करें चाहे नाँ। सेवक को सेवा से प्रयोजन है। आगे सब की अपनी मौज।

"सेवक को सेवा बनि आई। हुकम बूझि परम पद पाई॥
इसते ऊपर नहीं बीचार। नानक गुरमुख नामु जपीऔ इकबार॥"

प्राणसंगली के विषय में पूर्व उक्त प्रश्नों से सिवाय हमारे साईन्स वेत्ता पाठकों को यिह भी प्रेरणा हुई कि इस गूढ़तम ग्रंथ के आशय को साईन्स के नियमों अनुसार फुटनोट (टिप्पण) चढ़ा कर स्फुट करणा बहुत ही लाभदायक होगा और साथ ही इसके सिद्धांत को परिपाटीवार दिखलाने का यत्न करना चाहिये जिससे कि बहुत ही बड़ा लाभ प्राप्त होने की आशा हो सक्ती है।

निसंशय यिह बात सत्य है कि यदि ऐसा यत्न किया जावे तो आधुनिक विद्वान तृप्ति को प्राप्त हो सकेंगे, प्रंतु इसमें यिह विचार करके हमें साहस नहीं पड़ता कि ऐसे ढंग पर प्रकाशित होकर यिह ग्रंथ फिर गुरमुख जनों के वास्ते इतना

गुणकार नहीँ रहि सकेगा, केवल साईन्सवेता ही इससे सलाभ हो सकेँगे। क्योँकि साईन्स के नियमौँ अनुसार कही हुई कोई बातँ उतना काल प्रयंत साधारण श्रोताओँ की समझ मेँ ही नहीँ आ सक्तीँ जब तक कि एक लम्बा व्याख्यान देकर अथवा किसी बिजली आदि की कल या विशेष द्रव्यौँ की सहायता लेकर उसको प्रत्यक्ष करके (Practically) नाँ दिखलाया जावे। तिस पर भी साईन्स विद्या उस विद्या का नाम है जिसकी सहायता से सांसारिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात दृश्यवर्ग (Visible World) के ज्ञान मेँ कारण विद्या का नाम साईन्स है। और प्राणसंगली का सिद्धांत तो दृश्य से सिवाय अदृश्य तथा अदृश्य से पारपद को निरूपण करता है; इस वास्ते साईन्स इसके प्रतिपादन करने मेँ हम असमर्थ समझते हैँ। परिशेषते इसके सिद्धांत का परिपाटीवार करना भी हारदिक विद्या के नियमौँ से विरुद्ध है; क्योँकि यिह विद्या करणी की है नाँ कि कथनी की "जो खोजे से पावे।" जो खोज करेगा उसको स्वयं बीच मेँ से 'परिपाटी' हाथ लग जावेगी। इस कारण हम मजबूर होकर गुरू महाराज जी वाले ब्यवहार को ही द्रिष्टीगोचर रखे रहिना अधिक लाभदायक समझते हैँ। क्यौँकि बेद शास्त्रादि प्रतिपादित रहस्य के संस्कृत भाषा मेँ निबद्ध होने के कारण ही गुरू साहब तथा कबीर साहब आदि आचार्योँ ने अपनी देशी भाषाओँ मेँ परमार्थ तत्त्व को निरूपण किया था जिस करके कि हर एक अधिकारी, परमार्थी धन से माला माल हो सके। और यही कारण था कि उन्हौँने पुरातन प्रमाणोँ (Authorities) को भी यथा शक्ति अंगीकार नाँ करके लौकिक प्रमाण अथवा लोकाचार प्रवृत्त शब्दोँ को ही मुख्य रखकर आत्मिक गूढ़ रहस्य को, लोगोँ के हृदयौँ मेँ आरूढ़ कराया था।

अपने आपको तारकिकोँ से अविद्यवान आदि संबोधनें से पुकारे जाना तो उन्होँने स्वीकार किया प्रंतु अपनी स्वात्म संवेद्य शक्ति से परसंवेद्यादि भावोँ से अगोचर परम उच्च सिद्धांन्तोँ को निरूपण करते हुए (अंतर्यामिनी दैवी शक्ति से संस्कृत आदि उच्चारण मेँ सर्ब भांत समर्थ होकर भी) उन्होंने वह असाधारण बोली नहीँ बोली; वरन सर्ब साधारण बोली मेँ ही उपदेश किया है। यिह भी एक कारण था कि प्राण-संगली की रचना संगलादीपी बोली में न की। अत्येव हम भी उनके मार्ग पर चलते हुए साधारण ढंग पर उनके आशय को प्रगट करने के उद्देश्य पर आशावान हैँ कि इत्तर प्रमाणोँ की अपेक्षा को उपेक्षित करके, सर्ब संमत हाडबीती बातोँ पर निरभर टिप्पणियोँ से गुरू महाराज के आशय को स्फुट करके आतम विद्या के खोजियों को अहिलाद प्राप्त करें। सो आशा है कि शब्द योग अनुसारी हारदिक आतम विद्या के गूढ़ आशय जानने के अभिलाषि संपूर्ण पाठक जन सहज योग की गुप्त तम विद्या को प्राप्त होकर Practical Knowledge (करणी ज्ञान) द्वारा अपनी उत्तम जज्ञासा को अवश्य पूर्ण करेंगे।

॥ वाह गुरू सहाय ॥

गुरमुखजनों का हिताऽभिलाषि,

संपूर्ण सिंह

भाषा टिप्पणकार
तरन तारन—(पंजाब)

नोट—प्रथम भाग गत (श्रीगुरू महाराज जी के) जीवन चरित्र सफा ३२ पर श्रीगुरू हरिगोबिंद साहब जी छठम पतिशाह के साहबज़ादे का नाम भूल से "बाबा बूढा जी" छपा रहि गया है। कृपा करके उसे बदल कर "बाबा गुरदित्ता साहब जी" कर लीजियेगा।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री प्रा ॥ संगली

भाग दूसरा[1]

॥ अध्याय ८ ॥

॥ श्लोक ॥

कलका पद दुनिया पढ़ै संता नाही छेद ।
नानक संत बिहंगमी जिन सतिगुर दित्ता भेद ॥१॥

॥ राग गौड़ी महला १ ॥

॥ रंगमाला जोगनिधि ॥

आगासी[2] सरु भरिआ नीर । तामहिं कवलु बहुत[2] बिस्थीरु ॥
भौरा लुभधा ताँ की गंध । नानक बोलै बिषमी[2] संध ॥१
बारह[3] सोलह समकरि गहै । आसणु सहजि निरालमु बहै ॥
चेतंन्नि डोरी गुडी लावै । नानक कहै जोग इऊँ पावै ॥२।
मेरु डंड सूधा करि राखै । गुर प्रसादि अंम्रित रसु चाखै ॥
दोने शराइ[4] इकठी धरै । नानक बोलै जीवत मरै ॥३।
उलटै पौण[5] पलटै काया । शब्दि अनाहद शब्दु बजाया ॥
धुनि अंतरि मनु राखै[6] थीरु । नानक बोलै अऊलि[7] फकीरु ॥४।

---

(१) गुरू साहब ने इस ग्रंथ को भिन्न २ भागों में नहीं बांटा। यह बांट पाठकों की सुगमता के वास्ते हम ने की है। (२) आकाश में एक सरोवर है जल से भरा हुआ उसमें एक कमल है बड़े भारे विस्तार वाला—उसकी सुगंध में मन भौरा लुभायमान हो रहा है। गुरू साहब कहते हैं कि दूर नहीं बस बिषमी संधि=सुषमनाःघाट में यह सभ कुछ कहा है॥ नेत्रों में पानी भरा हुआ है उसका भंडार (इनके पीछे) आकाश सरोवर है—उस तीसरे नेत्र मेंःप्रवेश करे तो बिस्तारवान सहस्रदल कमल प्राप्त हो जाता है उस में मगन रहे। (३) बारह राशि का सूय हाता है सालह कलह संपूर्ण चंद्रमा की होती हैं सो इन दोनों को एक घर निज भंडार में स्थित कर देवे। अर्थात् (४) इंगला पिंगला रूप दृष्टिगत दोनों नाड़ियों को बाम दक्षिण ओरःसे एक ठौर मिला देवे। (५) पूरबोक्त रीति से नाम सहित पवन को उलटता पलटता रहे तो इस शब्द के प्रभाव से अनाहद शब्द प्रगट होगा। (६) उसकी धुनि के बीच मन स्थिर रक्खे। (७) गुरू साहब—औलिया संत—कहते हैं। भाव (हम) यथार्थ कह रहे हैं॥

बंधिआ[१] अबंधु उछलै नीरु । वणु तृणु हरीआवलु[२] मन थीरु ॥
नानक बोलै ब्रह्मज्ञानि । कोई ज्ञानी होय सो लए पछानि ॥५॥
अउघट[३] घाटि निरालम जोति । दीपक बिन उजीआरा होति ॥
खिसै[४] न बाटी घटै न तेलु । नानक बोलै इहु पूरा खेलु ॥६॥
आसणु[५] धरती धुणि अकाश । उर्ध[६] कमल मुखि कीआ बिगासु ॥
जिनि चाखिया तिसु आया स्वादु । नानक बोलै इहु बिसमादु ॥७॥
उलटा बानु गगन कौ लाइआ । चंचल मिरगु मारि घरि आया ॥
रंगि महलि बैठा सिकदारी[७] । नानक बोलै लागी तारी ॥८॥
गुर का शब्द गहै हथि बानु । चंचल मिरगु न देई जानि ॥
मिरगा[८] मिरगी दोनो बंधि । नानक बोलै बिषमी[९] संधि ॥९॥
पाताली[१०] रसु गगन चढ़ाया । तातैं सहजि पलटी काया ॥
गगन गाय दुहि पीता क्षीर । नानक बोलै चंचल थीरु ॥१०॥
उन्मनि कला धरै नित जोति । बिनु दीपक उज्यारा होतु ॥
देखै बिगसै आपन आपु । नानक बोलै इऊँ मिटै संतापु ॥११॥
इकतु[११] घरि आवै चंद अरु सूरु । पंचाँ मरदे रहै हजूर ॥
दूजै अंगि न लाए चीता । नानक बोलै इहु गढु जीता ॥१२॥
आसा मनसा सगली परहरै । ऊचै[११] घरि ले मनूआ धरै ॥
निर्मल जोति सर्ब कल्याण । नानक बोलै इहु पदु निरबाणु ॥१३॥
लिव लागी मनूआ ठहराय । पछम वाटि नगरि सुधिपाय ॥
नगरी बैसि त्रिबीणी न्हाया । नानक बोलै रुन्नी[१२] माया ॥१४॥

---

(१) ऊपरोक्त खुला हुआ जल जब बंद किया जाता है तो उछलता है (बज्र किवाड़ भेदन होते हैं)। (२) सहसदल स्थान की निशानी दी है। (३) ऊपरले घट की (इस) घाटी में अथवा इस दुर्गम घाटी में निरालंब जोति प्रकाशित है। (४) छिजती नहीं, क्षीण नहीं होती। (५) नासका का मालिक पृथ्वी तत्त्व का देवता है सो नासका मूल पृथ्वी (तिल-तीसरे) पर अपना आसन स्थित रक्खे। और अपनी धुनि का ध्यान आकाश (ऊपर) को रक्खे तो। (६) नभ कमल बिकाशिता को प्राप्त हो जाता है। (७) शिरदारी (मालकी) को प्राप्त होकर। (८) मन, इंद्री (९) सुष्मना घाट में (१०) शरीर का सार जो अपने स्थान से पतित होता हुआ इंद्री द्वारा व्यर्थ जाता था, जब गुरू उपदिष्ट युक्ति अभ्यास से ऊपर चढ़ा लेता है अर्थात् गिरने नहीं देता। (११) तीसरे तिल तथा सहसदल से भाव है।(१२) ऐसा अभ्यास आरंभ करतेही माया रो पड़ती है।

शब्दु असरूप[1] रूप बहु कीये । जिनि सुणिआ ते जीवति मूए ॥
अहि निशि डोरी ऊचै खंडि । कहु नानक गुंगे ज्यौं खंडु ॥१५॥
किह[2] बिधि चंदु भवनि आवै इहु भानु। किँह बिधि मरदह मनको मान
किँह बिधि पद[3] महिँ पिंडु समाय। कहु नानक तब मनु पतीआय॥१६
पूर्ब[4] फिरि पच्छम कौ तानै । अजपा जाप जपै मनु मानै ॥
अनहत सुरति रहै लिवलाय । कहु नानक पद पिंड समाय ॥१७॥
ज्यौं सुगंधि पुहप महि आही । इऊँ करि रामु रमै जग माँही ॥
जे को ठौर बासु की पावै । कहु नानक समझै समझावै ॥१८॥
द्वादशि[5] उलटै पीवै नीति । गुर साषी सुनि राखै चीति ॥
निरभऊ[6] नगरि करै जाय बासा। नानक मिटी है सगल पिआसा॥१९॥
मनु पवना दुइ सदा अजीत । इन कऊ जीतै तऊ परतीति ॥
महरम महलि न ठाका पाय । नानक ताँ कौ मिलै कवाय[7] ॥२०॥
पिंड माँहि[8] ब्रह्मंड समाना । जिनि जाना तिनि गुरमुखि जाना ॥
गुर की साषी राखै चीति । नानक गुर मिलि सदा अतीत ॥२१॥
चोर करै नित नगरी चोरी । अहि निशि मूसहि[9] भेदु न होरी[10] ॥
गुर शब्दी फेरै ढंढोरा[11] । नानक इहि बिधि समझहि चोरा ॥२२
अहिनिशि जूझै कबहूँ न भागै । नौघरि ताला दशवैं जागै ॥
काल[12] बसेरा होय उदासु । नानक पावै तो घरि बासु ॥२३॥

(१) सत्य सरूप शब्द ने स्थान (मंडल) भेद से अपने बहुत रूप प्रगट किये हैं। (२) किस युक्ति से इहु भानु (सूर्ज), चंदु भवनि (सुरत कमल में) आवै। (३) चरण=सहस-दल कमल, पीछे कह दिया है। (४) प्रश्न का उत्तर गुरू साहब देते हैं—यह अर्थ तो पीछे कर दिये हैं। (५) नेत्रों का मालिक सूर्य है और द्वादश शब्द से यही सूचित है। (६) अनभउ नगर; त्रिकुटी में भी अनुभव खुलता है। (७) पोशाक, खिलअत, प्रेम पटोला। (८) गुरू, भेदी मिलें तो ब्रह्मन्ड का संपूर्ण भेद अंदर दृष्टि आजाता है। (९) चोरी करते हैं। (१०) गुरमुख बिना और किसी को पता भी नहीं लगता। (११) मिनादी, दुहाई। (१२) पिंड ब्रह्मन्ड में काल का निवास है। पिंड से सुरति को निकाल कर ब्रह्मन्ड में ले जावे और वहां की रचना में ना फस जावे क्योंकि यहां प्रयंत काल का ही राज है जब तक एक राजा की हद्द में रहें उसका कर (हाला) सभ कुछ देना पड़ता है जब और राज में चले जांय तो प्रथम राजा का कुछ बश नहीं चलता। सो जीव प्रदेशी है काल की राजधानी में आय बसा और दुख पारहा है परदेश त्यागे तो निज घर में निरभय बास पावे। तभी ही गुरूजी ने कहा है कि "त्रिकुटी फूटी निज घरि बास" सो त्रिकुटी ब्रह्मन्ड है नीचे सहसदल कमल तक पिंड है दोनों काल मंडल हैं।

निर्मल[१] नीरु अडोलु अथाहु । गुर पूरे मिलि पाया राहु ॥
इह सरि न्हाय निर्मल जनु होय । नानक मैलु उतारै धोय ॥२४॥
पानी[२] पवनु अगनि घरु पावै । इनकौ साधै तब साधु कहावै ॥
इनकौ साधि करै मनु रास[३] । नानक ऊचे घरि ताँका बासु ॥२५॥
अवधू ता के सुणि लै लक्षण । खिंथा झोली पंच बिचक्षण[४] ॥
गुर सीती आपे पहिराई । नानक राखै सो गुरहाई[५] ॥२६॥
दिष्टि न दीसै अरु मुष्टि न आवै । रहीअै संगि मरीअै नित्त हावै[६] ॥
जे गुर मिलै ताँ अलषु लषावै । नानक फिरि कै चोट न खावै ॥२७
सोहं हंसा[७] जाँ का जापु । इहु जपु जपै बढ़ै परतापु ॥
अंभि[८] न डूबै अगनि न जरै । नानक तिँह घरि बासा करै ॥२८॥
निरभउ मिलै भउ सगला जाय । उलटा मनु मनसा कौ खाय ॥
धरती[९] उलटि चढ़ी असमानि । नानक गुरमिलि सभुसचु जानि २९
कुंचर[१०] चीटी कै पगि बाँधा । गहि[११] गंडीर उलटि सरु साँधा ॥
मूसै मिंजारी[१२] बशि कीनी । नानक गुर मिलि उलटी चीनी ॥३०
गुर का शब्दु जाँकै मनि बसिआ । रोमि रोमि अंम्रित रसु रसिआ ॥
अहिनिशि कबहूँ न खूलै तारी । नानक माता[१३] सदा षुमारी ॥३१॥
अहिनिशि शब्द अनाहदि राता । रसीअै रसु पीआ रसुमाता ॥
ऊचै खंडि रहै लिवलागी । नानक कहीअै से बैरागी ॥३२॥

---

(१) ज्योती का घाट सुरत सरोवर (सहसदल कमल)। (२) इड़ा अगनि, पिंगला पानी और सुषमना पवन है इन का घर त्रिबेणी अर्थात् सहज सुन्न का घाट है उस को प्राप्त होवे। (३) निविकार। (४) सयाना, पंडित, बुद्धिमान। (५) गुरभाई। (६) हमारे साथ भी सर्व का नाथ रहता है परंतु नित्य प्रति अज्ञात बश हुए हम सिसक २ कर मर रहे हैं। (७) पीछे निरणा कर दिया है; अब गुरू साहब शिवनाभ राजा को हंस मंत्र उपदेश कर रहे हैं। (८) जल। (९) सुरति जो शरीर रूप म्रित का संघात (धरती) से अभेद हो रही थी। (१०) सुरति कीड़ी के पीछे २ मन हस्ती भी उसी के पांव (चाल) चलाया जारहा है। (११) धनुष दृष्टि का। (१२) मनरूपी मूसे ने मैं २ करने वाली हउँमैं बिल्ली, यही माया है। (१३) मस्त, मगन।

चहुँ[1] का संग चहूँ का मीतु । जाँमे चारि हंढावै नीतु ॥
नाँ मलु लगै न होय पुराणे । नानक दरगह पैहन सिधाणे[2] ॥३३॥
मूलु[3] चापि राखे बैरागी । गगन सुन्नि अनहदि लिवलागी ॥
पंचां[4] थाँमि करै अस्वारी । नानक सहजे मिलै मुरारी ॥३४॥
गरजि गरजि बरषै नित्त गगना । पच्छिम पवन उलटि मनु मगना ॥
सुन्न सरोवरि सुरति समानी । नानक चूकी आवन जानी ॥३५॥
सूक्ष्म महि अस्थूल समाना । पिंड छोड़ पद कौ उरझाना ॥
अर्ध[5] उर्ध दोऊ समकरि राखै । नानकखंडु खाय गुंगा किआ भाखै ३६
जोग जुगति चीनहु अवधूता । दूंदर बाँधहु गुरकै सूता[6] ॥
नागनि[7] निर्बिष क्यौं करि होवै । नानक मनु गुर शब्दि परोवै[8] ।३७
सोहं हंसा जपु बिन माला । तहिँ रचिआ जहिँ केवल बाला ॥
गुर मिलि नीरहिँ नीर समाना । तबनानक मनूआ गगनिसमाना३८
क्यौँ करि उर्धकवल मुख खोलै । क्यौँ करि बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
क्यौँ करि शब्दै शब्दु समावै । नानक जाणै जानि बुझावै ॥३९॥
लिव लागी तब कउल मुख खोलै । गुरुमुखु बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
उलटै मनु जबि सुन्नि समावै । नानक शब्दै शब्दि मिलावै ॥४०॥
क्यौँ करि मनु चंचल ठहरावै । क्यौँ करि ठौर बास की पावै ॥
क्यौँ करि भोजन बिना अघाना । नानक नीच कहै देवाना ॥४१॥
सगल खंड कायाँ महि जानहु । उलटि मारग[9] पछम को तानहु ॥
नष शिष फिरि सोधै सभ थान । नानक पाया गुरमुखि दानु ॥४१॥
बिनु पवनै मजन क्यौँ होवै । बिन पानी कैसे मलु धोवै ॥
बिनु अगनी क्यौँ पचै अहारा । नानक पूछै इहु करहु बिचारा ४३
बिनु बूझै कैसे को भाखै । क्यौँ करि मनूआ तन महि राखै ॥
क्यौँ करि नीरु चढ़ै फिरि ऊचा । नानक जाणै जो होय पहूचा ४४

---

(१) श्वास-मन-शब्द-दृष्टि इन चार को इकत्र करके इनका संग करे। अरु सत संतोष दया धर्म यह चार गल में जामें पहिरे। (२) पहुंच गये। (३) मूल कमल जो सभ से प्रथम कमल सहसदल है उसमें धनुषचढ़ावे। (४) पंच शब्द। (५) पिंड ब्रह्मन्ड—नीचे ऊपर की दो ठौर हैं इन के बीच जो संधी का मुकाम है उस पर स्थिर रहे। (६) ऐ गुरू के बालके (अब शिव नाभ को अपनाय लिया है)। (७) माया। (८) जोड़ देवे; पोय देवे। (९) उलटा मारग जिधर से सुरति नीचे पिंड में आती है उसी पिछवाड़ को उसे ताने।

क्यौँ करि मन्सा मनु छडि जाय। क्यौँ करि मनु को मनु फिरि खाय॥
क्यौँ करि निर्बिष होय भुयंगा। नानक क्यौँ करि मिटै तरंगा ४५

ऊचे खंड की ऊची बात। जो जाणै सोई निगरात[1]॥
सर्बा मनीआ एको सूतु। नानक चीनै सो अवधूत॥४६॥

ज्ञान पदार्थ जिहँ करि आया। ताँ कौ फिरि लागै नहीँ माया॥
ज्योँ करि कउल रहै जल माही। नानक ऐसे सहजि समाही॥४७॥

ज्योँ करि सूर्ज तपै अकासि। जो देखै ताहूँ के पासि॥
सर्बनिरंतरि इऊँ करि जानहु। नानक शब्दे[2] शब्दु पछानहु॥४८॥

नाना बिधि भोजनु बिस्थारा। सर्ब भीतरि एको[3] पासारा॥
ज्ञान अंजनि जिहिँ नेत्री आवै। नानक फिर कै चोट न खावै॥४९॥

गुर[4] सूती ताना अरु बाना। गुर सूती मनु सुन्नि समाना॥
गुर सूती चढ़ि रहै अकाशि। नानक इऊँ करि कउल बिगास॥५०

अनहद[5] तारी बाजी मनु मानिआ। सर्बी भीतरि एकु पछानिआ॥
तब चूकी दुंद[6] भया निर्दुंद। नानक राता भैार सुगंधि॥५१॥

सुन्नि शब्द धुनि सुणि झुणकारा। बसै कहाँ क्या करै अहारा॥
कौन रूप धरि कीआ पसारा। नानक पूछै इहु करहु बीचारा॥५२॥

पउनु अजाति रंग ते रहता। घटि घटि सहजि निरालमु बहता॥
सगल खंड महिँ कीआ पसारा। नानक बूझै को बूझणहारा॥५३॥

अगनि[7] जलै लागै घटि बन्धु। बिनु अगनी काया निरबन्धु[8]॥
बिनु अगनी ब्यापैँ बहु रोगु। नानक ज्ञानु संपूर्ण जोगु॥५४॥

क्योँ करि कला घटै अरु बाढै। आपस ते क्योँ आपा काढै॥
क्योँ करि थामै नीरु बहंता। नानक गुर मिलीऔ भगवंता॥५५॥

---

(१) "निभरात" पाठ भी है निगरात पाठ में द्रष्टा, अनुभव कर्ता अर्थ होंगे और निभ्रात के, भ्रांती रहित। (२) हंस रूप अजपा शब्द द्वारा जब ऊपरला शब्द खुले तो प्रीक्षा आवे। (३) एकही रस मात्र का। (४) गुर शिक्षित, गुरों करके साधित, दीक्षित। (५) जब खुशी में पुरुष आता है तो ताली बजाने लगता है–ऐसेही जब शब्द अभ्यास से परम पुरुष प्रसन्न होता है तो अनहद की ताली वज पड़ती है जिसे श्रवन करतेही मन बशवर्ती हो जाता है। (६) राग द्वेश हर्ष शोक आदि द्वैती झगड़ा। (७) ज्योति का साक्षात्कार होवे। (८) निश्चे करके बंधायमान।

कला[1] पछानि कला[2] नित बाढै । मेटै त्रैगुण आपा काढै ॥
मूलु बँधि थाँमै नीरु बहंता । नानक गुरु मिलीऔ भगवंता ॥५६॥
कौन शब्द ते रहै अडोलु । कौन शब्द ते पूरा तोलु ॥
कौन शब्द ते त्यागै आसा । शब्दै नानक कउल बिगासा ॥५७॥
सत्य शब्द ते रहै अडोलु । शब्द कै परचै पूरा बोलु ॥
गुरका शब्द ले त्यागै आसा । नानक पौन अरंभे कउल बिगासा ५८
शब्दु तत्तु बीर्ज[3] संसार । शब्दु निरालमु अपर अपार ॥
शब्दु बिचारि तरे बहु भेषा । नानक भेदु न शब्द अलेषा ॥५९॥
शब्दु अदिष्ट मुष्टि नहिँ आवे । ताँ को जगु सगला भरमावे ॥
दिष्टि मुष्टि ते रहै निरारा । नानक बिरला को खोजणहारा ६०
शब्दै सुरति भया प्रगासा । सभ को करै शब्द की आसा ॥
पंथी पंखी[4] सिऊँ नित राता । नानक शब्दै शब्दु पछाता ॥६१॥
गुरमुखि शब्दु होया बषशीशु । गुरमति पावहिँ ते जगदीश ॥
बिनु शब्दै क्योँ उतरसि पारा । नानक शब्दु लंघावनिहारा ॥६१॥
हाट बाट शब्द का खेलु । बिनु शब्दै क्योँ होवै मेलु ॥
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै । नानक शब्दु घटै घटि आछै[5] ॥६३॥
शब्दै धरती शब्दु अकाशु । शब्दै शब्दु होआ प्रगासु ॥
शब्दु कमावै ते बड़ भागी । नानक शब्दु सदा बैरागी ॥६४॥
शब्दु अतीत शब्द घरबारी । शब्दु बिचारि तरे संसारी ॥
बिनु शब्दै मारग नहीँ पावे । नानक शब्द बिना कैसे ठहिरावै ॥६५
जहिँ देखउ तहँ शब्दि निवासा । शब्दि बीचारि खंडित सभआसा ॥
शब्दि रत्ता सो शब्द की जाति । नानक बिनु शब्दै क्योँ मिटै भ्रांति ६६
बिनु शब्दै नाहीँ सुध कायाँ । बिनु शब्दै नहीँ छूटै माया ॥
बिनु शब्दै क्योँ होय उद्धारु । नानक शब्द बिना नहीँ मोछद्वारु६७
शब्दु रहै सगल जगि माहीँ । जगु बिनशै ते कहाँ सिधाही ॥
भिन्न भिन्न इहु करहु बीचारा । नानक ऊचा खेलु अपारा ॥६८॥

---

(१) उलटने की बाजी, नटकला, जुगती अभ्यास । (२) शक्ति । (३) बीज, कारण । (४) शब्द रूपी पंखी साथ रचा हुआ जज्ञासू । अथवा "पंथे" पाठ भी है अर्थ--मुसाफर वत् उतरती हुई शब्द की धार से संलग्न जज्ञासू । (५) प्रकाशित बिराजित ।

जो देखउ सो सगल बिनाशु । शब्दु अमरु होरु सगले नाशु ॥
जगु बिनशै शब्दु रहै निआरा । नानक आया फिरि तहीं सिधारा६९
चारि बरन[१] शब्द ते हूए । जिनि चीनिआ ते जीवति मूए ॥
शब्द के बरन लखे जे कोई । नानक ताँ कै सभ सुध होई ॥७०॥
शब्दै शब्दु होआ आकाशु । शब्दै शब्दि कला परगासु ॥
उलटा शब्दु गगनि घरु छाया। नानक शब्दै शब्दु समाया ॥७१॥
शब्दु निरालमु जोति सरूप । आदहिँ शब्दु अंति बैभूतु[२] ॥
सोई शब्दु बसै सभ माहीं । नानक चीनहिँ ते दूरि न जाहीं ॥७२॥
शब्दि की जोति[३] पछाणै कोई । ताँ कौ मिलते बिलम न होई ॥
शब्दै शब्दि मिलावा हूआ । शब्दु पछाणि नानक जनु मूआ[४] ॥७३
बिनु शब्दै नाहीं पारगिरामी[५] । बिनु शब्दे नाहीं अंतरिजामी ॥
बिनु शब्दै नाहीं पति[६] परतीति । नानक शब्दु की ऊची रीति॥७४॥
गुर कै शब्दि भेटै भगवानु[७] । गुर कै शब्दि सिद्ध काजे जानु ॥
गुर कै शब्दि मारगि सुख पावै। नानक गुरु शब्दी बिरला मनु लावै७५
गुर कै शब्दि अजरु सभ जरै। गुरु कै शब्दि जीवत ही मरै ॥
गुर कै शब्दि दुत्तरु सुखि तरै । नानकजेशब्दुगुरूकामनमहिधरै ७६
शब्दि गुरू कै नौनिधि दरि चेरी। शब्दि गुरू कै भौजलि नहीं फेरी ॥
शब्दि गुरू कै बिनु लोचन[८] सूझै। नानकशब्दि गुरूकै अज्ञानीबूझै ७७
शब्दि गुरू कै दरगहि परवाणु। शब्दि गुरू कै लागै ध्यानु ॥
शब्दि गुरू कै पंचि बशि कीए । नानक शब्दि गुरू कै जीवतही मूए॥७८
शब्दि गुरू कै सगली बिष[९] त्यागै । शब्दि गुरू कै दुरमति भागै ॥
शब्दि गुरू कै मनु ठहिराय । नानक शब्दि गुरू कै सोझी पाय ७९
शब्दि गुरू कै अगमु अगमु[१०] करि जानै । शब्दि गुरू कै उलटी तानै॥
शब्दि गुरू कै जनमु स्वारै । नानक शब्दि गुरू कै मूलु न हारै ॥८०॥

---

(१) अक्षर, हं-सा-सोहं अगला दरजा अभी कहा नहीं जो...वा-ह-गु-रू है पीछे ॐकार में भा अ-उ-म और अर्द्ध बिंदु रूप अक्षर चारही ह । (२) अंत में भी यही रहता है । (३) मंडल मंडल का शब्द न्यारा और उसका सरूप भी भिन्न २ है । (४) बिदेह हो गया । (५) प्रार के बासी । (६) प्रतिष्ठा । (७) भगवान से बिश्नु का ही भाव नहीं किंतु सच खंड का पातिशाह जो तीसरे तिल प्रयंत की छः ज्योती रूप एश्वर्य का मालिक है । (८) नेत्र । (९) विषय बासना । (१०) जो सभ किसी की मन बुद्धि आदि की गंम का विष्य नहीं भी; शब्द के प्रभाव से उसे ज्यों का त्यों अगंम सरूप निश्चे करके अनुभव कर लेता है ॥

शब्दि गुरू के सदा सुखु होवै। शब्दि गुरू के जनमु न खोवै ॥
शब्दि गुरू के आपु पछानै। नानक शब्दु मिलै ताँहू[1] मनु मानै॥८१॥
शब्दि गुरू के मनु निर्मल करि मीता। शब्दि गुरू के अजरु जरि लीता
शब्दि गुरू के चाली ठहरानी। नानक ढुलि मिलिआ पानी कउ पानी ॥८२॥
शब्दि गुरू के सुनते सुख पाया। शब्दि गुरू के जनमु बटाया[2] ॥
शब्दि गुरू कै होया उजयाला। नानक शब्दु गुरू का नित्य रखवाला८३
शब्दि गुरू के मोख द्वार मुक्ती। शब्दि गुरू के जोग अरु जुगती ॥
शब्दि गुरू के चूकी आवनु जानी। नानक शब्दि रत्ते तरे प्रानी ॥८४॥
शब्दि गुरू के दिश चारि का राजा। शब्दि गुरू के पूर्ण काजा ॥
शब्दि गुरू के इंद्रादिक नित्त द्वारै। नानक शब्द गुरू कै तरै अरु तारै ॥८५॥
शब्दि गुरू के छुटहि बिकारा। शब्दि गुरू कै जगि निस्तारा ॥
शब्दि गुरू कै अंम्रित मुखबानी। नानक शब्दि गुरू कै मति ठहरानी ॥८६॥
शब्दि गुरू कै तीन[3] ते रहता। शब्दि गुरू के अचलु भया बहता ॥
शब्दि गुरू कै बरनु बटाया। नानक शब्दि गुरू कै दासं माया ॥८७॥
शब्दि गुरू के किरपा भगवानु। शब्दि गुरू के पद निरबानु ॥
शब्दि गुरू के सिंह[4] अरु स्याला। नानक मिले अंकि दयाला ॥८८॥
शब्दि गुरू के मजनु सदा त्रिवैणी। शब्दि गुरू सुष्मनि सुख दैणी॥
शब्दि गुरू कै दूरि ध्यानी[5]। नानक शब्दि गुरू कै अठसठि इस्नानी८९
शब्दि गुरू के बैरी सभि मीता। शब्द गुरू कै इहु मनु जीता ॥
शब्दि गुरू के दूरि न जाणि। नानक शब्दि गुरू कै पदि पिंडु समाणि ॥९०॥
शब्दि गुरू कै जन्मु स्वारिआ। शब्दि गुरू कै जउरा[6] मारिआ ॥
शब्दि गुरू कै आई परतीति। नानक शब्दि गुरू कै सदा अतीतु॥९१

---

(१) तबीही। (२) बदल दिया, और से और कर दिया। (३) तीन ताप=अध्यात्मक, अधिभूतिक, अधिदैविक। (४) सिंह, काल (ब्रह्म) अरु गीदड़ जीव। यिह दोनों ही जीव ब्रह्म भाव त्याग कर जब गुरु शब्द के प्रभाव से एक रूप हो जावें तो दयाल पुरुष (भगवंत) की गोदी में समा जाते हैं। ("काल पाय ब्रह्मा बपु धरा। काल पाय शिवजी अवतरा। काल पाय कर बिशनु प्रकाशा। सकल काल का कीआ तमाशा")। इस दसम गुरू साहब के बचन अनुसार सर्ब स्रिष्टी का कर्त्ता माया सबल ब्रह्म ही सिंह रूप काल है। (५) प्रथम ही किसी प्रविरती निव्रिरती में हानि लाभ के बिचार करने वाले तथा परम दूर सरूप परम ब्रह्म परम धाम के ध्यान करने वाले हो जाते हैं। (६) दौड़ने वाला (मन)।

शब्दि गुरू कै नीर अगनि जलाई[१]। शब्दि गुरू कै काटी काई ॥
शब्दि गुरू कै निर्मलु मलु धोवै। नानक शब्दहुँ घुथा[२] सो रोवै ॥९२
शब्दि गुरू कै गैर महल्ली[३]। शब्दि गुरू कै सुनीऐं टल्ली[४] ॥
शब्दि गुरू कै दर्शन भगवाना[५]। शब्दि गुरू कै नानक परधाना ॥९३॥
शब्दि गुरू कै मानस[६] देवा। शब्दि गुरू कै जगु करै सेवा ॥
शब्दि गुरू कै सगलिआ महि जाता। शब्दि गुरू कै अंतरिगति न्हाता ॥९४॥
शब्दि गुरू कै अदिष्ट[७] दिष्टानी। शब्दि गुरू कै तरे प्रानी ॥
शब्दि गुरू कै चौथे पदि राता। नानक शब्दि गुरू ते जाता ॥९५॥
शब्दि गुरू कै सिद्ध अरु साधिक। शब्दि गुरू कै छुटहँ व्याधिक[८] ॥
शब्दि गुरू कै सगलिआँ का हेती[९]। नानक शब्द गुरू कै राखै खेती ॥९६॥
शब्दि गुरू कै बांछित फलु पावै। शब्दि गुरू कै घनु टोटि[१०] न आवै॥
शब्दि गुरू कै कार्य सिद्ध होवहिँ। नानक शब्दहुँ घुथे रोवहिँ ॥९७॥
शब्दि गुरू कै बिनु अखीं सूझै। शब्दि गुरू कै बिनु बोलै बूझै ॥
शब्दि गुरू कै जो मनु लावै। नानक सो जनु परम पदु पावै ॥९८॥

॥ अध्याय ८ समाप्त ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय ९ ॥

॥ राग सूही महला १ ॥

॥ ध्याय हाट का ॥

पहले हाट का नाउँ अनंता। जित बसै हीआ जपै गुर मंता ॥
प्रभ के मंति रहै निरबान। जहँ नहिँपीवनु नहीँ किछु खानु ॥
खाण पीअण ते रहै निरारा। अनंत महल महिँ कीआ पसारा ॥
अनंत महल महि हीआ ठहिराना। नानक बिरले किनै पछाना ॥१॥

---

(१) सहसदल में ज्योती साक्षात की। (२) भूला हुआ शब्द से। (३) जिस ठौर कभी ताकना नहीं मिलता था उस सच्च खंड का बासी शब्द गुरू के प्रताप से होता है। (४) टल्ली-घंटी का शब्द (गुर शब्द) के प्रभाव से सुनता है, प्रथम शब्द की निशानी ही अभी शिवनाभ को देते हैं। (५) सच्चीद्रगाह के मालिक भगवंत के। (६) मनुष्य। (७) अदृष्ट तत्त्व, परम-तत्त्व—उसका साक्षात्कार हो जाता है। (८) व्याधियों के कर्ता रोग रूप भोग, क्योंकि शारीरिक दुःखों का कारण भोग ही हैं। (९) हित करने वाला, हितकारी, सनेही। (१०) घाटा।

नाभि कमल हाट है दूजा । कुदरति धार बणाया कूजा[१] ॥
नाभि कमल ते निकसै सास । नाभि कमल ते नामु[२] प्रगास ॥
नाभि कमल उद्यम अभ्यास । नाभि कमल हीए का बास ॥
नाभि कमल महि सास का डेरा । कोई खोजि लहै जनु तेरा ॥
नाभि ते निकसि जिहबा आय बकै । नानक अचरज रूप कोई लषि सकै २
तीजे हाट का नाऊँ भंडारु । जितु बसै ऊष्मा मँगै अहारु ॥
पूर्ण होय तँ आवै शांति । बिनु अहार तरफै दिनु राति ॥
अहार बिना कछु अवरु न सूझै । होय ममूर[३] तब प्रभ कउ बूझै ॥
प्रभु बूझै ताँ होय अहारु । नानक तीजा हाट भंडारु ॥३॥
नाभि निकट इक हाट बनाया । तहँ उद्यम आछा घरु छाया ॥
नाऊँ हाट का उद्यमु उदंता । तहिँ उद्यम सुखि सहजि बसंता ॥
उद्यम करै त सभ किछु जानै । उद्यम करै त तत्तु पछानै ॥

---

(१) सिकोरा, घड़ा; भाव घट से है। (२) उसकी आश्चर्य कारीगरी और भी देखो कि नाभी कमल ते श्वास निकलता है परंतु उस श्वास के प्रभाव से नाभी से नाम की ही प्रगटता होती रहती है, तात्पर्य यह कि सहज सुभाव नाम की तार हर एक के अंदर लगी रहती है। जब श्वास नाभी से उठता है तो नासका मूल प्रयंत ऊपर चढ़ता है और वहां से बाहर निकलता है (नासिका द्वारा) और फिर बाहर से उसी प्रकार नासिका द्वारा लौट कर अंदर नाभी पर ही पहुंच जाता है। यह श्वास की रात्रि दिन की स्वाभाविक चाल है। अब अंतरयामी ने एक कारीगरी इस में रखी है कि जब श्वास नाभी से जोर (वेग) के साथ उठता है तो 'हं'–बीज अक्षर की धुनी करता हुआ ऊपर उठता है और जब नासा मूल पर पहुंच कर टक्कर खाता है तो 'हं'–की बदल वहां से 'सः' ऐसो बीज अक्षर की धुनी करता बाहर निकल आता है। इसी प्रकार जब अंतरयामिनी शक्ति इसे फिर अंदर की ओर खैंचती है तो उस भीतरीय खैंच से 'सः' का 'सो' उलटि करि हो जाता है; औरइसी धुनी के साथ जब फिर नासा मूल पर अंदर आकर पूर्व वतही टक्कर खाता है तो स्थान के प्रभाव से 'सो' फिर 'हं' के स्वरूप में पलट कर नाभी पर जा पहुंचता है–और उसी प्रकार 'हं' की धुनी सहित नासा मूल तक पहुंच करि वहां से पूर्व वतही 'सः' के आकार पर बाहर निकल जाता है। और 'सो' रूप हुआ अंदर पलट कर नासा मूल पर 'हं' धुनो द्वारे नाभी पर पहुंच जाता है। इस प्रकार दिन रात्रिमें जीव इक्कीस सहस्र छः सौ श्वास सर्व प्रकार की क्रिया के करते संते भी "हंसः सोहं" रूप नाम ही जपता रहिता है। परंतु पुरुष अचेत है कि इसकी सहज सुभाव की गति से अपना जन्म सफल नहीं करता। क्षण भर भी यदि इसकी ओर ध्यान दिया जावे तो अनेक पापों से निर्मुक्त हो जावे। गुरू साहब जूं २ अधिकार शिव नाभ का देखते हैं तूं २ नाम भी पलटते चले जा रहे हैं जैसा कि प्रथम राम नाम का मंत्र उपदेश किया फिर ॐकार का और अब हंस रूप अजपा जाप का मंत्र उपदेश किया है इसके प्रभाव से उसे पिंड के बंधन से निकालने का अभिप्राय गरू महाराज को अभीष्ट है। (३) पूर्ण।

उद्यम करै त सभ किछु करै। उद्यम करै पंच सिऊँ लरै॥
उद्यम करै त भगति कमाय। उद्यम करै त तीरथ न्हाय॥
उद्यम कीने कछु सुकृत होय। उद्यम करि अघडारै धोय॥
चौथे हाट का नाम उदंता। नानक ता महिँ उद्यम बसंता॥४॥
बंक नालि हाट मैँ बसने हारा। आवत जात हरि नामु चितारा॥
पंजवाँ हाट रखिया बँकनाले। निश दिन जपै हरि नामु सम्हाले॥
बँकनाल आय बकता जीउ। आठ पहर करता पीउ पीउ॥
पीउ पीउ जपै जब खुलहिँ कपाटु। नानक बँकनालि बकते का हाटु॥५
शहरग हाट शहर है नीका। जितु सहजु बसै सुखु होवै जी का॥
शांति होय जब शहरग चलै। शहरग हाट गले ते तलै॥
सासु सुखी शहरग महि आवै। शहरग रहै तेजु मिटि जावै॥
तेजु मिटै न निकसै बाउ। नानक छेवाँ हाट शहरग है नाऊँ ६
घंट हाटि जब ताला मिलै। कवन बिधि बकै कवन बिधि चलै॥
बकन चलन ते इहु ठहराय। जब घंट हाटि ताला मिलि जाय॥
दर खूले इहु होय सुहेला। आनंद नगरी[१] बसै अकेला॥
सभ किछु सुखी जब खुलहि कपाट। नानक घंटु सप्तमाँ हाट॥७॥
प्रेम हाट जब इहु मनु जाय। प्रभु सिऊँ रचै हरि के गुन गाय॥
प्रेम भगति जब मनूआ लागै। प्रेम प्रीति ते सोया जागै॥
प्रेम महलि जब इहु ठहिराना। आनि त्यागि एक लपटाना॥
प्रेम हाट अष्टवाँ कहीयै। तउ नानक प्रभु सेती रचि रहीयै॥८॥
आन[२] प्रेम जब जाय समाना। झूठा रूप देखि हैराना॥
झूठ रते की झूठी करनी। झूठ रते क्योँ राचहिँ चरनी॥
आन प्रीति जो मनूआँ राता। साच प्रीति नहिँ कबहुँ कमाता॥
आन प्रीति के स्वाद लुभाया। आन प्रीति रचि जन्मु गँवाया॥
प्रीति प्रीति दुहँ बिधि के नाऊँ। नानक आन प्रीति ते मनु समुझाउ ९
फिरि घिरि आय बसै जितु हाटि। तहँ मनु सहजि बिछाई खाट॥

---

(१) "जब करै अनंद होय रहै इकेला"। —पाठांतर। (२) दूसरा प्रेम; भाव–मोह (संसारी इश्क) से है।

आठ पहर जितु हाट बसेरा । सहजि सुभाय कीआ मनु डेरा॥
फरकि[1] फरकि जब षुशीआँ मानै । कोटि मध्ये कोई बिरला जानै॥
नावाँ हाट रखिआ करि फुरना । नानक जिनि वशि कीआ
तिसु जरा न मरना ॥१०॥
रस्ना हाट सभ स्वाद बनाए । गुर मिलिआ तिस ठाकि रहाए ॥
स्वाद तजे रस्ना जब बाँधी । एक नाम पर रस्ना साधी ॥
रस्ना साधी सभ रस मेटे । जब ते पूरे सतिगुर भेटे ॥
दशवाँ हाट रस्ना करि धरिआ । नानक हरि सिमरन ते तरिआ ११
बिंद हाट जब इहु मन जावै । बुरा भला बहि तहीँ कमावै ॥
सुकृत कबहूँ करै न कोय । नामु जपत मनि आलस होय ॥
इतु आलसि मनु मिलै सजाय । अंति सँगल जम का गलि पाय॥
बिंद हाट महिँ सब बुरिआईयाँ । करि किरपा गुर ठाकि रहाईयाँ॥
यारवाँ हाट है बिंद ब्याधी । नानक गुर किरपा ते तिहँ गति लाधी॥१२
गंत हाटि जब इहु मनु बरै । अठसठ मजनु सुकृत करै ॥
अहि निशि पुंन्न दान कउ धावै । करै भगति मनूआ ठहरावै ॥
हरि जसु सुणै प्रीति करि भाउ । सत्संगति देखि मनि उपजै चाउ[2] ॥
रेनु[3] बाँछै अमृत करि पीवै । गंत हाटि जब इहु मन थीवै[4] ॥
गंत हाटु किरपा ते डीठा । नानक बारवाँ हाटु अनंत सुख ईठा[5] १३
अनगति हाटु अज्ञान समाया । इन अज्ञान इहु मनु भरमाया ॥
भरमि भूला कहूँ रहनु न पाई । अनगत हाट मैं रहिआ समाई ॥
किव गति होवै जब अनगति जाय । अनगति हाटु अकर्म कमाय[6] ॥
जैसा घरु तैसा प्रगास । जैसा उद्यम तैसा अभ्यास ॥
अनगत हाटि जाय नामु बिसारै । बाणी कहै नानक बीचारै ॥१४॥
तामस तिसना जब मनि आई । तब इस मनि कउ लागी काई[7] ॥
तेज तरंग अंतर महि आए । तब इन मनि मीठे करि भाए ॥
शीत न होय रहै सद ताता । तिसना हाट जब इहु मनु जाता॥

(१) फड़क २, उछल २ । (२) उमंग । (३) धूली । (४) होवै । (५) इष्ट, प्यारा । (६) "जित हाट बसै साकार कमाय"—पाठांतर । (७) मैल ।

तेज तरंग तामस के हाट । ताँके मुहकम[1] मारि कपाट ॥
तेरवैँ हाट के ताक अड़ाए । नानक त्रिसणा हाटि न जाय ॥१५॥
उद्यम हाट जब इहु मनु जाय। करि उद्यम अनंत सुख पाय ॥
मन मैँ उद्यम करै पतिशाही । उद्यम भीति[3] भरम की ढाही ॥
उद्यम होय त सभ कछु करै । बिन उद्यम जम के बशि परै ॥
करि उद्यम जम दूरि बिडारै । उद्यम ते कई कोटि उधारै ॥
चौधवा हाटि उद्यम है कीना । करि उद्यम नानक हरि जसु लीना ॥१६॥
उक्त हाटि जब इहु मनु जाता । उक्ति सिआणप बहुत कमाता ॥
उक्ति सिआणप करि मन सोधै । उक्ति सिआणप जगु परबोधै ॥
उक्ति सिआणप पंच निवारै । उक्ति करै प्रभु अंतरि धारै ॥
बिनु उक्ति सिआणप जमु लैणे आवै । बिनु उक्ति सिआणप काल संतावै ॥
पंद्रहूँ हाट का नाऊँ है उक्ता । नानक उक्ति सिआणप मुक्ता १७॥
निंद हाटि जब इहु मनु जाई । निंद चिँद बहि करै पराई ॥
निंद चिंद करि दोजकि पाय । जब मनु निंद हाट महि जाय ॥
बिनु डीठे[4] आदिष्ट कमावै । नरक घोर का राहु बतावै ॥
लहै सजाय मुहे मुहि खाई । अदिष्ट निंद बहि करै पराई ॥
निंद चिंद की प्रीति करि रसै । नानक सोलवाँ हाटि जबै मनु बसै १८
क्रोध हाटि जब इहु मनु चलै । करै क्रोध अगनी ज्यौँ जलै ॥
आपे ही जलि बलि होवै सुआहु[5] । जब क्रोध हाट का पकड़ै राहु ॥
दे दे लहरि जलै मन माँही । क्रोध जले की गति कहूँ नाँही ॥
करै क्रोध हरि नामु न मानै । साध बचन हिरदे नहि आनै ॥
क्रोध जलै शीतल नहिँ होई । जे अठसठि सर[6] न्हावै कोई ॥
सतारहूँ हाट क्रोध का बाधा । नानक जो पड़िआ सो दाधा[7] ॥१९॥
सहज हाटि मन कीआ निवासु । सहज सुभाय मनि कीआ प्रगासु॥
सहज सुभाय करे जै कारा । सहज नाथु हरि लागै पिआरा ॥

(१) दृढ़ता के साथ। (२) पीछे उदंत हाट कहा है उस में मन गया हुआ अकेला अपने वास्ते ही उद्यम करता है परंतु इस हाट में दूसरे जनों के पर उपकार में भी प्रवृत्त रहता है। (३) फसील। (४) पीठ पीछे किसी की निंदा करनी। (५) राख, भसम। (६) अठसठ प्रधान तीर्थ जो पृथ्वी मंडल में माने जाते हैं। (७) दगध हो गया।

जो कछु करै सो सहज सुभाय । सहज सहज हरिके गुन गाय ॥
सहज सुभाय का इही बिचारु । सहज सुभाय मन होय उद्धारु ॥
सहज सुभाय गुर की दीक्षा लेइ । सहज सुभाय मनु जनु कउ देइ ॥
अठारहूँ हाट महिँ जब मनु आवै । तउ नानक सहज सुभाउ कमावै ॥२०॥
सिव हाट जब इहु मन आवै । होय नीच[1] हरि भगति कमावै ॥
शिव जाने ते शक्ति गवाई । शिव के आगे शक्ति निवाई ॥
शिव आगे सभ करै सलामु । तब मनु होय रहै प्रधानु ॥
नव छिअ षटु[2] शिव आगे चेरे । सो सिव[3] रीति दिढ़हिँ जनु तेरे ॥
शिव का महलु गुहज अति कीआ । इन मनु तहीँ निवासा लीआ ॥
उनीहूँ हाट का नाऊँ है सेवा । नानक तहँ मनु हूआ देवा ॥२१॥
शक्ति हाट मैँ हउमैँ कीनी । आपि भुलाय इस तन कउ दीनी ॥
हउमैँ करिकै किसै न जानै । हउमैँ करिकै प्रभु न पछानै ॥
हउमैँ कीने भगति न होई । भगति करै जिनि हउमैँ खोई ॥
मनि द्रिढ़िया हउमैँ का हाटु । तिसका मुहकमु जड़िया कपाटु ॥
इनि हउमैँ इहु जीउ भुलाया । शक्ति हाट मैँ जाय समाया ॥
वीहूँ हाट का नाऊँ है शक्ति । नानक उत्घरि नाँही भगति ॥२२॥
क्षमा हाटि जब इहु मनु जाइ । करै क्षमा हरिसिऊँ लिव लाइ ॥
क्षमा गही तब सचि समाया । क्षमा गही तब मनु ठहिराया ॥
क्षमा गहै तब भरम गढ़ तोड़ै । क्षमा गहै मनु हरि सिऊँ जोड़ै ॥
क्षमा गही तब मनु शीतलाना । क्षमा गही भ्रमता घरि आना ॥
क्षमा गही तब कूड़ गवाया । क्षमा गही तउ सच्चि समाया ॥
क्षमा शांति जब इत मनि आई । करि समदृष्टी जोति दिखाई ॥
इकीहूँ हाट क्षमा का कीना। नानक गुर परसादी चीना ॥२३॥
संतोष हाट मैँ जब मनु आया । सत्संजम बहि तहीँ कमाया ॥
सत् संजम का घर कीआ संतोष । मन तहिँ बसै लगै नहि दोष ॥
सत् संजमु करि हाट बनाए । तहाँ सत्त सत्त के शाह बसाए ॥

---

(१) दीन अधीन । (२) नौ नाथ, बारह पंथ । (३) सिव रीति-सेवा गुरू संतों तथा साधुओं की ।

सत संजम का सौदा नीका । संतोष हाटि सुख होवै जी का ॥
बाईहूँ हाट का नाऊँ संतोष । नानक जो चीनै तिसु नाही दोष॥२४॥
बाउ हाट इक भाँति बनाया । कहता बकता तहीँ बसाया ॥
कहता बकता करै अवाय । जब मनु बाउ हाट मेँ जाय ॥
बाइ पइआ मनु मुख ते बोलै । बाइ पइआ चहु कुंडीँ डोलै ॥
बाइ पइआ दह दिशि को धावै । बाइ पइआ घरि कदे न आवै॥
बाइ पइआ षाकु सिरि छानै । तत्त वस्तु की सार न जानै ॥
तेईहूँ हाट का नाऊँ है बाउ । नानक उत्घरि विसरै नाऊँ ॥२५॥
भरम हाटि जब इहु मन जाय । अकाश बघूले ज्यौँ भरमाय ॥
भ्रमता कबहुँ न आवे ठौर । काष्ठ बीचि बसे ज्यौँ भौर ॥
ज्यौँ काष्ट छोडि भउर उडि जाय । त्यौँ मनु भ्रमै भउर के भाय॥
भरम हाट का इहु बीचारु । करै निंद सिर छानैं छारु ॥
हाट चौबीस्वँ नाऊँ भरमाउ । नानक हरि प्रभ कीआ बनाउ ॥२६॥
काम हाटि जब इहु मनु बसै । अति सुंद्र त्रिय देखि बिगसै ॥
करै उपाव काम रस ताँई । जन्मु पदार्थ जात अजाँई[1] ॥
नरक बाँछै सो कामु कमावै । काम सुआदि जूनी भरमावै ॥
पचीस्वँ हाट काम का डेरा । जो तहँ बसै सोई जमि घेरा ॥
उस हाट की जो टहल कमावै । नानक मरि जनमै जूनी भरमावै ॥२७॥
दो बिधि कामु कोई बीचारै । दोनो बिधि के राह सवारै ॥
काम रत्न जिस जन दिष्टाया । आन काम तिनि गलत गवाया॥
आन काम ते तन बिनशाया । रत्न काम ते ब्रह्मि समाया ॥
काम गहै तिस रत्न दिखाईऐ । जिस छूटै सो जोनि भ्रमाईऐ ॥
रत्न हाट काम का कीआ । परमार्थ खोजि किनै जनि लीआ ॥
जिनि चीनिआ तिनही मिति जानी । जिनि काम रत्न की जोति पछानी ।
रत्न जोति माथे प्रगटानी । जिनि टारिआ तिस जोति बुझानी ॥
काम संचि जनु भए ममूर । नानक जिन राखिआ ते सदा ठरूरु ॥२८॥
अहिनिहाट जब इह मनु जाई । अदिष्ट बस्तु हिरि लेत पराई ॥

---

(१) व्यर्थ ।

चोरी रस इहु मनु लपटाना। अहनि हाट जब जाय समाना ॥
छाडि कृत्त तब चोरी धावै। अहनि हाट जब जाय समावै ॥
हिरि हिरि लिआवत वस्तु पराई। मरना बाँधि लीआ शिरि[1] भाई ॥
हाट छबीस्वाँ अहनि है नाऊँ। नानक ताँके कुलफ चढ़ाऊ ॥२९॥
जत्त हाटि जब इहु मनु जावै। जुगति जत्त की तब मिति पावै ॥
जाता देह जत्त करि राखै। जत्त जुगति कोई जनु लाखै ॥
जीता जन्मु जबै जतु गहिआ। इहु मनु जाता अस्थिरु रहिआ ॥
जो जतु राखै[2] तिसु पिंडु न पाई। जतु साधे की इह मिति भाई ॥
बीसाँ परि सतवँ जो रचिआ। नानक जतु दृढ़ कालहुँ बचिआ ॥३०॥
जब इहु मन जाय ब्रह्म समावै। एक दृष्टि कछु नाहि दुरावै[3] ॥
एको एकु सभन मैं जानै। सोई ब्रह्मदरि[4] पवै षज़ानै ॥
पवै षज़ानै बहुरि न फेरु। प्रगटिआ ब्रह्म मिटिआ अँधेर ॥
गया अंधेर भया उज्यारा। जब अंतरि कीआ ब्रह्म पसारा ॥
अठाईहूँ हाट का नाउँ है ब्रह्म। नानक उत्घर बिनशै भरमु ॥३१॥
करम हाटि बहि करम बीचारै। करम किरत कउ अंतरि धारै ॥
बेद पढ़ै शुचि संजमु करै[5]। बेद पढ़ै जनमै फिरि मरै ॥
ब्रह्म इंद्र शिवपुर मैं जाय। नहि ठहिरावै जूनी पाय ॥
करम हाट के गुन कहे भाई। करै करम जब उतघरि जाई ॥
बीस ऊपरि नौं हाट बनाए। नानक ऊहाँ बहि करम कमाए ॥३२॥
अकर्म हाट बहि करै अकर्म। ग्रिह कुटुंब की त्यागी शरम ॥
बेस्वा खाने जूए जाय। जब मन अकर्म हाट महि पाय ॥

---

(१) मरन मिटी उठा लेना, लालच मद में अंधा हो फिरना। (२) "दिढै"। (३) छिपावै। (४) पारब्रह्म की दरगाह विषे। (५) रोचक, भ्यानक यथार्थ रूप वाक्य बेदों में सविस्तर गाथा पूर्वक निरूपित हैं; और यह जीवों की स्वाभाविकी चाल है कि भयानक वाक से शीघ्र भयभीत हो जाना और रोचक में प्रवृत्त हो जाना। सो वेदों की विस्तार भरी गाथायें अपने जाल में ऐसा जकड़ती हैं कि जीव यथार्थ उपदेश में सुगमता से प्रवृत्त ही नहीं हो सकता और कर्म कांड आदि की रोचिक कथायें अपनी ओर से निवृत्त होने का अवसर ही नहीं देतीं और जैसे शुभाशुभ कर्म करेगा वैसी ही वासना के अनुसार जन्म मरन की गति होगी जिस का कारण केवल वेद ही है। क्योंकि ना माना तो पाप और माना तो पुन्न। पाप से नरक; पुन्न से स्वर्ग; अंत को फिर वहां से इत्तर योनियों में (कर्मा अनुसार) धक्का। इस प्रकार बारंबार जन्मता मरता ही रहता है।

फाहा पाइ करै बटपारी[1] । अकर्म हाट महि मारी तारी ॥
निंद चिंद[2] आदिष्टी करै । जब अकर्म हाट मैं परै ॥
करै अकर्म कर्म नहि जानै । नानक अकरम हाट समानै ॥३३॥
तप्त हाट महि जब मन जाय । तनु ताता कछु पीश्रै न खाय ॥
कंपन लागे सगला देह । तप्त हाट के लक्षण एह ॥
अहारु न लेवै पीऔ न खाय । पानी पानी करत बिहाय ॥
शीतल पानी ते बाढ़ै रोगु । उश्न पीए ते शीतल होगु ॥
तप्त हाट के यिह गुन भाई । होय निबलु जब उत घरि जाई ॥
तीस्वाँ हाट तप्त का कीआ । नानक ता महिँ सूख न थीआ[3] ॥
शृतहि हाट जब इहु मनु जाय । तप्त मिटै उपजे शिर बाय ॥३४॥
शिर कउ बाँधै आँखि न खोलै । ऊठि न साकै मुखहुँ न बोलै ॥
आलस उपजै सगली देह । श्रितहि हाट के लक्षण एह ॥
तप्त शृत का एको मंतु । जिसु आवै सो निर्बल जंतु ॥
इकतीस्वाँ हाट छाडि अवर घर जाय । तउ नानक मन कउ सूखि बिहाय ॥३५॥
विसूचि हाट जब इह मनु जाय । खोलि कपाट तहाँ ठहिराय ॥
तहिँ ठहराय जुगति सभ खोई । डाकी छूटी बिकल तन होई ॥
प्रान पिंड की करै न सारा । बिसूचि हाट बहि कीआ पासारा ॥
बिसूचित तन नही सकै समारि । पीपल मूल जवाइनि सारि ॥
लौंग हफीम वरच मुखि पाई । तब इस जीअ को शांती है आई ॥
कहु नानक बत्तीस्वाँ हाट । ताँका मुहकम देहु कपाट ॥३६॥
बीले हाट जब इहु मनु जाय । होय कुरकरि क्या औषधि खाय ॥
बरच घीउ पूदना मुखि पावै । पीठि सेकि मनु कउ सुख आवै ॥
धुन्नी[4] की नाड़ि जोर करि खिँचै । तब मन कुरक पीड़ ते बँचै ॥
छाछि खटाई निकटि न आवै । तब मनु बीले हाट महि पावै ॥
काची देह रोगु सभ होय । तैँतीस्वँ हाट मनु कउ दुख होय ॥
कहु नानक मन के हैँ हाट । ताँके अठसठ देहु कपाट ॥३७॥
सुस्त हाट जब इहु मनु रसै । आलस सुस्ती अंतरि बसै ॥

(१) राह मारी । (२) चुगली । (३) "ताप समीश्रा" पाठांतर । (४) नाभी की नाड़ी ।

होय उबासी अरु हडवारी[1] । सुस्त हाट मनि मारी तारी ॥
हाड मास तन सुस्ती होय । सुस्त हाट मनु रहिआ सोय ॥
अठसठ हाट बहत्तरि नारी । नौं दरवाजे चारे बारी ॥
होवहिं सुस्त सभै ही बंदा । चौतीहूँ हाट की एही निअंदाँ ॥
नानक कहै सुनहु रे भाई । हाट हाट की साख सुनाई ॥३८॥
तमक हाट जब इहु मन बरता । शांति न आवै तिष्णा जरता ॥
तमक तिषा महि सद ही ताता । तमक हाट जब इहु मनु जाता ॥
सद ताता शीतलु नहि होय । ताँ के कुशल न कबहूँ कोय ॥
ताँ के तामस कबहुँ न जाई । तमक हाट महि जब ठहिराई ॥
पर[2] की ताति करै सद ताता । तामस जलिआ भसम होय जाता ॥
पैतीस्वाँ हाट तमक का कीना । नानक तमक बसेरा लीना ॥३९॥
शांति हाट जब इहु मनु जावै । क्रोध हरै शीतल घरु छावै ॥
शांति पई तमक सब त्यागी । शीतल हाटि गया बैरागी ॥
शीतल हाट शांति का बासा । शांति भई मनि भया प्रगासा ॥
शांति भई मन उपजिआ चाउ । कामक्रोध गया तप ताउ ॥
ज्ञान रतंनु शांति ते आया । नानक छत्तीसवाँ हाटु सतिगुरु ते पाया ॥४०॥
दया हाट जब इहु मनु बसै । जीअ दया सभ ही महि रसै ॥
जीअ जीअ की महिमा जानै । सम दृष्टी होय एकु पछानै ॥
दया दानु दे दरदहिं जानै । दूजा त्यागि इकतु घरि आनै ॥
दामोदरु जाँ के मनि बसै । दुंदर[3] बाँधे सुंदरु[4] लसै ॥
सुंदर की तब जोति पछानै । दया हाटि जब इहु मनु आनै ॥
सैंतीहूँ हाटि महिं दया बनाई । नानक बिरले किनै ही पाई ॥४१॥
भाउ हाट मैं जब मनु जाता । भाउ भगति सभ संग कमाता ॥
भाउ कीए ते भरमु सभु जाय । भाउ भगति सभ संगि कमाय ॥
भाउ भगति की ऊची महिमा । भाउ दृढै सो होवै ब्रह्मा ॥

---

(१) हाड़ फुटनी, आलस्य में हाड़ सुस्त हो कर टूटते प्रतीत हुआ करते हैं। (२) दूसरों की चिंता से संताप करने करि, दूसरों की धन विद्या मान देख करि मन में संतप्त रहिना। (३) दो दो दरवाज़े, नासा कान नेत्र इनको बंद चढा देवे तो। (४) सुन्न द्वार का साक्षात्कार हो आता है।

भाउ भगति जाके मनि आवै । भाउ हाट मैं जब मनु जावै ॥
अठतीहूँहाटु भाउ का करिआ । नानक उत घर इन मन भाउ करिआ ॥४२॥
बिरह हाट जब इहु मनु बसै । अंतरि बिरह बिरह सँगि रसै ॥
बिरह करै तउ ब्रह्मु पछानै । बिरह करै तब रहै ध्यानै ॥
बिरह करै ताँ एको बूझै । बिरह करै ताँ सभ किछु सूझै ॥
बिरह हाट बिरहे का डेरा । बिरह हाट कब करै बसेरा ॥
कबहूँ फिरता फिरता आवै । बिरह हाट बहि बिरहु कमवै ॥
जित घरि बसै से लच्छनु करै । उस नगरी की सोझी परै ॥
उनतालीहूँ हाटु बिरह बिचि बसै । नानक बिरहु लाइ मनु सहजे बिगसै ॥४३॥
दोय हाट बिरह के कीए । दोय बिबेक बिरह कउ दीऐ ॥
साचे बिरह मिलै प्रभु साचा । साच बिरह अंमृत रस राचा ॥
साच बिरह प्रभु की मिति आवै । साच बिरह मैं साचि समावै॥
साच बिरह सभ साचु पछानै । साच बिरह भ्रमता घरि आनै ॥
साच बिरह का जब घरु जापै । साच बिरह सभ सच्च पछापै[1] ॥
चालीहूँ हाटु सचु जितु पाया । नानक साचि रत्ते सचु भाया ॥४४॥
इकतालीहूँ हाटि जब जावै । झूठ बिरह मनु भरम भुलावै ॥
पर त्रिया सेती बिरहु लगावै । उत बिरह तनु ताय जरावै ॥
उत बिरह होय इत उत[2] झूठा । ज्यों डऊँ[3] लागे काठु झलूठा[4] ॥
झूठे बिरह जलै किउँ जीवै । दाधा बिरहि न शीतलु थीवै ॥
काम बिरह की भाठी दाधा । बिरह अग्नि की थम्मी[5] बाधा ॥
झूठ बिरह के हाट समाया । नानक ताँकौ ठौर न ठाया ॥४५॥
बतालीहूँ हाटु प्रीति का कीना । कोटि मध्ये किनै बिरले चीना ॥
प्रीति प्रेम तिसु खुलहि कपाट । प्रीति प्रेम का एको हाटु ॥
प्रीति होय तौ प्रेमु पछानै । प्रीत चीनि अंतरि प्रभु जानै ॥
अंतरि खुला प्रीति जब पाई । प्रीति हाट प्रभु प्रीति बनाई ॥
बतालीहूँ हाट जिस महि सचु प्रीति । नानक जो चीनै तिसु निर्मल रीति॥४६
झूठ प्रीति प्रभु कबहुँ न भीजै। झूठ प्रीति तनु खपि खपि[6] छीजै॥

(१) प्रत्यक्ष भासै, प्रतीत होने लग जावै, । (२) लोक परलोक में । (३) दावा अगनि । (४) झुलसा जाना, अधजला । (५) थम्बी, शहतीर । (६) छीज हो हो करि ।

झूठ प्रीति का हाटु उजारै । महाँ अग्नि महि इहु तनु जारै ॥
जरि बूझै तब होवै सुआहा । झूठी प्रीति न इस को लाहा[1] ॥
लाहा मूलु सभु झूठु गवावै । झूठ प्रीति सभ रासि[2] वजावै[3] ॥
झूठ प्रीति कुल दोनो खोवै । हाथ पछाड़ि मूढ़ मनु रोवै ॥
साच झूठ की दो बिधि प्रीति । जितु को रचै तैसी तिसु रीति ॥
तैंतालीहूँ हाटु आन प्रीति का कीआ । नानक उत घरि मुक्त न थीआ॥४७
स्रवन हाट जब इहु मनु बरता । भाउ प्रीति करि हरि जसु सुनता ॥
स्रवनी सुनि सुनि चित्त बसावै । स्रवनी सुनि सुनि प्रेमु बढ़ावै ॥
अन सुनिआ कछु कहिआ न जाई । जिनि सुनिआ तिनही लिव लाई
सुनि सुनि सालक[4] सादक[5] हूए । अनसुनिआ पहु[6] कछू न थीए ॥
चौतालीहूँ हाटु कान प्रभ कीआ । नानक सुनि सुनि सहजि पतीआ॥४८
बहर हाट[7] होय रहता बहरा । मिति नही आवै आगम[8] शहरा ॥
जसु अपजसु कछु सुनीए नाँही । बहरा बिसमु भया मन माँही ॥
स्रवनीं सुनत बहर जब रोवै । जाँकी बूझ धरम[9] पहि होवै ॥
धरमराय जब कागदु काढै । तब क्या बहरा लेखा साढै[10] ॥
होत स्रवण बहरा होय जाय । जब मन बहर हाट महि पाय ॥
पैंतालीहूँ हाटु बहरा करि राखिआ । नानक होत स्रवन सुनीऐ नहि भाखिआ[11]॥४९
दृष्टि हाट जब इहु मनु देखै । आन न पेखै ब्रह्म बिशेषै ॥
एक दृष्टि देखै सभ रचना । आदि अंति तिनि कालहुँ बचना ॥
एक दृष्टि सभ बंधन खोलै । चारि पदारथ लीए अमोलै ॥
नामु दान इस्नानु अरु कामँ । तिस मिलै पदारथ जिस लिखिआ करामं[12]॥
एक दृष्टि ते सभ किछु पाया । इहु मनु एक दृष्टि महि आया ॥
दृष्टि हाट के बँधन खोले । नानक छतालीहूँ हाट विनशे सभ ओले[13]॥५०॥
आन दृष्टि जब इहु मनु धावै । आन दृष्टि अप्राध कमावै ॥
पर त्रिय पर माया कउ हेरै । जब मन जाय आन के डेरै ॥

---

(१) लाभ । (२) पूंजी । (३) व्यर्थ गँवा देना ।(४) जग्यासूजन । (५) निश्चेवान, श्रधालू ।
(६) अनसुनिआं के पास से कुछ नहीं हो सकता । (७) बधिरापन, बहरापन का घाट ।
(८) अगम लोक । (९) धरमराय । (१०) बनावे, गांठ गांठेगा, भाव क्या उत्तर देगा ।
(११) बचन, बोली, उपदेश । (१२) मस्तक के लेख । (१३) परदे ।

आन दृष्टि जब इहु मनु जाय । तब इस कउ नाहि टिकन की जाय ॥
नानक कहै सुनहु जनु ज्ञानी । सैतालीहूँ हाट बसहि अन ध्यानी॥५१॥
पाप हाट जब इहु मनु बरे । पाप कमावै धरमु न करै ॥
धरम पुन्न की सूझ न पाई । तब मनु पाप जाय ठहराई ॥
पापि रत्ता मनु धरम न जानै । अंत बार जमु दुख दे डानै[1] ॥
पाप हाट के लक्षण फीके । पाप अंत बैरी है जीके ॥
अठतालीहूँ हाट पापु कमाया । नानक पाप कीए ताँ दोजकि पाया ॥५२
धरम हाटि जब इहु मनु जाय । सुकृत्त करै आत्म लिवलाय ॥
पुन्न दान की महिमाँ जानै । पाप दृष्टि सुप्ने नहि आनै ॥
धरम धीर्य की जिस मनि हृढ़ता । हरि जसु सुनत कवल ज्यौं खिड़ता
धरमु कमावै पापु न करता । जिस ते धरमराय है डरता ॥
ऊनँजहूँ हाट धरमु कमाया । नानक धरम हाटि मनु जाय समाया ॥५३॥
रत्न हाट जब इहु मनु जानै । रत्न की जोति कउ तबहिँ पछानै ॥
चहु रत्नाँ की जिस मिति आवै । सोई रत्न हाट कउ पावै ॥
चहुँ रत्नाँ की जानै जाति । तिस जनु की सभ तूटै भ्राँति ॥
चारि पदारथ तब ही लेइ । जब मन अरपि साध कउ देइ ॥
साध कृपा ते लहै पदारथ । साध सेव बिनु जात निरारथ ॥
चहुँ रत्नाँ की जो मिति देवै । ताँके चरन नानक जनु सेवै ॥५४॥
प्रथम रत्न की सो मिति पावै । अभय हाट जब जाय समावै ॥
प्रथमे नामु पदार्थ पाया । साध चरन जब इहु मनु लाया ॥
नाम रत्न की जोति प्रगासी । जब ते मिले साध अबिनासी ॥
नामु रत्न लै कंठ परोवै । ताँ को जन्मु बहुरि नहि होवै ॥
एक बार बिनु बहुरि न जरमैँ । रत्न पदार्थ बिनु फिरि भरमै ॥
अभय हाट जब इहु मनु आइआ । नानक ताँ कउ रत्न दिखाइआ ॥५५॥
साध कृपा ते मनु ठहराना । मुक्ति पदार्थु तबहि पछाना ॥
साध सेव ते मुक्ति पछानै । साध सीख जब अंतरि जानै ॥
मन बच क्रम सुप्रसन्न भये साधा । मुक्ति पदार्थ तिन ते लाधा ॥

---

[1] दंड ।

मुक्ति पदार्थ जिन प्रगासिआ । अनद हाटि जब इहु मनु बासिआ ॥
साध कृपा ते नामु ध्याया । तउ नानक मुक्ति पदार्थ पाया ॥५६॥
अठसठि माहि अपूर्ब[1] हाट । गुर किरपा ते खुलहिँ कपाट ॥
अपूर्ब हाट मनु रहै समाय । जन्म पदार्थ लहै सुभाय ॥
जन्म पदार्थ तब ही पाया । संत टहल जब इहु मनु लाया ॥
जन्म पदार्थ तिसहि दिखाया । जब ते हरि जस सुनत अघाया ॥
जन्म पदार्थ की मिति जानै । साध सेव जब रिदे पछानै ॥
जन्म पदार्थ गुर ते जानिआ । नानक सो जनु बहुरि न आनिआ ॥५७
काम रत्न की जब मिति आवै । तबै कामु अंतर ठहरावै ॥
जब साधै तब शब्दु अराधै । काम रत्न आय प्रगटै माथै ॥
वा की जोति माथे प्रगटानी । काम रत्न की जोति पछानी ॥
जब छुटकै तब चाँदनु हिरै । काम रत्न को बिरला जरै ॥
गुहज हाट की जब मिति जानी । नानक काम रत्न को बूझै ज्ञानी ॥५८॥
अमर हाट जब इहु मनु आय । होवै अमर पिँड नहि पाय ॥
कवन शब्द ते पिंड न पाय । जीवतु मरै बहुरि नहि आय ॥
साचि मूआ तउ बहुरि न मरना । अकाल भया कथा कालहुँ डरना ॥
अमर हाट जब जाय समावै । नानक चारि पदार्थ बीचारि सुनावै ॥५९॥
बिघन हाट महि सब बिधि राखी । बिधि जानी तिस जोति पराखी ॥
बिधि बिधि करिकै सभ बिधि बाधै । पंचतत्त कउ बिधि सोँ साधै
बिधि बिधि करि सभ तन बीचारै । बिधि बिधि करिकै आपु निवारै
बँद बँद की सभ बिधि जानी । बिधि जानै सो अनभै ज्ञानी ॥
बिधिन हाट की बारी खोली । अगम नगरी बिधि सिउँ टोली ॥
रोम रोम की जब सुधि पाई । नाड़ि नाड़ि की कथा सुनाई ॥
हाट हाट का कीआ मथंतु । ताँ ते सतिगुर दीआ मतंतु ॥
बिअंत देह प्रभि सहजि सवारी । नानक गुर किरपा ते सगल बीचारी ॥६०॥
चितवनि हाट जब इहु मनु जाइ । अनदिनु चितवनि करत बिहाय ॥
चित चितवनि को सरै न काजा । कबहुं नीच कबहूँ होय राजा ॥

---

(१) जिसके प्रथम वैसा कोई ना होवे ।

कबहूँ होवै ब्रह्म-ज्ञानी । कबहूँ होवै अनिक ध्यानी ॥
कबहूँ होवै ज्ञान बिचारी । कबहूँ होय बहै अहंकारी ॥
कबहूँ होय बहै गुरु पीरु । कबहूँ फिरता होय फकीरु ॥
चितवनि हाट जब इहु मनु जाय । नानक चितवनि माँहि बिहाय ॥६१॥
अकल हाट बहि करता अकल। जिँह प्रसादि उधरे जन सकल ॥
अकल[१] निरंजन कउ जब जानै । अकलि करै जब रहै ध्यानै ॥
बिना अकलि कैसे कछु पायै । अकल बिहूना भरमि भुलायै ॥
होय बिआकलु अकल बिहूना। ज्यौं बिनु लोन स्वादु अलूना ॥
अकलि हाटु किरपा ते डीठा। नानक सतिगुर भये बसीठा[२] ॥६२॥
बिअकल हाट मनु जाय समाना। करै अयान[३] ज्यौं बाल अयाना ॥
होय बिअकल अकलि नहि काई। होय बेअकलि हाट शिरि छाई ॥
बिना अकलि फिरता भरमाया । जब मनु बेअकल हाट महि आया ॥
होय बेअकलि तन की सुधि जाई । औझड़[४] भरमै राहि न पाई॥
बिकल बिसुध फिरै बौराना । नानक बिकल हाट जब जाय समाना ॥६३॥
चंचल हाटि करत चतुराई । कथनी बदनी[५] तब मनि आई ॥
कथता बकता कै होय ज्ञानी । चंचल हाट की जोति पछानी ॥
करि चँचलाई चतुर कहावै। चंचल हाटि जब जाय समावै ॥
चतुराई करि कथनी करता। चंचल हाटि जब इहु मनु बरता ॥
साच शब्द की सार न जानैं । नानक करि चतुराई कथा बषानै ॥६४॥
प्रेत हाटि जब इहु मनु रचै। करि बिपरीति जंत ज्यौं पचै ॥
अवराँ निंदै आपि न जपना। होय प्रेतु तनु खोवै अपना ॥
अप तनु खोइआ करि बिप्रीति। प्रेत हाट की ऐसी रीति ॥
होय प्रेतु तनु नाहि समारै। जन्म रत्न कौड़ी लउ[६] हारै ॥
प्रेत हाट का इही गुनाऊँ[७] । नानक उतुघरि बिसरै नाऊँ ॥६५॥
इड़ा हाट जब इहु मनु आवै । इत उत की सभ सोझी पावै ॥
आवन जान ते रहे निरारा । इड़ा हाट जब कीआ पसारा ॥

(१) माया अविद्या रूप कला से रहित। (२) वकील, बिचोले। (३) अयानप, मूरखता। (४) उजाड़, घना जंगल। (५) कथनी=कथा करनी, व्याख्यान देना। बदनी=कविता कहिनी। (६) कौड़ी अर्थ। (७) बीचारु ।

इड़ा बिचड़ा कउ करै सैदानु । अनहद सुन्नि लगावै ध्यान ॥
आन न जानै एकहि राता । इड़ा हाट जब इहु मन जाता ॥
अउघट घाट मन के सभ तोड़ै। नानक इड़ा हाट मनु जोड़ै ॥६६॥
हाट पिंगुला जब मनु बड़ै । बिन मारग गगनंतर चढ़ै ॥
वह मगु नाना[1] क्यौंकरि गढु चढ़ीऐ । डावर[2] तार पलमि तहँ बड़ीऐ ॥
पिंगुल राता सभ गढ़ साधे । पाँचहुँ नायक इक ठाँ बाधे ॥
प्रान नगर की सभ बिधि जानी । पिंगुल जाय जोति पहिचानी ॥
हाट अनूप पिंगुला नाऊँ । नानक तहिँ बूझै सभ भाऊ ॥६७॥
हाट सुष्मना जब मनु जाय । अनंद केल सुख सहज बिहाय ॥
केल करै सुख रलीआ[3] मानै । जब मनु सुष्मन हाट पछानै ॥
सुष्मन राता करै अनंद । काम क्रोध त्यागै सभ निंद ॥
अनंद कलोलनि इहु मन राता । शीतल भया गया सभ ताता ॥
तामस तिष्णा मन ते गई । जब सुष्मन की सोझी पई ॥
इड़ा पिंगुला सुष्मन सूझी । तब मन गुहज कथा सभ बूझी ॥
सुख का हाट सुष्मना कीना । नानक तहिं सुख डेरा लीना ॥६८॥
बेनी हाट जबै मनु जाय । मनु तहिँ बेनी कर्म कमाय ॥
बेनी संगम जब मनु जाता । तब अठसठि सहजे ही न्हाता ॥
बेनी हाट बहि जोति पछानी । बेनी ध्यानु धरहि जब ध्यानी ॥
बेनी महि सभ जोति दिखाई । नानक बेनी सोँ लिवलाई ॥६९॥
त्रिकुटी हाट मैं त्रैगुन त्यागी । चौथे पद कउ भजि बैरागी ॥
तीन गुनाँ[4] की रहत गवाई । जब त्रिकुटी महि करी समाई ॥
राजस[4] तामस सातक तजै । हरि जन चौथे पद को भजै ॥

---

(१) नन्हा, सूक्ष्म । (२) जैसे डमरू की तार, उलट पलट करि अपनी चोट के निशाने पर पड़ती है उसी तरह सुरति की तार भी अपने घर को लक्ष करके बारंबार उधर पलम (लटक) कर अर्थात टिक टिकी बांध कर उस गढ़ में बड़ (प्रवेश पा) सकती है । अथवा डावर नाम ऊर्णनाभी जंतू (मकड़ी) का है जिस प्रकार वह अपने भीतर की तार के साथ नीचे लटक कर फिर उसी के सहारे चढ़ कर अपने घौंसले रूप तने हुए जाल में प्रवेश कर जाती है ऐसे ही सुरत रूपी मकड़ी भी श्वास प्रश्वास की तार से उतर चढ़ कर (शब्दाभ्यास के प्रभाव से) जहां से आई है उस अपने निज देश रूपी घौंसले में प्रवेश कर जाती है भाव समाय जाती है॥ (३) खुशी, रंगरस । (४) इड़ा पिंगुला सुषमना से भाव है ।

चौथे रचि कछु अवरु न जानै। त्रिकुटी माहि चंदोआ तानै ॥
त्रिकुटी ध्यानु धरहि जब क्षीना[१]। नानक तहिँ मनु सहज पतीना॥७०
मनी हाट जब मनु मगनाना । प्रगट जोति माथा झललाना[२] ॥
प्रगट जोति आई जब माथै । बिअंत कोटि उधरे तिँह साथै ॥
कीनी किरपा आपि गुसाईँ। ताँके मस्तकि जोति जनाई ॥
मनी हाट मैँ जोति दिखावै । जब मनु मनी हाट मैँ जावै ॥
प्रगटि जोति जनु हरि संगि राता । नानक हरि जनु अगमु पछाता॥७१
द्वार हाट महि जब मनु गया । दशव द्वारे शीतलु भया ॥
पोहि[३] न साकै उत घरि कालु । उत घरि होय बहै मनु लालु ॥
लालहिँ लालु मिलहि जब जाय। तब कालै का कछु न बसाय[४] ॥
हीरे कउ जाय मिलिआ हीरा । जब दशवैँ जाय चढ़े वजीरा ॥
दशवैँ दुआरे जब मनु गइआ। नानक जन्म मरण ते अस्थिर भइआ ॥७२॥
जैसे सलिलहिँ सलिल समाना। तैसे हरि जनु हरि मनु माना ॥
जैसे कनिका काटि कीआ है राई । ऐसे हरि जन अंकि[५] समाई ॥
जन महि हरि हरि महि जनु राता। हरि जन जन हरि एको जाता ॥
उन्मनि ध्यान जनु हरि संग राता । कहु नानक जन अगमु पछाता ॥७३
अठसठ हाट का कीआ निबेरा। बिरला खोजि लहै जनु तेरा ॥
हाट हाट की जुगति बताई । जिँह घर जाय सु करम कमाई ॥
मन ते आपहुँ कछू न होई । जिँह घर जाय सु तैसा होई ॥
कायाँ गढ़ महि हाट बनाए । इहु मनु उनके बीचि समाए ॥
इह मनु सभ घरि भ्रमता फिरै। गुर किरपा ते अस्थिर थिरै ॥
प्रान पिंड की चीन सुनाई । नानक जन कउ सोझी पाई ॥७४॥

॥अध्याय सम्पूर्ण ६ ॥

---

(१) सूक्ष्म हुआ । (२) मसतकि में जोति प्रगटती हुई झलका मारने लग जाती है ।
(३) छू नहीं सकता । (४) बल, ज़ोर । (५) हरि की गोद में।

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ राग रामकली महला १ ॥

॥ ध्याउ निरबाण का ॥

(वाह वाह; गुरुजी बाणी)

॥ श्लोक ॥

वाह वाह जिनाँ सिवरिआ से परवाण भये ॥
नानक सची सिफति सिऊँ भउजलि लंघि पये ॥

॥ पौड़ी ॥

नाँ तदि घरनु चिहनु नहि देही । नहि सुरति शब्दु कोई पास सदेही[1]
नाँ तदि मात पिता भाई सुत दारा । तदि तूँ कहाँ रहत निरंकारा॥
नाँ तदि बाँधिआ देहु न कीआ पउना । तहाँ नरकि सुर्ग तदि परता कउना
तदि आब षाक आतिश नहिँ धारे । नरकि सुर्ग तदि कउन सिधारे ॥
तदि हाड मास नारी नहि चाँमु । तदहुँ ध्याईऐ कउनै रामु ॥
निरंकार की अकथ कहानी । नानक विसम भया हैरानी ॥१॥
धुंधूकारि[2] महाँ अंध्यारु । धुंधूकारि न कीआ पसारु ॥
धुंधूकारि न पाणी पौणु । धुंधूकारि न सिआणप[3] सौणु ॥
धुंधूकारि न बेद पुराना । नहिँ को मूरख नाँ को सिआना ॥
धुंधूकारि कतेब न बेद । धुंधूकारि ब्रह्म[4] नहि भेद ॥
नाँ तदि वरन न देह उपाई । नानक कीमति कही न जाई ॥२॥
नाँ तदि चँदु नही शितलाई । नाँ तदि सूर्ज किरणि तपाई ॥
नाँ तदि गगन न कीए तारे । नाँ तदि धरति न कीए पसारे ॥
नाँ जलबंबु[5] न पौण उपाया । नाँ तदि ब्रह्म न कीनी माया ॥
कवन रूप हिरदे महि धारौँ । नानक अकथु कथा का क्या बीचारौँ ॥३॥

---

(१) अब ब्रह्मंड की सीमा से निकालते हैं और अगले दरजे के मंत्र उपदेश के योग्य बनाते हैं :—

सनेही, पिआरा । (२) इस धुंधूकार स्वरूप का बरनण पीछे करदिया है । (३) शौनक ऋषि की सिआणप रूप बिद्या ज्योतिष आदि शास्त्र (एक ज्योतिष के कहने से सभ प्रकार की विद्या का ग्रहण है कोई सभके कर्ता शौनक नहीं हुए) । (४) यह भी पीछे कह दिया है कि जब व्याप्य जगत ही कोई नहीं तो उस में व्यापक ब्रह्म कहां रहेगा । (५) जल का बंबा, इस कथन से जल की उत्पति काल की धारा ला है ।

धुंधूकारि सुन्न जब होता । कवनु सुचेत कवनु पै सोता ॥
तब पीर पैकंबर देव न थाना । नाँ को बहिकै कथै ज्ञाना ॥
नहिं मुनिजन सनकादिक जोगी । नाँ को ब्यापक नाँ को भोगी ॥
नाँ को राजा नाँ को महता । नानक तदि नाँ को घाटि नहीं को पहुता ॥४
लोह[१] कलम नही स्याह[२] सुपेदी । नाँ बीचारी नाँ को भेदी ॥
विष्णु महेशु ब्रह्मु न कहीजै । नाँ को उपजै नाहि मरीजै ॥
ओपति खप्न तदि न कछु धारी । नानक कथा न जाय बीचारी ॥५॥
तदि नहि कीने आदम हवा । तदि शिव शक्ति न कीने दिवा ॥
कुराण कतेब न तीह सुपारे । बाँग बुलेल न सुनणै हारे ॥
महमद कलमाँ रासि न कीने । चारि कुरान कहहु किनि चीने ॥
दुआय सलाम निवाज[३] न कोई । नानक धुंधूकार सुरति नहि लोई ॥६॥
नाँ तदि गुरू न सिक्ख न साखी[४] । सुचि संजमु जुगति कहाँ लै राखी
नाँ तदि होम जग्य इस्नाना । गऊ गायत्री बेद नपु राना ॥
नाँ को सुरता[५] नाँ को बकता । नाँ को निबलु न कोई शक्ता ॥
अपुना वरनु चिहन नहि कीना । नाँ तदि नानक कछु दृष्टीना ॥७॥
नाँ तदि पुरुष न कीनी नारी । नाँ तदि ओपति खपति न सारी ॥
नाँ को शाहु नाँ कोइ भिषारी । नाँ कछु चौपड़ कीनी सारी ॥
नाँ को राय न रंकु कहावै । नाँ को मुक्त न नरकि सिधावै ॥
बालकु बिरधि न होता कोई । नहि निहसंश न सहंसा होई ॥
अगम कथा कछु लखी न जाई । नानक जिसु किरपा तिसु देइ दिखाई ॥८॥
अमिता साहिबु मिति नही आवै । अकल निरंजन कल नाहि दिखावै ॥
अपर अपार पारु नहि पायै । रूपु न वरनु कवन बिधि ध्यायै ॥
धुंधूकारु अति गहिर गँभीरु । नानक लखिया न जाय बहुत बिस्थीरु ॥९॥
अंडज जेरज उतभुज नहि सेता । नहि सहज सुभाउ, संजमु; नही नेता ।
तदि तापु त्रित हीआ नही हेता ॥

---

(१) मसतक गत आकाशमंडल में जीवों के कर्म फल चित्रितकारी ब्राह्मी शक्ति । (२) सहस दल कमल रूप नभ मंडल जिस पर जीवों के कर्म चित्रित होते हैं । ऐसा स्याम सेतपद । अथवा पाप पुन्न रूप कर्म स्याही सफेदी । (३) निमाज़ । (४) उपदेश, प्रमाण, उदाहरण । (५) श्रोता ।

नाँ कछु सुनता नाँ कछु कहता । अपरंपर निरबाण बिधाता ॥
तदि अपना आपु न साजि सवारिआ । नानक जाति वरनु न बिचारिआ ॥१०
कवन रूप तेरा आराधऊँ । कवन जोग कायाँ लै साधऊँ ॥
कवन तत्तु लै तत्तु बीचारऊँ । कवन ध्यान तुध अंतरि धारौं ॥
ध्यानु रूप ततु जोगु न पायै । नानक अचरज पुरुष कौन बिधि ध्याईऐ ॥११॥
तदि अपना आपु आप ही उपाया । नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया ॥
जब अपने प्रान पिंड की जानी । तब प्रगटी वाह वाह[1] की बानी ॥
वाह वाह का अगम बिचारु । जिस सिऊँ परचि रहिआ निरंकारु
जब अपना आपु उपाय पतीना[2] । तब नानक वाह वाह सौं भीना ॥१२॥
तहिँ वाह वाह कीना परधानु । तहँ वाह वाह का अगम नीशानु॥
तहँ वाह वाह का सिमरण भारा । तहँ वाह वाह का बडा पसारा ॥
तहँ वाह वाह की महिमा नीकी । तहँ वाह वाह आलम है जीकी ॥
तहँ वाह वाह सौं आपि परचिआ । तहँ नानक वाह वाह सौं आपे रचिआ ॥१३
तहँ वाह वाह का अचरज रूपु । तहँ वाह वाह कउ कीआ अनूप ॥
तहँ वाह वाह सौं हरि प्रभु राता । तहँ वाह वाह सिऊँ बैठि उठाता ॥
तहँ वाह वाह बिनु अवरु न बीआ । तदि वाह वाह का सिमरनु कीआ ॥
करि वाह वाह धरि गगन बिछोरी । नानक वाह वाह की अगम है डोरी ॥१४
तहँ वाह वाह सौं राता सुआमी । तहँ वाह वाह की अकथ कहानी ॥
तहँ वाह वाह प्रभ का परचाउ । तहँ वाह वाह सिऊँ बनिआ सुआऊ
तहँ वाह वाह सिमरनु प्रभि कीना । प्रभु वाह वाह सिऊँ सहजि पतीना
प्रभु वाह वाह बिनु निमष न रहता । तहँ नानक वाह वाह प्रभु कहता ॥१५॥
जब धरणि अकाश कछू नहि कीआ । तब प्रभु वाह वाह मथि लीआ
चँदु सूर्ज नहि कीआ उजारा । तब वाह वाह प्रभु मन महि धारा ॥
तब पौण न पाणी षाकु न तेजु । तब वाह वाह का कीआ बँधेजु॥
वाह वाह कीना निरबाणु । नानक वाह वाह हैराणु ॥१६॥
वाह वाह की बडी हैरानी । वाह वाह की मिति नहि जानी ॥

(१) धुंदूकार में हिलोर रूप वाह वाह शब्द सरूपी आनंदाकारा अवस्था। (२) पतीजना, परतीत लाना। (३) बिलास।

तहँ वाह वाह का अगम बीचारु । तहँ वाह वाह का अंतु न पारु ॥
तहँ वाह वाह ऊचे ते ऊचा । तहँ वाह वाह कउ को न पहूचा ॥
वाह वाह मति धुंधूकारि । नानक आपे जपिआ पिआरि ॥१७॥
नहि कछु दूजा प्रभु एकंकारु । तब वाह वाह का करत अहारु ॥
तब वाह वाह सिऊँ अकथु कहानी । तब प्रभु रहता महा निरबानी ॥
तब वाह वाह सिऊँ हरि ठहराया । अति अतीतु वाह वाह रीझाया ॥
वाह वाह रीझाया आपि । नानक वाह वाह तहँ रहिआ ब्यापि ॥१८
तहँ वाह वाह ही जपु तपु पूजा । तहँ वाह वाह बिनु अवरु न दूजा
वाह वाह सिमरनु अरु सेवा । तहँ वाह वाह बिन अवरु न देवा ॥
तहँ वाह वाह लागी धुनि तारी । तहँ वाह वाह की कथा निआरी
तहँ वाह वाह कीर्तनु जसु गायै । नानक वाह वाह बिनु कछु न दृष्टायै ॥१९॥
करि वाह वाह[1] कीना ॐकार । वाह वाह करि कीआ बीचारु ॥
करि वाह वाह धरि गगन विछोड़े । वाह वाह करि अहि निशि जोड़े
करि वाह वाह धुनि धरनी बाँधी । करि वाह वाह मनसा आराधी ॥
मनसा मन ते उपजि खलोई । दोय कर जोड़ि आइ ठाँढी होई॥
आपे मनसा मन ते कीनी । नानक आगे होय अधीनी ॥२० ॥
खुला ध्यान छूटी जब तारी । तब मनसा मन माहिँ चितारी ॥
प्रभु पूछै तूँ कवनु री बाई । तुम ते उपजी मनसा माई ॥
मनसा लीजै बचनु हमारा । एकस ते प्रगटै पासारा ॥
त्रैगुण प्रगटहि अनत तरंगा । नानक प्रभु ते मनसा मंगा ॥२१॥
खुला ध्यान छूटी जब तारी । करि वाह वाह मनसा मनि धारी ॥
चितवनि करते मनसा आई । प्रभु पूछै तूँ कवनु री बाई ॥
मनसा माई मन ते होई । तुम चितवी तब आय खलोई ॥
तो मनसा क्या रचनु रचाईऐ । करि बिथार[2] मनु सहजि लडायै ॥
करनि हार तुम आगम धनी । नानक सो कछु करहु जो तुम मनि बनी॥२२
तब मनसा लै निकटि बहाली[3] । बचनु देति षुरमी[4] हथिआली ॥

(१) उप्रंत ॐकार की धुनी हुई । (२) विस्तार । (३) बिठला लिया । (४) खुजली हुई, फुरकी ।

बचनु देति छालकु[१] होय आया। आपे अचरजु[२] खेलु रचाया॥
त्रै मूरति छालकु महि आनी। तब मनसा उपजी हैरानी॥
छालकु फोरि तीनि प्रगटाने। त्रैगुन प्रगटे एक समाने॥
धुंधूकारि प्रभु रहै निरारा। नानक तिहुँ ते कीआ पसारा॥२३॥
तहँ वाह वाह आपि अषाइँदा[३], गुर शब्दी सचु सोइ।
वाह वाह बाणी सचु है, सचु मिलावा होय॥
नानक वाह वाह करदिआँ, करमि प्राप्त होय॥ २४॥
वाह वाह करती रसना सुहाई। पूरे शब्दि मिलिआ प्रभु आई॥
वाह वाह मुखि सहज कढाई[४]। वाह वाह सिऊँ प्रभ बनि आई॥
वाह वाह करि रचन रचाई। वाह वाह धरि धुनि लिव लाई॥
नानक दरि सचे शोभा पाई॥ २५॥
वाह वाह करत मुख ऊजल होवै। वाह वाह कौ सहजि बिलोवै[५]॥
तहँ वाह वाह का नेत्रा[६] कीआ। वाह वाह सहजै मथि लीआ॥
तहँ वाह वाह करि तत्त वटोलया[७]। वाह वाह करि ताला खोल्या॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आपे राता। नानक वाह वाह करि आपु पछाता।२६
तहँ वाह वाह सिऊँ रचिआ रंगि। तहँ वाह वाह सखा है सँगि॥
तहँ वाह वाह सिऊँ रहै निराला। तहँ वाह वाह ऊची टकसाला॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आलमु करता। तहँ वाह वाह सिऊँ ध्यान धुनि धरता

---

(१) छाला। (२) पीछे भी थोड़े से भिन्न भेद के साथ इस उत्पत्ति का प्रकार आ चुका है। जो ग्रंथ, शास्त्र देखे जावें सभ में उत्पत्ति का प्रकार निआरा ही निआरा है। सो इसका वास्तिवक अभिप्राय संसार की अनस्थिरता; और कुछ भी नां होना समझाने का है। जिन जिन पूर्ण आचार्यों ने उत्पत्ति लिखी है इस प्रकार लिखी है कि अपने आपको निरबाण अवस्था में इस संकल्प पूर्वक अभेद जा किया है कि हम को इस संसार इंद्र जाल की रचना का हाल विदित हो, परन्तु मालिक की शक्ति अपरंपार है; इस का वारा पार नहीं हो सक्ता वह उत्थान अवस्था में और ही प्रकार का ठाठ रचना का दिखला देता है। सो जग्यासुओं को व्यामोहित नहीं होना चाहिये यह कुछ नहीं है परन्तु कुछ नहीं का कुछ कर दिखलाया है। इस कुदरत के सहारे कर्त्ता पुरुष को घर में खोजो।

संकल्प किये बिना भी उत्थान दशा के आते संसारी रचना का प्रकार कई बार स्फुरण हो आता और स्मरण रहि जाता है।

(३) कहिता, जपता। (४) सहज के मुख से अथवा सहज स्वभाव से निकालता था। (५) सहज मटकी में मथन करता। (६) मथते समय मथानी के साथ मथन करने वाली जो रज्जु बँधी होती है। (७) माखन निकासा, ऊपर से बटोर लिया, निकाल लिया॥

तहँ वाह वाह कीना परचाउ । नानक वाह वाह सिऊँ बनिआ सुआउ ॥२७॥
तहँ वाह वाह अम्रित की बाणी । तहँ वाह वाह उपजी हैरानी ॥
तहँ वाह वाह करि धरिआ ध्यानु । तहँ वाह वाह मजनु इस्नानु ॥
तहँ वाह वाह सुचि संजम पूजा । तहँ वाह वाह बिनु अवरु न दूजा ॥
तहँ वाह वाह है एकंकारु । नानक वाह वाह ओपति पासारु ॥२८॥
तहँ वाह वाह का अगम नीशानु । तहँ वाह वाह सिऊँ बने बषानु ॥
तहँ वाह वाह द्रिढ़िआ मनि चीति । तहँ वाह वाह सिऊँ साची प्रीति ॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आपि रीझाना । तहँ वाह वाह सिऊँ रसि मन माना ॥
तहँ वाह वाह का कमलु बनाया । नानक होय भवरु लोभाया ॥ २९ ॥
वाह वाह करता है सोय । वाह वाह लीआ कंठि परोय ॥
वाह वाह तहँ बिश्नु[1] बनाया । वाह वाह तहँ कीनी माया ॥
वाह वाह कीना सुत दारा । वाह वाह लागा मनि पिआरा ॥
वाह वाह कीना धुनि नादु । वाह वाह जोग बिसमादु ॥
वाह वाह कीनी है माला । नानक सिमरै आपि दइआला ॥३०॥
वाह वाह इस्नानु बनाया । वाह वाह का टीका लाया ॥
वाह वाह सुचि संजमु धोती । वाह वाह की पूजा होती ॥
वाह वाह उरसा[2] अरु केसर । वाह वाह कर्ता परमेशर ॥
वाह वाह तहँ कीना चंदनु । वाह वाह कउ पूजा बंदनु ॥
वाह वाह तहँ ठाकुर द्वारा । नानक वाह वाह तहँ पिआरा ॥३१॥
वाह वाह तहँ पूजा सेवा । वाह वाह तहँ लागी टेवा[3] ॥
वाह वाह तहँ लागी प्रीति । वाह वाह तहँ बसिआ चीत ॥
वाह वाह बिनु अवरु न सुनीए । वाह वाह नादु तहँ धुनीए ॥
वाह वाह तहँ कीर्ति करनी । वाह वाह तहँ जाय न बरनी ॥
वाह वाह तहँ कीआ बनाउ । नानक वाह वाह तहँ सुआउ ॥ ३२ ॥
वाह वाह तहँ रसनु[4] रसाई । वाह वाह तहँ रसि बनि आई ॥

(१) क्षीर सागर शेष की सिहजा पर सोने वाला महाबिश्नु इस जगह भावित है । (२) पूजा के वास्ते केसर चंदन रगड़ने वाला पत्थर । (३) आदत सुभाव प्रंतु ; यहां धुन से भाव हैं। (४) रसना से, वाह २ भलीभांति पकाया । रसना यहां आत्मिक शक्ती सुरत है क्योंकि पिंडी रचना वहां है ही नहीं ॥

तहँ वाह वाह कीर्ति मुख करैं । वाह वाह तहँ सहज उचरे ॥
तहँ वाह वाह सिऊँ बनिआ चीतु । वाह वाह साजनु तहँ मीतु ॥
वाह वाह तहँ सषा सहाई । नानक वाह वाह धुनि लाई ॥ ३३ ॥
करि वाह वाह कीना आकार । करि वाह वाह कीआ ब्योहार ॥
वाह वाह करि सफा बिछाई । साढे उणवंजह क्रोड़ि बनाई ॥
वाह वाह करि गगनु बनाया । अकल पुरुष बिनु कला रहाया ॥
करि वाह वाह शशि[1] जोति स्वारी । नानक कीनी कथा निआरी ॥ ३४ ॥
करि वाह वाह किरनि है करी । नव सत किरनि एक ही धरी ॥
करि वाह वाह रखिआ अकाश । तहँ वाह वाह बिनु अवरु न पास ॥
वाह वाह तहँ मता मसूरति[2] । तहँ वाह वाह रहता हरि मूरति ॥
करि वाह वाह दिनु रैन उपाए । नानक आपे रंग बणाए ॥ ३५ ॥

॥ अध्याय सम्पूर्ण ॥ १० ॥

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय ११ ॥

॥ उदास कर्म, जोग बैराग ॥

॥ रांग सूहबि महला १ ॥

भरमत शांति न आवसि अंधा ।
काल क्राल सदा शिर ऊपरि बिन हरि भगति न छूटहि फंदा ॥
॥ १ ॥ रहाउ ॥
तिष्णा चलै भूख मति हीना । अधिक पिआस माया मदि लीना ॥
जिह्विआ स्वादि कुंडी कंठि मीना ॥
सत्संतोष नही मनु मानिआ । दह दिशि धावत भरमि भुलानिआ
दुष्ट संगति मैं लोभ बिकारा । साध संगति महि मुक्ति द्वारा ॥ १ ॥
काम सुआदि बाँधियो गज हस्ति । सीस सहे अंकुश मारे अति ॥
मनमुख अंधुले अंधुली मत्ति । शब्दु न चीने होय असत्ति ॥
उपजै बिनसै आवै जाय । नानक गुर बिनु नरकि पचाय ॥ २ ॥

---

(१) चंद्रमा । (२) मसौदा गढ़ना, मनसूबा बांधना

कवन उदास कहहु बीचार। जो आया सो चलणहार ॥
कर्म के बाँधे फिरै बिगारी[१]। जोबन धन मति गति पति हारी ॥
हउमै अवगुन बाँधो जाय। शब्दु न चीनै भवजल पाय ॥
मुक्तिवर दाता मनहु बिसारै। आवत जावत नरक गुबारै ॥३॥
अस्थिरु दाता तिलु न तमाइ[२] ॥
एके कउ एका पत्याई। दरि महली घरि सचि बडिआई ॥
सतिगुर पाया सुरति समाई ॥
इहु मनु मानिआ अगनि निवारी। नानक आतम तत्तु बीचारी॥४
तिष्णा तपति तपै बहु भारी। पर दर्बु हिरै काँमनि सुत नारी ॥
बहु चिंता पीड़ी जलै अहँकारी। जूए खेलणु कची सारी ॥
नानक बूडत गिरत तरीए क्यौं तारी। उत्तम खोजै सची कारी[३] ॥५
बिषु खावै बिषु भोगै भोगु। बिषु पहरै बिषु पेखै रोगु ॥
बिषु संचै बिषु की सभ वाड़ी। बिषमु भया भूलै ओजाड़ी ॥
जमु कंकर काल प्रोतो प्रान। नानक अंति कालि दुख सहे निदान ॥६
सहज उदासी आतम बीचारि। कौन कर्म ले उतरे पारि ॥
कहाँ सु बैसै कहाँ भोजनु खाय। कितु घरि बसै न आवै जाय ॥
किस ते रहत किस सँगि सुहेला। नानक कितु बिधि हरि प्रभ मेला॥७
दास उदासी गुरमुखि भाय। निजि घरि बसै फिरि कालु न खाय ॥
पेखि अचर्ज बिसमु होइ जाय ॥
ऐसा दास उदासी जाणु। सो उदास जाणै मिहमाणु ॥
नानक ऐसा दास दरगहि परवाणु ॥ ८ ॥
आपे कहि बूझै बोलै तत्तु। आपे अमरु अतीतु सु गतु ॥
ब्रह्म कमंडल अंम्रित भरिआ। सुन्न समाधि उन्मनि लिव धरिआ ॥
बादु बिबादु नाही अभिमानु। नानक दरगह पति परवानु ॥९॥

(१) सरकारी बेगार भरने वाले लोग जिन को दाम कुछ नहीं मिलता और बोझा उठवाने का ही कर उन से लिया जाता है ऐसे जो जीव भजन अभ्यास से शून्य जाते हैं केवल उस सच्चे मालिक की करम फल भोगने रूप बेगार ही भोगने आते हैं। अथवा कर्म कांडियों को बेगारी कहा है। (२) तिल भर भी जिसे तमां नहीं (निज महिमा में संतुष्ट)। (३) "ऊभउ माथौ जमु चोट कारी" (पाठ भी है)।

पति परवाणु दरगहि पति पाई । आदि अंति गुर भया सहाई ॥
हीरे रतन ज्वेहर लाल । सचु सूची साची टकसाल ॥
सचु सराफ सराफी कोलै । नानक सचु कसवटी पूरा तोलै ॥१०॥
सहजि उदासी रहै अतीतु । अकलपत सरोवर पीउ अपीतु ॥
रूख बिर्ख इकंत को बासा । एक ऊपरि तिसु जन की आसा ॥
ऐसा दासु उदासी मिलिआ । नानक प्रणवै गरभि न गलिआ ॥११
चंचल चाय न परग्रिह जाय । पर रूपु न देखै नही पर दरबु हिराय
जैसा अंम्रित अैसा बिषु तैसा । अैसा दासु उदासी जैसा ॥
सहजि उदासु मनाए सउणु । गुरमुखि परखे त्रिभवण भउणु ॥१२
तीनु भवण सचु जाणे थानु । त्रिकुटी छूटी गुणी निधानु ॥
निर्मल पाधरु नदरी आया । अैसा दास उदासी पाया ॥
सहज उदासी गुरमुखि होय । अस्थिरु कंधु नानक सचु सोय ॥१३
सहज उदासी बसै अकाशि । दास उदासी तषति निवासु ॥
दास उदासी रहे निरासु । गगन मँडिल त्रैलोक निवासु ॥
अहि निशि जागे गुर ज्ञान अभ्यासि । सगल धर्म हरि भगति निवासि
अंम्रित गुर बचन सोँ कवल बिगासु । नानक बिरले दास उदासु ॥१४
गुरमुखि ऐसा दासु उदासी । चीने शब्दु से तषत निवासी ॥
पंजे इंद्री गुरमुखि जित्तु । अंम्रित नामु प्राप्त तित्तु ॥
जैसा जल कवले अस्नेहु । त्यौँ नानक प्रीति न तूटसि एहु ॥१५
अैसा दास मिलै सुख पाया । जन्म मरण का गवणु मिटाया ॥
अचिंत भोजनु पति कपडु पूरा । गुरमुखि पैधा शब्दु हजूरा ॥
अैसा दास मिलै शुभ लछणु । नानक कहै उदासी लक्षण ॥१६
कंचन कोठ अनूप अपारे । गुरमुख दास बसहि हरि पिआरे ॥
ऊची पवड़ी अपरंपर थानु । तहँ पारब्रह्मु सचा दीबानु ॥
सहजि उदासु सचु नदरि परवाणु । नानक कहे उदासी जाणु ॥१७

सहजि उदासी तत्तु बीचारि । बंधन ते मुक्ता मोख[1] दुआरु ॥
रहे अतीतु अकलपति घरि वासु । पारस[2] अँकु न लावै पासु ॥
रहे अतीतु पछाणे ब्रह्मु । जीवत मरे रहे निह कर्मु ॥
जुगति जत्त संजमु शील रक्षणु । नानक कहे उदासी लक्षणु॥१८॥
बाहरि जाय न मढ़ी मसाणि । गुर मुक्ते कीए सचे ताणि ॥
सचा उदासु शब्दि मनि चाउ । सिफती रत्ता आतम राउ ॥
गुर की मति लै शिक्षा सिक्खनु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥१९॥
थोड़ी निंद्रा अलप अहारा । सदा सुचेतु प्रगट पासारा ॥
पर घर जाय न भिक्षा[3] ले । बिषया बिष त्यागे अंम्रितु सचु ले॥
सचु शब्दु की सची जक्षण[4] । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२०॥
धुनि निरंतरि एकु ध्यावै । मूल ध्यान डोरी सचु लावै ॥
पंचे मारि जुगति पति पावै । अैसा दास उदासी पावै ॥
चढ़िआ दास देवै परदक्षण । नानक कहै उदासी लक्षण ॥२१॥
दे पड़दक्षिणा चढ़े अकाश । पारस परसु मिले प्रभ तास ॥
इड़ा पिंगुला सुषमना नाड़ी । शशिघरि[5] सूर[6] बसै गैणारी[7] ॥
पंज सत्त नउँ लागा रक्षणि । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२२॥
दीपक जोति गुर शब्दि बिगासु । अस्थिर मनूआ गुर चरनि निवासु
बोले सत्तु असत्तु न वाकु । सच्चे घरु सचु साचउ ताकु[8] ॥
जपु तपु संजमु सुरत बिचक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२३॥
जोगी जोगु जुगति घरि पावै । ज्ञान भुगति लै मनु तिप्रावै ॥
कलपि त्यागी गुर शब्द सुहेला । आये हर्षु न गइआ भैला[9] ॥
जुगति जत्नु करि अंम्रित रक्षण । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२४॥

---

(१) मोक्ष द्वार तीसरे तिल से भाव है। (२) अष्ट धातु ही पारस में आ जाती हैं भाव धातु सपर्श; साधू नां करे। (३) एक अपने मालिक को छोड़ कर जो कि इस का अपना घर भी है किसी और के आगे जाचना नां करे। वा सहज स्थिती को छोड़ कर भोग पदार्थों के संकल्प न उठाता रहे। (४) शोभा। (५) सहस दल। (६) चन्द्र शक्ति। (७) गगन मँडल में। (८) साचे घर में साचे को ताको (टिक टिकी बांध कर देखो)। (९) शोकातुर होना, जैसे म्रितका का भेला (ढेला) अपने आप में सुंगड़ा होता है ऐसे धन हानि आदि से शोकित हुआ नहीं संकुचित होता। (धन हानी पर भय की प्राप्ती नहीं होती इस कारण भै शब्द डर का सूचक इस जगह नहीं समझा जा सकता)।

नउँ सर शुभर दशवैँ पूरा । तहँ अनहद सुन्नि बजाए तूरा ॥
तहँ शंभू की[1] नगरी अनहदि घरि रहे । जोगी होय सो नगरी लहै
ऐसा दास उदासी कोय । दासु उदासु निरारा होय ॥
सुन्न ते शंभू आदि गुर रक्षण । नानक कहै उदासी लक्षण ॥२५॥
सुन्न ते संभू[2] होवै आदि । सुन्न ते नीलु अनीलु[3] अनादि ॥
सुन्न लेख लिखिआ नीसानु[4] । सुन्न ते सहज कला परवानु ॥
सुन्न ते कीता धरती असमानु ॥
सुन्न संभू का जाणे भेउ । सो ऐसा उदासु निरँजनु देउ ॥
ऐसा जोग जुगति करि रक्षण । नानक कहै उदासी लक्षण ॥२६॥
गुरमुखि ज्ञानु दिढ़ै सचु धर्मु । करि पूजै सगला पारब्रह्मु ॥
ऊचो पवड़ी चढ़ै निरारा । अम्रित पीवै निर्मल धारा ॥
निर्मल जोति सचु नदरि परक्षणु[5] । नानक कहै उदासी लक्षणु ॥२७
कायाँ नगरु उदासी थानु । पंचे इंद्री मारि मशानु ॥
मान सरोवरि करि इस्नानु । ऐसा दास उदासी जानु ॥
ज्ञान खड़ग लै दूताँ रक्षणु । नानक कहै उदासी लक्षणु ॥२८॥
ज्ञान खड़ग लै मन कउ मारि । गुर कै शब्दि सच बीचारि ॥
ऊपरि[6] त्रिभवणु सच्चा सचु थानु । भरपुरि लीणा गुणी निधानु ॥
उदास कर्म रस स्वाद न चक्षण । नानक कहै उदासी लक्षण ॥२९॥
उलटि पवनु मनु सुन्नि समावै । पंच बाण लै धनुष चढ़ावै ॥
ऊपरि चढ़ै अकाशि सुमेरि । दे पड़दक्षिणा आवै फेरि ॥
लहै निधानु लिखे निधि नामु । दरगहि पैखै पति परवानु ॥
ज्ञान रत्नु घटि भातरि रक्षणु । नानक कहै उदासी लक्षणु ॥३०॥
उलटी गंगि बहावै नीरु । पलटि सिधीरे[7] धीर सिधीरु ॥
ज्ञान खड़गु लै सन्ने[8] बाणु । अगमु निगमु (सभ) जाने जाणु ॥
अठसठि मजनु कायाँ मटु काँसी । प्रणवत नानक दास उदासी ॥३१

(१) सुन्न मंडल । (२) त्रिकुटी के धनी से भाव है । (३) स्यामसेत, सहसदल के धनी से भाव है । (४) इसी स्यामसेत में जीवों के शुभाशुभ कर्मों के संसकार चित्रित किये रहते हैं । (५) परखना, पहिचानना । (६) त्रिकुटी से ऊपरि । (७) पलट कर सुरति गंगा को सीधे राह धीरे धीरे चला जावे । (८) युक्ति रूपी खड़ग गुरों से लेकर दृष्टि की धार का बान उस में साधे (यहां खड़ग से कमान का हथ्था अभीष्ट है जिस के गोशों में प्राण का चिल्ला भी चढ़ना ज़रूरी होता है) ।

उँदर[1] दुँदर परिहरि ठाकि। मुक्ति पराइणु[2] सतिगुर के वाकि॥
उतर सरोवर अउघटि[3] घाटि। अठसठि मजनु तिलकु[4] लिलाटि॥
अघड़ घड़ावै उलटै[5] चाकि। सचु घरि महलि बसै अउताकि[6]॥
गुर की मति लै भया उदासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३२
मन पवना घरि सहजि समाइ। तीन सुन्न[7] की सोझी पाइ॥
गुर के शब्दि रचे भै भाइ[8]॥
अनदिनु मजनु कायाँ मटु काँसी। त्रिकुटी छूटी सुन्नि समासी॥
गुरमुखि चीने सो अबिनासी। प्रणवति नानक दास उदासी॥३३॥
तीन भवण[9] का जाने थानु। उह दरगह पैधे पति परवाण॥
आदि निरंजनु परमि निधानु॥
पूरे गुर की पूरी मत्ति। एको आसति सत्ति सुमत्ति॥
सो दाना अदली बहै तषति॥
निहचलु मनु न आवै जासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३४
ऐसा दासु मिले मनु मानिआ। सहजि उदासी ब्रह्म पछानिआ॥
अमरु भया अमरा पदु पाया। आनँदु रूप सभु नदरी आया॥
गुरमुखि गिरही माहि उदासी। प्रणवतु नानक दास उदासी॥३५
सहजि उदासी सचि सुहाया। सची दरगह महिलि बुलाया॥
सच्चा भोजन कपड़ आया।
सहजि उदासी सचि समाय। निज घरि बसै फिरि कालु न खाय
अचरज रूप पेखि सचि समासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३६
मोहिनी मोहि न सके तासु। जरा मरनु का भया बिनासु॥

---

(१) उलटे हुए जो दो दो दरवाज़े हैं उधर से बंद करके उधर को लगादेवे। (२) मुक्ति दान में तत्पर। (३) उलटे मारग का घाट। (४) जहां मस्तकि पर तिलक किया जाता है वहां त्रिवेणी का घाट है जिस में स्थित होने से सर्व तीर्थ स्नान के फल वत संपूर्ण पाप धोये जाते हैं। (५) उलटे चक्र में अघड़ घाड़त करे (सुरति कमल में)। (६) सच्चे घर के मंदिर में उलटा ताक कर बासा करे। गुणों के प्रथम अ, उ-उपसर्ग बढ़ाया जावे तो उलटा अर्थ हो जाता है अर्थात दोष रूप अर्थ हो जाते हैं। ऐसे ही ताक के पहिले अ, उ लग जावे तो उलटे ताको अर्थ होगा। (७) सहसदल, सुन्न मंडल, सच खंड। (८) गुरों को हाज़र नाज़र जान कर अदब तथा प्रेम से शब्द में लगा रहे। (९) सहज सुन्न।

उर्द्ध कमलु मुखि सहजि विगासु। गुर मति मिलिआ प्रभ गुणतासु॥
ऊची[1] नदरि सराफी होय। नानक कहै उदासी सोय ॥३७॥
आपे बोले बोलणहारु। आपे समझि करे बीचारु॥
गुर मति पाई मनु ठहराना। आदि अनूप निरंजन जाना॥
कवला दासी लागी पाँय। चौथे पदु को जो मनु पतीआय॥
पंच दूताँ सिऊँ गोष्टि खोई। नानक कहे उदासी सोई ॥३८॥
शुभर सरोवर गुर द्रयाउ। अति निर्मायलु निर्मल नाउँ॥
प्रेम परायण प्रीतम राउ॥
तू बषशहिँ धक्का नहीँ कोय। तू बषशहिँ जमु दरि नही गोय[2]
जिसु बषशहिँ सो पूरा होय। नानक कहे उदासी सोय ॥३९॥
अबगत चीने जो आपु गवावै। सो नरु पुनर्पि जन्मि न आवै॥
जाति वरणु कुल तारे इऊँ। अहि निशि साध संगति गुर सेऊ[3]॥
गुर प्रसादि मिले वडिआई। इऊँ मनु निहचलु कतहूँ न जाई॥
गुणाँ हार लै कंठि परोई। नानक कहे उदासी सोई ॥४०॥
पूरा सतिगुर सहजि मिलाया। ऐसा दासु उदासी पाया॥
सर्ब निरंतरि अलषु लषाया॥
तिष्णा तामस ठाकि मनु मानिआ। आसा मनसा त्यागि समानिआ
निरंकारु अकुलीणु सबाया। नानक दर्शनु दासु समाया॥
दर्शनु परसि परम गति होई। नानक कहे उदासी सोई ॥४१॥
दर्शनु परसि मनु सहजि विगासिआ। अमरु भया जमु कालु न धासिआ[4]
अचरज रूप हरि नदरी आइया। पति सिऊँ पैधा[5] प्रभ पहिनाया॥
ऐसा उदासी ऐसी पति होय। नानक कहै उदासी सोय ॥४२॥
सो सिष्टि कर्ता करनै जोगु। सुन्न समाधि गगन रस भोगु॥
जहँ देखा तहँ रहिआ समाय। अबिनाशी अलष अलषनो जाय
खंड ब्रह्मंड जाँकी धर्मशाला। उतपति परलौ आपि निराला॥
जिन घटि दुबिधा दुर्मति न होई। नानक कहै उदासी सोई ॥४३॥

(१) उलटी नज़र से परखने की शक्ति आती है। वा सराफी ब्यवहार हीरे रत्नों का होता है। (२) गूधा जाना, दुख दिया जाना। (३) सेवन करो। (४) दबका मारना, डराना। (५) षिलअत।

देही अंदरि अठसठ हाट। तिन के बजर जड़े कपाट।
अउघट घाट बिषम है बाट॥ ऐसा मार्ग सतिगुरू दिखाया।
गुर शब्द सुरति ते कपट[1] खुलाया॥ अम्रितु नामु रतनु मनि भाया
हिरदै लालु न दुरै दुराया। नानक पूरा दर्शनु पाया॥
ऐसा दास मिलै जन कोई। नानक कहै उदासी सोई॥४४॥
सतिगुर मिलति तबी मनु मानिया। तिषा निवारी आपु पछानिआ
रवि शशि[2] आदि निरंजन जोति। पवनु[3] पानी अंकार सरोति॥
नाँ जोउ मरे न दुतीआ जावै। त्रिकुटी फूटी इऊँ सुन्नि समावै॥
निर्मल एक निरंजन पावै। नानक जोती जोति समावै॥
त्रिकुटी फूटी मुक्ति दुआरा। तहँ अंम्रितु पीवै निर्मल धारा॥
गगन अकाशि गऊआ जिनि चोई। नानक कहे उदासी सोई॥४५॥
अम्रित पीअ त्रिप्त मुक्ति वरु होई॥
सगल भवन पाताल सबाए। मिरति अकाशि गगनि लिउ लाए॥
सर्ब निरंतरि जोति सरूप। अलषु अतीतु अदृष्ट अनूप॥
निर्मल जोति नही मलु काई। नानक अनहदि शब्दि समाई॥४६॥
सगल भवन पति अलषु सबाया। चहुँ दिशि खोजि अकलप घरि पाया
बिवेक बुद्धि पाया गुर ज्ञानु। आतमे कउ चीने सो परधानु॥
त्रै से संठ[4] गंठी बूझै जनु कोय। नानक मिलते मुक्ति वहु होय॥४७॥
त्रै सै सठि गंठी गुरमुखि[5] खोले। गुरमुखि सचि सहजि घरि बोलै

---

(१) किवाड़। (२) सूर्ज चांद की आद, निरंजन ज्योती है वहीं परही। (३) पवन, पानी अंगार (सुषमना, इड़ा, पिंगला) का सरोत नाम चश्मा है। क-को ग—व्याकरण की रीति से हो जाता है सो गुरू साहब को यहां अंगार शब्द से अगनी अर्थात इड़ा का कहिना अभीष्ट था। (४) तीन सौ साठ जोड़ों की गांठे हैं। मन का घोड़ा प्राण सर्व नाड़ियों में विचरता रहिता है जहां जहां पर जोड़ पर गांठी आई है, वहां वहां पर विशेष प्रकार की टक्कर प्राण खाता है तो जैसे टाप मार कर चलते घोड़े पर स्वार को आनंद आता है; इसी प्रकार मन भा हर्षमान होता है। ऐसे आनंदों की चाट ही से मनइ स शरीर में महान दुख पाता हुआ भी (कुष्ट रोग ग्रस्त शरीर को भी) नहीं छोड़ना चाहता। सो जो जज्ञासी अपने मन को परमपद में पहुंचाना चाहता है उसके उत्साह वास्ते गुरू महाराज कहिते हैं कि ३६० गांठ में विचरने वाले प्राण को जो समझ लेवे और (५) गुरमुखि होकर इन की गांठ (मल तथा प्राण) की खोल देवे तो मुक्ति होते देर ना लगेगी। ऐसे गुरमुख का बोलना सहज घर में होगा भाव उसका सत्यनाम से परचा हो जायगा।

पीवै अंम्रित हरि तत्तु विरोलै । मनु अडोलु गुरशब्दि न डोलै ॥
इस मन मिरग को पावै गंठि । तीरथ परसै त्रै सै संठि ॥
चढ़े सुमेरु बसे अस्थानि[१] । हरि जनु हरि हरि एक समानि ॥
इहु मनु शीतल ब्रह्म ज्ञानि ॥
अजर जरे अग्रहु को गहै । गुर शब्दि अस्थिरु घरि बहै ॥
एक द्रिष्ट समसर सभ कोई । नानक कहे उदासी सोई ॥४८॥
ज्ञान खड़ग लै मन सिऊँ लूझै । मार्ग पंच दशाँ का बूझै ॥
इस मनु मैगलु[२] कउ शब्दि ले बंधि । लहै त्रिबेणी त्रिकुटी संधि ॥
अजरु जरै पूरा थिरु कंधु । इहु रत्न ज्वेहर परखै जनु कोई ॥
नानक कहै उदासी सोई ॥ ४९ ॥
निर्मल नामु हृदे हरि कंठि । हरि हरि हार लै रिदे परंठि ॥
मनु समझै अस्थिरु सचु गंठि । मुक्ति द्वार नही जमु शिर लंठि
आत्म कउ चीनै मजनु अठ संठि ॥
सति सरि न्हावण पूरा होय । नानक कहे उदासी सोय ॥५०॥
जुग जुग निर्मलु मैलु न काई । निह केवल निराहार दीपक धूपाई
ऋद्धि सिद्धि रची तिन कीमति पाई । जो दाना बीना अंति सपाई
अकथु अपारु रविआ जुगताई । नानक सुन्न समाधि लगाई ॥५१॥
आसा मनसा गुर शब्दि निवार । काम क्रोध ब्रह्म अगनी जारि ॥
जरा मरन गतु गरब निवारे । निर्मल जोति अनूप उजारे ॥
सचे शब्दि सचि निस्तारे ॥
लबु लोभु मिटे अभिमानु । जब सचे तषति बैठा परधानु ॥
शब्दु अनाहदु बाजे पंज तूरा । सतिगुर मति लै पूरी पूरा ॥
गगनि निवासि आसणु जिसु होई । नानक कहे उदासी सोई ॥५२॥
गगनि निवासि आसणु जिसु बासा । ते जन विरले दास उदासा
रहै इकंति मड़ी मसाणे । चलते मन कउ भीतरि आणे ॥
उडरि भउरु गगनंतरि चढ़े । गुर परचे ताँ भीतरि वड़े ॥

(१) सच्चखंड । (२) हस्ती ।

ऊपरि कूंप गगन पनिहारी । अम्रित पीवै दशवैं दुआरी ॥
परचै पिंडु ऐसा जोग होई । नानक कहे उदासी सोई ॥५३॥
शुभर सरोवरि घरिहरि वासु । सहजि निपंन्ना[१] कवल प्रगासु ॥
सचो जोति महि कवल सरूप । अदृष्ट अलिप्त स्वादु अनूप ॥
सचु दतारु सचु सहजि निपंन्ना । साची जोति हंसु इकवन्ना[२] ॥
चुणि मुक्ताहल हंस चुणि खाय । सचु चुगे अंम्रित अघाय ॥
जुगति जत्नु करि गुरमुखि रक्षणु । नानक जोग बैराग के लक्षणु ॥५४
थोड़ी निद्रा अल्प अहारी । पहिरा दीनो दशवैं दुआरी ॥
जागत रहै न लागसि चोर । चेतन पुरुष बैठा अभमोर[३] ॥
जतु सतु संजम सुरति विचक्षण । नानक कहै साध के लक्षण ॥५५॥
तिभवणु जिसु मेषुला[४] अमरापदु डंडा । अकलप घरि आसनु तृष्णा भउ खंडा
सो आकलु पूजहु सतिगुर के मुंडा[५] ॥
सो अकाल पूजहु सतिगुर की सेवा । जाँके बंदे देवी देवा ॥
सो आकलु चीनहु अगम अपारा । जिन खंड ब्रह्मंड कीए पाहारा
जिह्विआ अनरस सुआदि न चक्षण । नानक जोग बैराग के लक्षण ॥५६
तामस तिष्णा लोभु निवारे । पंच अगनि[६] घट भीतरि जारे ॥
रहे अतीतु आत्मु बीचारे । सो अबिनाशी पुरुष निरारे ॥
अहि निशि रहे गंडीर चढाय ॥
पंच मारि मनु निज घरि ठाँइ । आपे मेले सहिज सुभाइ ॥
गगनि अकाशि चिति चेता रखणु । नानक कहे जोग के लक्षण ॥५७
साध निवाज़े बंदे चोरा । जमु जागाति न लागसि अउरा ॥
निर्मलु पाधरु सतिगुर दिखलाया । विषु विष त्यागि अंम्रित रसु भाया
मनसा संतोषे सहजि समाया । आपि वीचारि अमर पदु पाया ॥
ध्यान निरंतरि डोरी रक्षणु । नानक कहे जोग के लक्षणु ॥५८॥
अकलु निरंजनु जोति अपारा । घटि घटि दाता सो प्रभू हमारा

---

(१) उत्पन्न हुआ । (२) एक रंग का भाव अदुती । (३) मेरा पियारा, मेरे हृदय विषे, मेरे ओर चारों (रमिया हुआ) । (४) तड़ागी जो कमर के गिरद साधू (निर्वाण) लोग पहिरते हैं । (५) ऐ गुरू के शिष्य । (६) पांच प्रकार की रौशनी ।

अमरु अजोनी दाता सोइ । दैंदे तोटि न कबहूँ होइ ॥
जुगु जुगु देइ न आवे तोटि । जिसु बषशहि तिस छोटो छोटि[1]॥
मुक्ति वरु दाता सचा सोय । नानक दूजा अवरु न कोय ॥५९॥
मन पवणे का जो जाणै भेउ । जिह्वा इन्द्री सचि समेउ ॥
सभ घट भोगे रहे अतीतु । आपे चतुर बिधाते कीतु ॥
अजपा जापु घट पिंड जीआ का रक्षणु । नानक सतिगुर साध का लक्षणु ॥६०
सभसै ऊपरि सभना माँहि । बूझहु गुर ज्ञानी शब्दु सलाहि ॥
शशि घरि सूर समाने भाइ । दरि दर्शन की सोझी पाइ ॥
रहे अलिप्तु न मनु डोलावे । नाद विनोद[2] की सुरति समावे ॥
नानक प्रेमु पदार्थ पावै ॥ ६१ ॥
निज घरि बैसि करे बीचारु । जति देखा तति एकंकार ॥
एकंकार अनूप निरारा । साध संगति मिलि मनु पतीआरा ॥
सो अबिनाशी जिह रूप न रेखे । नानक आतम को चीने जन्मु सुलेखे ॥
अजरु जरे गुर शब्दि निहाल । अनहदि शब्दि सची टँकसाल॥
खरे षजाने खोटे[3] रालि । आपे परखे नजरि निहालि ॥६२
पूरा सचु तोलु पूरा गुर नालि । सची मोहर सिआणै सालि ॥
ऐसा शाहु सराफी करे । सची नजरि एक लिव तरे ॥
हीरा रतनु लाल परखाय । सची कसवटी परख कसाय ॥
मनु माणक जिनि परख पछाता । ऐसा शाहु सराफी जाता ॥६३
पूँजी नामु निरंजनु राता । सचु पैकारी[4] सचे माता ॥
सचु कसवटी परख चितु लाइ । खरा षजाने खोटा नहीं पाइ
नउँ निधि नामु अक्षै निधि पलै । प्रणवत नानक दरगह मलै ॥६४
दाना बीना गुरमत जाणु । बहुड़ि न ताईऐ तितु पति परवाणु ॥
जिसु बषशे सो खरा पिआरा । आपे बषशे बषशन हारा ॥
तिस की कीमति कोय न पावे । नानक सचे सचि समावे ॥
सचि पतीजै सिरजणहारु । नानक पूरा तिसु भंडारु ॥६५॥

---

(१) माफी ही माफी । (२) "बिंद" । (३) धूली में फैंके जांयगे अर्थात् संसार रूप राख में । (४) सचु ही चतुराई, या (सचे पर ही अपनी सभ कारी (कारवाई रखता हुआ) और ।

आपे शाहु सराफ वजीरा । आपे परखि विसाहे[१] हीरा ॥
आपे शब्दु सुरति गुर चेला । आपे साध संगति गुर मेला ॥
आदि अनाहदि शब्दु निराला । नानक बषशे गुर गोपाला ॥६६॥
आपे सतगुरु माणकु हीरा । अति निर्मायल गहर गँभीरा ॥
शुभर सरोवर धीर सधीरु । आदि निरंजन सगल शरीरु ॥
नाम बिना मैं नाहीं कोइ । नाम बिना जमुदरि दुख होय ॥६७॥
नाम बिना जमु मारे बाटि । बेद पुराण पड़हिँ बहु पाठ ॥
नाम बिना जम पँथ करारा[२] । पुरसलात खन्ने[३] की धारा ॥
सिरि जम कंकर ऊभी[४] मारा । नानक जमु मारे नाही कछु चारा
नामु मिलै चलै मैं नालि । नामु मिलै दुख लहै दुरालि[५] ॥६८॥
नामु मिलै सची पति सोइ । नामु मिलै अंति बेली होय ॥
नामु मिलै दरगह जैकार । नामु मिलै नानक सचि पिआरु ॥६९
आदि जुगादी है भी होगु । आपे अलषु लषावन जोगु ॥
जत सत का पूरा शब्द का सूरा । नानक तहँ बाजहिँ अनहदि धुनि तूरा
पूरब पछम चढि दक्षिण जाय । रवि शशि दोऊ इकत्र मिलाय ॥
इकति सूति हारु परोवै मणीआ । नानक सो ऐसा दासु उदासी गणीआ ॥७०
भउरु उडरि गगनि सरि धावै । पंच बाण लै धनुष चढ़ावै ॥
सहजि ध्यानी रहै ध्यानि । त्रिकुटी मिलि फूटी मुक्ति परानि ॥
निजि घरि रहे न आवागउनु । गुरमुखि सदा मनाए सउणु[६] ॥
तुरीआ तत्तु पवै गुर ज्ञानु । नानक सोई दासु उदासी जानु ॥७१॥
अनहद बाजै मनहिँ अनंद । इन बिधि मेला गुर गोबिंद ॥
गुर गोबिंद मिले मनु माना । घटि घटि ब्रह्म अलिप्त समाना ॥
ब्रह्म पछानै केवल बैरागी । नानक सुन्न रहै लिव लागी ॥७२॥

---

(१) वणजै । (२) करड़ा, कठिन, क्रूर । (३) खड्ग की धारा समान नन्हा (सूखम) होने के कारण लंघने को महा कठिन । (४) घनी मार । (५) दलने वाला, दुखदाई दुख भी निर्वित हो जाता है । (दुख सभ ही दुख देते हैं परन्तु एक दुख सहे जाते हैं एक असहि होते हैं । अथवा एक ऐसे दुख होते हैं, जिनमें से सुख निकल आता है; एक ऐसे होते हैं जिन में और दुख की शाषें पसर चलती हैं । सो नाम के प्रताप से ऐसे महान दुख भी दूर हो जाते हैं) । (६) यही शगुन मनाता रहे कि निज घर में ही मगन रहूं ।

ऐसा ज्ञानु पदार्थुसारु। आतम चीनि परात्मु चीने अकथ कथा का अगमु बीचारु
मनु जो देवे रहे लिउ लागी। सुर नर नाथ केवल बैरागी॥
हरि भगति भाउ तत्तु रसुलीना। तिँह घटि बाजे अनहद धुनि बीना॥७३
अस्थिर थान अगम पुरि वासा। ते अवधूती दास उदासा॥
आतम रामु सर्बमहि जानिआ। सहजि सुमति गुर शब्दु पछानिआ
सतु संतोषु सतिगुर का पूतु। नानक भउ भंजनु सतिगुरु अवधूतु॥७४
इहु मनु मारे त पावे गुर ज्ञानु। शब्दु बीचारे सो पाए ध्यानु॥
मनु मनसा बुधि सुन्नि समावै। जन्म मरन दुखु हउमै जावै॥
अखंड मंडल महि डोरी धरे। नानक मनु जीते जीवतु मरै॥७५॥
मूल मुकट[1] मणि हिरदे राखे। उहु मुक्ति पराइणु अहि निशि रसु चाखे
तिप्रि संतोषि रहे लिउ लाई। नानक जोती जोति मिलाई॥
जोती जोति मिलाई साचे। संगति गुर साध मिलति जम का भउ बाचे॥७६
रहै अतीत हउमैं परहरै[2]। सुख दुख ते रहता बैकुंठहुं[3] परै॥
आवत कउ हर्ष न जावत कउ सोगु। सहज घरि आय न ब्यापै सोगु
अनभउ[4] त्यागि निरभउ घरि रहीऐ। आपु बीचारि अमरा पदु लहीऐ॥७७॥
निशि बासुर गुर ज्ञान बीचारा। रामु रिदै पदु पावै सारा[5]॥
मुक्त पदार्थ गुर गोबिंद। सो मुक्त सरोवर नाँही निंद चिंद॥
अंतरि शब्दु निरंतरि बाणी। नानक गुर किरपा ते जाणी॥७८॥
कवला दासी चरण सरेवै। तिस अगम दइआल अभिन्न अभेवै॥

---

(१) अंतरयामी ने इस काया को शिर रूप मुकट से सजाया है; केश इस पर कलगी धरे हैं। जैसे मुकट (ताज) के आगे बहु मूल्य हीरा मणी जड़ा हुआ होता है इसी प्रकार चारि खानि के पातशाह पुरुष के मुकट में त्रिनेत्र रूपी हीरा मणी जड़ी है। इस मुकट के मूल में उसे गुरों के उपदेश द्वारा जान कर उसे सदा हिरदे में रखे भाव भूले नहीं ध्यान में रखे (ध्यान करता रहे)। जो ऐसा करेगा। (२) त्यागै। (३) त्रिकुटी का स्थान ब्रह्म लोक होने ते बैकुंठ है, उस से परे शुन्न आदि स्थान में। (४) सुरति ज्ञान स्वरूप होने से अनभउ स्वरूप है इसका अपना स्थान (सुरति कमल) अनभउ घर है अथवा त्रिकुटी में पहुंचने पर वहां सुरति को गुप्त विद्या का भेद खुलना आरंभ होजाता है इस कारण वोह अनभउ घर है; परन्तु वहां माया और काल की अभी गम्य है इस कारण वोह निरभय पद नहीं निरभउ का घर सुन्न है, वहां पहुंचे जीव पर माया और काल का बल नहीं रहता। (५) सार पद, सभ का निचोड़ भूत।

सतिगुर मत्ति पदार्थ लहै । इहु मनु उन्मनि काल कउ गहै ॥
सचखंड अपरंपर वासु । प्रणवत नानक हम ताके दास ॥७९॥
परमहंस पँच मुद्रा धारी । ब्रह्म कर्म करै ब्रह्मचारी ॥
जप तप संजम तीर्थ वासी । पंच गिरासी[१] तउ संन्यासी ॥
तोड़े बंधन काटी जम फासी । दुत्तरि तरै मुक्ति घरि जासी ॥८०॥
आई मिटे कालु क्यौं बचे । अहिनिशि राम रसायण रचे ॥
अपिउ पीवै गुरमति पति सचे ॥
सचु जोगु कमाई का धनी । परचे पिंड जोग बिधि बनी ॥
ऐसे काल बचन जग धरे । अस्थिरु कंधु कदे न पड़े ॥८१॥
आई मेटण का समर्थ । अगम अथाहु बिअंतु अलखु ॥
ताँका अंतु न किनही पाया । बहु बिअंतु जिसकी सभु छाया ॥
गुण निधानु गुणी रीझाया । नानक पूरा दर्शनु पाया ॥८२॥
मुक्ति रंगि राता रसनि रसाय । आपे कहि बूझे सुरति समाय ॥
उह हरि रसि सूचा सदा सचिआरु । उपरि गुर शब्दु अनाहदु सारु
आदि जुगादी है भी होई । नानक करे करावे सोई ॥८३॥
निज घरि थानु निरालमु होई । तिसि ठाकुर ते भिन्न न कोई ॥
अनंद रूप अनाहद सोई । जिनि सिरजी तिन ही फुनि गोई ॥
कथनि न पाईऐ अकथु तिंहु लोई । गुर सेवक नानक भेदु न कोई ॥८४
सच्चे भावे ताँ पति परवाणु । हउमैं जाय ताँ मिलिआ जाणु ॥
निर्गुन गुर[२] ज्ञानु न जाने अंधु । सरगुण सदा हउमैं दुख बंधु ॥
भूख पिआस रैणि अंध्यारी । नानक निर्मल गर्बु निवारी ॥८५॥

(१) पंच कामादिकौँ को ग्रासने वाला । (२) इन दोनों पदों का अन्वय इस प्रकार भी हो सकता है "गुर ज्ञानु न जाने अंधु । निर्गुन सर्गुन हउमैं सदा दुख बंध" अर्थ सपष्ट है । आगे चल कर एक जगह निरगुण सरगुण दोनों को ही गुरू साहब खंडन करेंगे; इस कारण ऐसा अन्वय किया गया है । जज्ञासू हैरान होंगे कि निर्गुन सच्चा इष्ट है वोह कैसे खंडन हो सकता है इस का उत्तर—जिस प्रकार एक ब्रह्म के चार ब्रह्म गुरू साहब ने पीछे कहे हैं ऐसे ही निर्गुण भी दुख का कारण है । क्योंकि जहां प्रयंत हउमैं है, वहां प्रयंत दुख है; और निराकार के उपासक, जो अपने आप को ऐसा मानते हैं उनमें इस बात का अभिमान और आग्रह पाया जाता है कि हम निरगुण निराकार के उपासक हैं । बुत्त प्रस्तों का तो शिर तोड़ना अपना धर्म माना जाता है; भला

मान सरोवरि मजनु जनि कीना। नाम दानु गुरमुखि जन चीना
निज घरि बैसि अंम्रित रस भीने। आतम आदि अनूपहिँ चीने॥
तत्तु लहे गुरमुखि परबीना। अगन बुझी नानक ठरु सीना॥८६॥
आतम चीनि सुशब्दु समालि। जमु जगाति न लागसि कालि॥
नामु मिलै चल्ले मै नालि॥
करे बबेकु बबेकी सोय। नानक जाँ मनि दूजा अवरु न कोय॥८७
बबेक ज्ञान आतम प्रगासु। आतमे को चीने सो तषत निवासु॥
गुरमुखि सहजि सुभाइ रंग माणे। गुरमुखि सचु चंदोआ ताणे॥
आपे नाथु अनाथु सबाया। आपे स्रीधरु सहजि समाया॥८८॥
अमर पुर नगरु महाँ अस्थाना। तहँ हरि भगत बसहिँ परधाना
तहाँ अखूटु भंडारु नामु षजाना। तहँ ही तुरीआ तत्तु समाना॥
तहँ ही ठाकुर सर्ब सुजाना। तहँ नानक आपे बीना दाना॥८९॥
एक शब्दु दुइ कथा बीचारे। सो आदि जुगादी पुरुष निरारे॥
जागतु रहे समाधि सुचेता। सो समदर्शी तत्त का बेता॥
नानक तितु घटि कालु न परेता। उहु अनहदि राती रहे सुचेता[१]॥
एको एकी निर्गुन प्रभहेता॥ ९० ॥
जोग मारग उदास कर्मा। जपु तपु संजमु निर्मल धर्मा॥
पंज तत्तु प्राण का बंधु। जीउ जोति मिल कीआ कंधु॥
गुरमुखि जोगी जुगति पछाणु। नानक लिखिआ लेखु धुरे परवाणु॥९१॥
आपे दाना बीना जांणे। आपे कहि बूझे हुकम मनि भाणे॥
तिभवणि जोति सुशब्दि लषाई। सर्व जीआ पाले शरणाई॥
सर्व जोति प्रभु रहिउ समाय। नानक सो दाता तिसु तिलु न तमाय॥९२॥
साक्त भूले मोहे माया। कनिक कामनी सिउँ मोहु बधाया॥
हउमैं भरमि मुठा धंधु कमाया॥

इस अहंकार और आग्रह का क्या हेतु है? लाचार निरगुण का इष्ट बांधना ही उत्तर होगा। जिस से स्वयं निशा (तसल्ली) होजाती है कि निरगुण सरगुण दोनों ही एकसे हैं। वाहगुरू का भेद तो नियारा ही है। जैसा कि— "निरगुण सरगुण दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई" इस पंचम गुरूजी के बचन अनुसार यह दोनों भ्राता हैं; इनका पिता प्रभु और ही दृष्टाया है।

(१) सावधान।

घरि घरि फिरे न आवे शांति। जनमि मरहि झूरहि दिनु राति ॥
पूर्व लिखिआ कर्मु कमावे । नानक राम भगति सुख पावे ॥९३॥
जैनी अंधुले भ्रमत खै कालु । गुर ज्ञान गवाया पड़े वशि कालि॥
कर्म धर्म की सार न जाणहि । कूड़े राते कूड़ वषाणहि ॥
शास्त्र वेद नही पूराना । सदा कुचील नानक प्रभ भाना ॥९४॥
तीर्थ वर्त्त नेम नही माला । भगति बिबेकु नही सचु भाला ॥
सतु संतोषु न सतिगुर पाया । हउमैँ त्रिष्णा कर्म भुलाया ॥
केवल राम रिदै हरि नाँही । रामु भगति बिनु मुक्ति फलु नाही ९५
दया दिगंबर बाले भोले । सो रसु पीवै जो तत्तु विरोले ॥
पंडित मिसरा[1] सूचा चारी । पाठ पढ़हिँ अंतरि अहंकारी ॥
वेद वीचारसि ब्रह्मज्ञानी । नानक गुरमति सचि समानी ॥९६॥
गुरमुखि सति सति सभ साधिक। गुरमुखि सनकादिक जनकादिक ॥
गुरमुखि साइरु बांधिउ सेत। लंका लूटी साधिउ[2] दैइत ॥
गुरमुखि ध्रू प्रहिलादु तराइउ। नानक हरणाकशु छेदि भगति जसु गायो ॥९७॥
सर्व निवासी पवना धारी । ईशर मुनिँद्र सेवक दरबारी ॥
अनदिनु सेवहिँ आतम वीचारी । विरले पावहिँ मुक्ति दुआरी ॥९८॥
त्रिभवण लोय[3] केते गुन गावहिँ। कहि न सकऊँ केते बिललावहि[4]
भ्रमि भूले केते पछुतावहिँ । अंतु नही केते सुख पावहिँ ॥
केते कहहिँ केते कहि[5] जावहिँ। नानक भूले गुरमति समझावहिँ ॥९९
साकत दुर्मति नरकि पचाना। राम भगति सतसंगु न जाना॥
गुर्मति खोजत परम निधाना। आपे बषशे हरि जसु माना ॥
अनहदि आदि निरंजन पावहि। नानक मूए बहुड़ि न आवहि ॥१००
खोजी उपजै बादी खपै । सो पूरा जो अहि निशि हरि जपै ॥
निरंकारु निर्भउ मनि भावै। जहँ उपजै तहँ जाय समावै ॥
जिनि निरंकार अकारु उपाया। नानक बूझै जिसु आपि बुझाया१०१

---

(१) ब्राह्मण जाति हो परन्तु कर्म साधारण हों तो उसे मिसर करके पुकारते हैं। (२) "संताप्यो"। (३) त्रिलोकी में कितने लोग। (४) विरलाप कर रहें है; भाव व्यर्थ साधनों में पच रहे हैं। (५) कहते २ चले जा रहे हैं।

सतिगुर परचे पावै मानु । सर्ब निरंतरि अलषु पछानु ॥
सुन्न सरोवरि सोहै सोय । नदरि करे थिरु (प्रा) पति होय ॥
आदि अतीतु पूरा गुर ज्ञान । नानक जुग जुग परम निधानु॥१०२॥
ताँकी गति मिति कही न जाय । वेद कतेब रहे गुण गाय ॥
जेता कहीऐ अंतु न पारु । अंतु न भगती कथनैहारु ॥
जाँ कउ राखै सहजि सुभाय । नानक इहु मनु सुन्न समाय ॥१०३॥
जाणै आदि अंति तिँह लोइ । सर्ब जीआ का दाता सोइ ॥
चीनै गुर ज्ञान संसा भउ खोय । हम न काहूँ के हमरा नही कोय ॥
अकुल शरनि पूरी मति होय ॥
शरनि परहु राखहु प्रभु लाजा । तूँ अलष अपार किसका मुहताजा॥१०४
अलष अपार पाए जनु सोइ । जिसु साध संगति गुर दर्शन होइ ॥
अकुल चीनि करि कवल बिगासा । गुरज्ञान खड़ग ले दूत विनासा ॥
नानक सो पाए पुरुष अलेष । जैसा देखहिं तैसा देखु ॥ १०५ ॥
असुरा नदी अपुठी तरी । उलटी पलटि सिधीरी करी ॥
सीधा तहँ कवल पूरन तहँ पवन । इऊँ निवारै आवा गवन ॥
मनु पवनु ले शब्दि कउ बंधु । नानक इऊँ तूटे जम का फंद ॥१०६॥
गगनंतर कउ भउर उडारै । भउ बैराग सुमति वीचारे ॥
अहि निशि ध्यान एक लिव लावै । चैाथे पद की जौ सुरति समावै॥
नानक इतु[1] जुगति कमावै जोगु । आयै हर्षु न गयै सोगु ॥१०७॥
सो पूरा ब्रह्मज्ञानी होय । जिँह घटि मनि एको अवरु न कोय ॥
अनहद शब्दि रहै लिव लाय । नेमु बर्तु सचु संजमु भाय ॥
लहै पदार्थु गुर्मति नालि । नानक सो दाता नाले भालि ॥१०८॥
मनु मनसा माया गहि राखहु । जिह्वा इन्द्री एको चाखहु ॥
नेत्र श्रोत्र दीसहिं असराला[2] । मनुमंद्री[3] गुरशब्दु निराला ॥
निहकर्म रहै निहकेवल जोगी । नानक गुरज्ञानी कायाँ रस भोगी ॥१०९॥
द्वादश मुद्रा प्रान अधारी । क्षमा धीरज संतोष बीचारी ॥

(१) इस । (२) भयानक, संसार नामी जीव वत निगलने वाले । (३) मनमंदिर (सहसदल) । अथ्वा मंद्री नाम ढोलक का भी है; सो ब्रह्मांडी मन रूपी ढोलक का गुरशब्द अर्थात् त्रिकुटी मंडल का शब्द न्यारा ही है ॥

सुरति शब्दु धुनि नादु बजावै। अंम्रित गुर ज्ञान भगत फल पावै ॥
इतु रसु अगनि मरै बिनशै नही सूतु। नानक गुर निर्मल अवधूत ॥११०॥
गुर का शब्दु मंत्र मनि मांही। घट घट मुंद्रा जोग कमाही ॥
जोग जुगति संजम गुर जाणै। चलते मन कउ उलटि गहि आणै ॥
सतु संतोष क्षमा धनु साचा। नानक हरि रसु गुरमति राचा ॥१११॥
एह चंचल चाय न जाय तमाशे। अहिनिशि निहचलु सहजि बिगासै ॥
अंम्रित नामु भोजन त्रिप्रासे। गुरकै शब्दि कवल परगासे ॥
जूझै जाय न खेलै पासै। राम रस पीवै कालु न ग्रासै ॥
जो खेलै सो सरपर हारै। नानक जगु जीते हउमैं मारै॥ ११२॥
सुआद बिवाद ते रहत निरारे। पंच सुखा परधान विचारे ॥
सभ घटि भोगी रह्यो समाय। सतसर शुभर भर लीलाय ॥
सतसर न्हावणु मैलु न माय। नानक प्रेम पदार्थु पाय ॥
प्रेम पदार्थ गुरमुखि पावै। आसा मनसा त्यागि समावै ॥११३॥
सो अबिनाशी आपे आपि। काल बिकाल[१] कउ मारै चापि ॥
पर घर जाय न सुनीऐ कथा। एहु आदि पुरुष सतिगुर की नथा ॥
सतिगुर की साखी सुनि गुरपूता। नानक जुग जुग गुर अउधूता ॥११४
अउधूत गगन बसै ब्रह्मंडा। गगन सर आसन कलपति विष खंडा ॥
आसा मनसा अगनि का नासु। जिंह घट महि केवल प्रगासु॥
निर्भउ अलखु सुन्न सर वासा। नानक बोले दासन दासा॥ ११५ ॥
अंतरजामी मिले सुहेला[२]। गुरमुखि साध संगति हरि मेला ॥
सतसर भरिऐ माणक मोती। अगम पुरुष सचु मालु परोती ॥
रोग बिजोग सोग परजाले। आपु पछानि गति पति मति नाले ॥
ऐसा सतिगुर पुरुष निरारा। नानक दीनबंधु दीनदइआला ॥११६॥
दुबिधा की मटुकी अनुभउ घरि फूटी। समझि मनु मानिआ त्रिकुटी छूटी ॥
धंधु अंधु नही नेरे आवै। आपु बीचारि एकु लिव लावै ॥
नष शिष सासमास हरि रँगि भीने। नानक आपे दाने बीने ॥११७॥
जोगी की नगरी सुन्नसर रहै। आय न जाय शब्दु रसु गहै ॥

(१) बिकाल, क्रूर। (२) सुखेन ही।

अचिंत भोजन अपरंपर थानु । गुरमति ले पूरा ब्रह्म ज्ञानु ॥
संभू की नगरी सुन्न ते होई । नानक जो बसै सो जोगी होई ॥११८॥
संभू की नगरी सुन्नहु परगासी । को जोगी बसै अतीतु उदासी ॥
जपु तपु संजम रहै निराला । हिवै घरु बंधै लगै न पाला[1] ॥
भोजनु पहिरै अगनी सारु । ऐसा जोगु जुगति बीचारु ॥ ११९ ॥
गुर चेले का मेला भया । सर्ब सुमति सर्ब सिरि दया ॥
अखंड मंडल महि सुंन्न समाना । मन पवना सचखंडि टिकाना ॥
क्षिमा धीर्ज संतोष बीचारी । नानक मनु मानिआ भवजलु तरु तारी ॥१२०

॥ अध्याय समाप्त होया ॥ ११ ॥

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १२ ॥

श्री बाबे जद इह ध्याउ यारवाँ उपदेश कीता । ताँ मुक्त रूप जो है, चेला राजा शिवनाभ, सो सुन्न महल मन पवना इस्थित भये । राजा के ग्रह मैं स्वर्ण मंडल मंदर मैं सिंहासन पर जो श्री बाबाजी विराजमान हैं । अरु श्रीनाथ जो हैं गोरखनाथ सो भी सिंहासन पर बैठे हैं तथा चारों ओर सर्ब गुप्त प्रगट सिद्ध यथा २ अधिकार बैठे हूए सभ कथा सुणकर विसमै को प्राप्त भए ॥ होर राणीआं झरोखिआँ पर बैठीआँ सो भी सुणकर, सभ के मन पवन इस्थिर हो गए । अरु देवता अरु गुप्त सिद्ध सभ फूलों की वर्षा करने लगे । जै जैकार शब्द करने लगे । तीन दिन तीन घड़ी समाध में जुड़ गए । बहुड़ि सभैही जागे; राजा जी सभ की न्यारी न्यारी पूजा करै । रोज ही सभा को यथा योग्य संतोष करै । कबी मंदर में ही बैठे रहै । कबी देवता सिद्ध मंडली समेत समुंद्र टापूओं का सैल करन चलै जावन । तहाँ ही गुप्त प्रगट सिद्धाँ की सभा लग जावै । छिन मात्र ही मैं सहस्र जोजन चले जावन । जहां रमणीक स्थान होवै तहां ही बैठ लीला करैं । ताँ फेर यारवाँ ध्याउ सुणकर राज मंदर मैं राजसिंहासन पर बैठे हुए श्री बाबा जी के सन्मुख श्री गोरखनाथ जी बोले ।

॥ श्री गोरखोवाच ॥

तपा जी तुम धन्य हो । धन्य तुमारे बचन हैं । सर्ब जगत के कल्याण के कारण हैं । सुणते २ हमको त्रिप्त नहीं होंदी । ताँते कृपा करिकै सेवक जाणकर तपा जी होर भी मन पवन इस्थिर के कारण बचन उपदेश करोजी । तां श्री

---

(१) माया अविद्या की जूड़ी ।

बाबाजी बहुत प्रसन्न होए। अरु आखिओसु नाथजी तुमारे बचन उपकार के हेतू हैं। ताँते होर भी सुणो॥ ताँ श्रीगुरू अगम निगम सुसंबेद अमर बाणी बोले॥

योग बैराग सचखंड की जुगत, बाणी उपमा सचदानंद जी की।

॥ रागु आसा महला १ ॥

॥ पउड़ी ॥

जोग बैराग सहिज घरि पायै।
आत्म चीनि परात्मु चीने सहजि समाधि लगायै॥
बोलै सत्ति असत्तु न भाखै। अंम्रितु रसु गगनंतरि चाखै॥
कारन करन समर्थु निरारा। आपे करि वेखै चरतु अपारा॥
जन्म मरन दुख दूर करेइ। नानक पूछि न लेवै देइ॥१॥
इह निहचलु चालि गुरमति गति पायै। जीवतु मरहि सहजि लिव लायै
दूर दर्शन की जिनि सारि न जानी। से बूडि मूए बिनु सरवर पानी॥
बूडत कउ तुलहा हरि गुर मति नाउँ। नानक दर्शन को बलि जाऊँ॥२॥

॥ रहाउ ॥

गुर द्रयाउ सरोवर सत पूरा। अति निर्मायल अंमृत भरपूरा
ज्ञान पदार्थ निर्मोलक हीरा॥
सतसर मंजन मैलु न राई। दर्शन परसि परम गति पाई॥
दर्शन कउ बलिहारै जाऊँ। दर्शन पेखि निज महली थाऊँ॥३॥
जैसी सुरति[१] तैसी तिसु मुक्ति। जैसा भाउ तैसी तिसु भगति॥
भये अबिनाशी अलष निवासी। बंधन मुक्ता निर्भउ रासी[२]॥
गगन मंडिल अम्रितसरु[३] कूआ। नानक सो रसु पीवै जो जीवत मूआ॥४॥
अंम्रित बूँद सुन्न ते होय। त्रिभवनु जगतु उसै का सोय[४]॥

(१) ज्ञात। (२) "बासी"–पाठांतर है। (३) मान सरोवर से यिह कूआं नियारा है और ध्यान के समय इस प्रकार दृष्ट आया करता है कि मानो यिह उलटा हुआ है; और जैसे कूएँ की मंडेर पर बैठ कर जल में ध्यान करें तो अपनी ही सूरत दृष्ट आती है ऐसे ही इस भीतरीय कूप में ध्यान पसारने से बीच में एक झरोखा सा दृष्ट आता है जिस में घुसे बिना आगे जाना दुर्घट है। (४) शोभ रहा है।

आकलु चीनीए तत्तु बिचारा । त्रिभवनि जोति सची सिरकारा ॥
दीप लोअ पुरीआ पाताल । नानक सो दाता गुरमति नालि ॥५॥
अकथु कथे बिचरे गुर ज्ञानु । अजपा जापु जपै अनहदि मनु मानु
पीवै अपित गुर ज्ञानु ध्यानु । मनु निर्मल भउ भंजनु जानु ॥
गुर सेवक[1] मिलि अलषु पछाना । नानक सहजि भाय मेरा मनु माना ॥६॥
क्योंकरि ब्रह्मज्ञानी होय । हउमै मैलु गुर मति बिषु खोय ॥
संतन की रेन साध पग सेवै । रहे अतीतु अकल्प[2] घरि देवै ॥
घरि मंदर महि हीरा[3] लालु । नानक सो पावै नदरि[4] निहालु ॥७॥
ऐसे ब्रह्म ज्ञानी लक्षण । जिह्वा इंद्री सुआद न रखणु ॥
गुरमुखि रहै अलेप निराले । ज्यौं जल भीतर कवल निराले ॥
गुरमुखि ब्रह्म अगनि परजाले । गुरमुखि पंच साध रखवाले ॥
ज्ञान खड़ग लै झूझै बाण । तसकर मार पंच घर जाणु ॥८॥
सभ गुण ज्ञानु ध्यानु बुधि पावै । साध संगति महि तत्तु परावै॥
मनु निहचलु हरि संगति अचारु । निहचलु नामु निरंजनु सारु ।
हरि जनु ठाकुर एक अकारु ॥
ज्ञान मुक्ति का गुर महल पछानु । नानक जुग जुग भगति नीसानु॥९
सतिगुर शरनि हरि का जसु भाला[5] । जब सतिगुर पुरुष भये किरपाला
हरि हरि रत्न ज्वेहर लाला । अलष निरंजन दीन दिआला ॥
कायाँ मटु निर्मलु होय समाला ॥
तिस महि अलषु न लषनो जाय । आदि निरंजनु सहजि सुभाय॥
नानक सो सतिगुर दीआ दिखाय ॥१०॥
सभ रस संजमु अलषध्याना । सभ घट ताँके ओहु पुरुष परधाना ॥
सो अबिनाशी करे प्रतपाला । घट घट पूरनु देइ दिआला ॥
अठसठ मजन सभ तीरथ तह ही । नानक खोजत गुर मति घर लह ही ॥११

(१) शब्दसुरति । (२) अफुर घर, वास्तव में तो सुन्न मँडल अफुर घर है; परन्तु सहसदल में पिंडी मन का निज घर है वहां इसके उलट आने पर स्वाभाविक ही यिह अपनी चंचलता छोड़ देता है इस कारण इसी सहसदल को ही यहां गुरूसाहब के कथन का अभिप्राय है। निशानी भी इसी स्थान की ही देते हैं। (३) हीरे लाल वत उस अकल्प घर में जोति है। (४) दृष्टि में देखने कर दृष्ट आता है। (५) मस्तक में शब्द रूप भाला (नेजा); वा भला।

गुरमुख खोजत लहै घर अपना । निजघर बसै सची सचु रसना ॥
सचु रूप पेखै बिस्थार । सची जोत सचा परकार ॥
गुरमुख निज महली पावै थाऊँ । पेख अचर्ज अचर्ज घर जाउ॥१२॥
देही नगर महाँ अस्थाना । तहँही केवल[१] ब्रह्म समाना ॥
तहँही सतिगुर अम्रित भरपूरा । तहहीँ बाजहि अनहद धुनि तूरा
तहँही जोग जुगति की गरमा[२] । नानक मोख मुक्ति तहँ धरमा॥१३
तहहीँ कवल तहीँ कवलासु । तहँही काम क्रोध का नासु ॥
तहँही आदि पुरुष का वासु । तहँही सुर्ग मिरतु आकासु ॥
तहँही सर्गुन निर्गुन सोय । तहँही भगति भाउ सहसा दुखु न होय॥१४
दूख भूख तिषा तहँ नाँहि । तहँ जठर रोग सोग सहसा भउ काँहि
तहँ पाप पुन्न नहीँ को धर्मा । तहँ नेम बरतु नाँही को कर्मा ॥
तहँ रक्त बिंदु नाँही इह कायाँ । तहँ निर्मल जोति अनूप समाया॥१५
तहँ कोट जोध सचु जोत सरूपा । तहँ कई कोट खंड ब्रह्मंड दीप धूपा ॥
तहँ कई कोट ब्रह्मे अरु शेशा । तहँ कई कांन्ह कोट कई महेशा ॥
तहँ कोट इन्द्र छत्रपत छत्रा । तहँ कई कोट जोध सूर अजित्ता ॥
तहँ असंख भगत गुण रवहि तरंगा । तहँ कोट बिनोद सदा अनंदा ॥१६॥
तहँ अस्थिर मनूआ कतहूँ न धाया । तहँ ममता मोह न छाया माया
तहँ आदि निरंजनु गुर अलष लषाया । इंद्री नही सबलु[३] नही दुख काया
नानक साहिबु सचा सोइ । अलष निरंजनु अनत न कोइ ॥१७॥
तहँ होम न जग नही अन पूजा । तहँ एकु निरंजनु अवरु न दूजा
वेद कतेब नहीँ गुण गणी । ओअंकार शब्दु सो सुनणी ॥
तहँ पोथी पाठ न पूजा अरचा । तहँ खेती वणजु नहीँ को परचा
तहँ तीरथ तट नाँही कत न्हाईअै । नानक अनहदि शब्दि समाईअै ॥१८॥
तहँ बाँधपि मीतु नही कोई पिआरा । तहँ एकु निरंजनु अलषु निरारा॥

(१) सर्ब प्रपंच के बाध निश्चे पूर्वक जिस में सुरति अभेद होकर अकह अवस्था का अनुभव करती है उस पद की ओर इशारा है । (२) स्थिती (पूर्णता), बज़ुर्गी, जत्न (सरगरमी) । (३) माया सबल ईश्वर, अथवा इंद्री उपलक्षित काया विशिष्ट (देह अध्यासी) जीव ।

तहँ कालु कर्मु जरा रोगु न ब्यापै । तहाँ आप पछानिआ जुग जुग आपै
तहँ तेजसु तामसु[1] नहीं अहँकारा । नानक तहँ एको अलख अपारा॥१९
तहँ पोथी पाठ न पढ़ै पंडता। तहँ गरड़पुराण न वाचहि सिंमृता ॥
तहँ कउण संजोग को नहीं विजोगु। तहँ कंचन काया नहि को रोगु ॥
तहाँ सचाखंड अमर पुर नगरी। तहँ साध बसै जरा नही मगरी॥२०॥
तहँ काम क्रोधु नाही अभिमाना । तहँ ओपति खपति नहीं विज्ञाना
तहँ शक्ति शरीरु नहीं कुल जाया। तहँ तेजु अतेजु नहीं मति माया
तहँ धंधु बंध नाही सिरि कारा । तहँ सहंसा सोगु नही बैरारा[2]॥
तहँ संत भगत हरि हेत पिआरे । नानक शरनि परे आत्म बीचारे॥२१॥
तहँ जपु तपु संजम नहीं बनबासा । तहँ षट शास्त्र भरम न पवन अभ्यासा ॥
तहाँ हठ निग्रहु नाही पाखंडा । तहाँ आदि निरंजनु महाँ बलबंडा[3] ॥
तहँ ससीअर सूर नही अँध्यारा। तहँ नरक सुर्ग नाहीं सिर मारा ॥२२॥
तहँ कूड़ कुसत नहीं झुठ्यारा[4] । तहँ सची दरगह सचु पिआरा ॥
तहाँ जोति अनूप अतीतु सबाया। तहँ वरनु भेष नाही बापु माया ॥
तहँ उत्तम नीचु नही को अंतरा। नानक सो निर्मलु सर्ब निरंतरा ॥ २३ ॥
तहाँ नारि कुटंबु नाही सुत धीआ। तहँ बंधिपु मीत नाही कोई बीआ ॥
तहाँ खेती वणजु नाही व्योहारा। सेव भगति का मुक्ति दुआरा ॥
तहँ जमुजगाति[5] नहीं करु[6] लीजै । नानक तहँ सचा सचि पतीजै ॥२४॥
लशकर लाख नहीं तहँ बांहा । तहँ घोड़े लाख नहीं पतिशाहा ॥
नहीं तहँ लखमण रूपा सोना । नहिँ तहँ षासा मलमल झोनाँ ॥
नहिँ तहाँ तंबू पलंघ निवारा । सिंहासन छत्र नहीं सिकदारा ॥
असु पवन अस्वार नही हस्ती।तहँ राज न्याय बहै नही तषती ॥२५॥
तहँ गढ़ कोट नहीं पाटम्बर । तहँ छत्रधार नहि झूठ अडंबर ॥
तहँ नाही पान तंबोली हरिमा । अंमृत जल शीतल नहीं पवना ॥

(१) तीन महादेवों से भाव है। तप्तस्वर्ण वत 'तेजस' ब्रह्मा का रंग है, स्याम रंग वान 'तामस' से विशु की व्यक्ती का ज्ञान कराया है, और 'अहंकार' रूप से रुद्र शिव महादेव । (२) वैराग्य। (३) बलवंत, शक्तिवान, बलिष्ट। (४) झूठ । (५) महसूल। (६) डंड (हाला) ॥

तहँ माय बाप सुत मीत न भाई । कामण कामु नही तहँ राई ॥
संत सभा गोष्ट सचु थाँनु । तहाँ पारब्रह्म अपरंपर मान ॥२६॥
ताँकी जोति त्रिभवण प्रभ धारे । ताँकी जोति गगन ध्रू तारे ॥
ताँकी जोति शशि सूर उज्यारे । ताँकी जोति चंदु हिव धारे ॥
सो अबिनाशी अलष अपारे ॥
ताँकी जोति धरति आकासा । नानक मिल जोती कवल बिगासा ॥२७॥
ताँकी जोति ब्रह्मे कई कीआ । ताँकी जोति विश्नु सभ थीआ ॥
जोति[1] अतीत त्रैगुन वशि काला । देव दानव वशि शरनि दइआला ॥
घटिघटि जोति रहे लिव लाई । नानक सुन्न समाधि लगाई ॥२८॥
तहँ जोति अनूप शब्द निरबाणु । केवल ब्रह्म सो शब्दु पछानु ॥
तुम ही प्रभु जी अवरु न कोय । आपे करे करावै सोय ॥
सो अबिनाशी चीने जनु कोइ । नानक पुनर्पि जन्मु न होइ ॥ २९ ॥
हउमैं त्यागै भरमु चुकावै । आतमा कउ चीने सुरति समावै ॥
आसा मनसा सहसा मोह जाय । रहे अतीतु अवगति[2] शरनाय ॥
ताँकी जोति कई मुनी महेशा । नानक देखि दिखावै गुर ऐसा ॥ ३० ॥
प्रथमे मानसरोवर मजन करै । दुतीआ दक्षिण कउ दिशा धरै ॥
दक्षण ते जाय पच्छिम को जाय । तऊ हाट पटन की सोझी पाय ॥
पच्छम ते जो चढ़े सुमेर । आवै परदक्षणा के फेर ॥३१॥
साध संगति मिलि बुद्धि प्रगासु । प्रान मुक्ति मेला प्रभ तासु ॥
दे प्रदक्षण चढ़ै अकाशि । गगनंतरि बैसै तषत निवासु ॥
अंतरि बाहरि एको आदि । नानक सो गुर आदि जुगादि ॥३२॥
आदि जुगादी रहियो समाय । अकलु अविनाशी तिसु तिलु न तमाय ॥
त्रिभवन जीअ जोति सभ ताँकी । गुर ज्ञान बुद्धि अस्थिर मति जाकी ॥
साक्त मुगध काल वशि कीने । सो मुक्ता जो आतम चीने ॥
सो चीने जिसु आपि दैयाल । नानक अनहदि शब्दि निहाल ॥३३॥
तहाँ सचु ही सचु सचा तिहँ रूपा । तहाँ सर्ब मई तहाँ सर्ब सरूपा ॥

---

(१) दृष्टि गोचर होने वाली सभ प्रकार की ज्योति से रहित । (२) अव्यक्त पद, सर्ब का कारण भूत ।

तहँ निर्भउ थाऊँ सचा सचु कोट । ब्रह्मपुरी सुखी सभ लोक ॥
तहँ दुःख संताप न संसा रोगु । न को मरै न कोई संजोग ॥
तहँ अमरापुर नगरी निहचल थाउँ । तहँ नानक पिंड बषशीश गिराऊँ ॥३४॥
तहँ किसै न दूषन कोई भूषत । तहँ सभको सुखी दुखी नहँ रोवत ॥
काल कंटक की नाँही खेटा । तहाँ जमडंड की नाही भेटा ॥
तहाँ षौफ षता नाही खैकाल । तहँ ज़ोर जुलम नाही ज़ावाल ॥
तहाँ निरभउ नगर सदा अजरावरु । तहाँ नानक संगत कीर्तनु का आहरु ॥ ३५ ॥
तहाँ सच्ची संगत सच्चे गुरभाई । तहाँ सचे प्रीतम प्रान सहाई ॥
तहाँ सचा नगर अटल अबिनाशी । तहँ सभ को सचा आय न जासी ॥
तहँ सची बाणी गुरमुख गावहिँ । नानक सचे सचु समावहिँ ॥ ३६ ॥
तहँ सचा रूप अनूप अपारु । परम जोत नांम परवारु ॥
तहँ अनूप देह निर्मली जोत । तहँ काया काची नाहीँ तहँ छोत ॥
तहँ रक्त बिंद की नही मड़ोली । तहँ तसकर पंच नहीँ इक टोली ॥
तहँ अनंद बिनोद कोड अखारे । तहँ शोभावंत संत हरि पिआरे ॥
तहँ आदि निरंजन दीन दयाला । तहँ नानक नदरी नदरि निहाला ॥३७॥
तहँ अनहद शब्द अनाहद गावहि । तहँ पारब्रह्म परमेश्वर भावहि ॥
तहँ असंख शब्द सफा बाइंते । तहँ सची बाणी गुरमुखि गावंते॥
तहँ सची जोत अनूप अपारा । तहँ नानक सचो सचु बरतारा ॥३८॥
तहँ असंख भगत प्रभ पास हजूर । हरि संग राते रहै भरपूर ॥
तहँ असंख जोध महाँ बलसूरे । तहँ गुणी ज्ञानी गुरमुख पूरे ॥
तहँ गुरमुखि गाईअै सची बाणी । तहँ नानक पाया पद निरबाणी ॥३९॥
तहँ सचु दुलीचा सचु तषत पसाउ । आदि जुगादी सचु पसाउ ॥
दूजा होया न होसी होगु । आदि अंत सचा संजोगु ॥
गुरमुखि सचु शब्दु नीसाणु । आदि जुगादि अभगु दीबाणु ॥
अभगु आदि संभू संबाद । नानक आदि जुगादी आदि ॥ ४० ॥
आदि जुगादी सचु गुर ज्ञान । आदि अंत गुर ज्ञान ध्यान ॥

निहचल अपरंपर सदा अबिनासी । निहचलु नामु आय न जासी ॥
निहचल हरि कीर्तन अखिल अखंड । नानक निहचल सचा सचु खंड ॥४१॥
तहँ सची प्रीति न कबहूँ तूटै । नवनिध नाम अखूट न खूटै ॥
तहँ अटल पिंड संगत गुरभाई । तहँ नाम सुहेले गल लए मिलाई ॥
तहँ परमहंस प्रीतम हरि पिआरे । तहाँ मिले सुप्रीतम शब्द स्वारे ॥ ४२॥
तहँ मिले प्रीतम फिर नहीं विछोहा । तहँ थान पती निज महली सोहा ॥
तहँ सचा निरंकार घरि अपने आया । तहँ गुरमहली महलु बुलाया ॥
तहँ अकल पुरुष कैवल गुरज्ञान । तहँ नानक जुग जुग परम निधान॥४३॥
गुरमुखि चीनै पद निरबाणु । अनहद राता शब्द निरबाण ॥
गुरमुखि सच्चु प्राप्त पोतै । सच्चु दुलीचै बैठा आतै ॥
सची सुरत शब्द मनु धीर । नानक साहिब एक वजीरु ॥४४॥
अटल अखंड कैवल कवलंतु । शाष तरोवर मोहण मंत ॥
रत्न ज्वेहर सतसर भरिआ । सुफल बिरख अंम्रितु रसु फलिआ ॥
लाल गुलाला गहबर गूड़ा । सुभर सरोवर भर भरपूरा ॥
सत्त सरूप सर्ब सिर अकाल । नानक आदि अंतु दीनदयाल ॥४५॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरुग्रंथे सचखंड प्रभाव वरननं नाम द्वादशमों ध्याउ संपूर्ण ॥ १२ ॥

॥ १ ॐ सतिगुरु प्रसादि ॥

॥ अध्याय १३ ॥

॥ गोष्ट[1] श्री रामानंदजी नाल होई ॥

॥ प्रश्नोत्तर माला महला १ ॥

(श्रीरामानंदोवाच)

ओअंकार शब्द प्रगासा । तुम तो सतिगुरु हम तो[2] दासा ॥
एक शब्द का पूछत भेव । कृपा करो भाखो गुरदेव ॥१॥

---

(१) श्री गुरूजी जब काशी विषे अपने शब्द के प्रभाव से नानू तथा चतुर दास आदि पंडितों को अनेक प्रकार की चरचा गोष्टी द्वारे विद्या मद से रहित करके सत्य नाम के उपासक (उनको) बना चुके तो सम्पूर्ण नग्र में गुरू साहब की प्रख्याती हो गई कि—

सकंद तथा ब्रह्मा के संबाद द्वारा भविष्यत पुराण पूर्वार्ध० त्वाष्ट कल्प अध्याय १२६ में जिस नानक नाम वाले गुरू अवतार का निरूपण हुआ हुआ है (जैसा कि—: "एवं वैधर्म्य प्राचुर्य्यं भविष्यति यदा कलौ ॥ ३३ ॥ तदा वै लोक रक्षाथ म्लेच्छांनां नाश हेतवे । पश्चिमे तु शुभे देशे बेदिवंशे च नानकः ॥ ३४ ॥ नाम्ना च भुवि राजर्षि ब्रह्मज्ञानैक मानसः । भविष्यति कलौ स्कन्द तत्वबित्कलयाहरेः ॥ ३५ ॥ स श्री मद्राजशार्दूलानुपदिश्य च पुनः पुनः । म्लेच्छान्ह निष्यति स्कन्द धर्म तत्वोपदेश कृत् ॥ ३६ ॥ तेनोपदिष्टं मार्गं वै ये ग्रहीष्यंति भूमिपाः । ते वै राज्यं करिष्यन्ति तस्य शिक्षानुसारितः" ॥ ३७ ॥

अर्थ—जब कलियुग में इस प्रकार धर्मातमा पुरुष अल्प रहेंगे पापी बढ़ेंगे ॥ ३३ ॥ तब लोगों की रक्षा के लिये और म्लेच्छों के नाश वास्ते अति उत्तम पश्चिम देश में बेदियों की कुल में नानक ॥ ३४ ॥ इस नाम वाला प्रिथ्वी में राजऋषि, जिसका एक ब्रह्मज्ञान में ही मन लगा है; हे स्कंध ! तत्वज्ञान संपन्न, हरि का कलाऽवतार कलियुग में होगा ॥ ३५ ॥ (ब्रह्माजी कहते हैं कि) सो नानक, हरि का अवतार ; राजसिंहो को पुनः पुनः उपदेश करके म्लेच्छों का विनाश करेगा, धर्म का यथार्थ तत्व (भगति नाम जप को) साथ २ दिखावेगा ॥ ३६ ॥ उस नानक अवतार के उपदेश किये नाम भगति मार्ग में जो क्षत्रिय लोग चलेंगे, उसकी शिक्षा के प्रभाव से वुह राज्य को पालन करेंगे-गुरू के सिंह कहावेंगे ॥ ३७ ॥)

सोई गुरू अवतार यहां आए हुए हैं—रामानंदजी ने भी इस वृत्तांत को सुन कर सेवकों से पूछा कि वुह कहां पर निवास रखते हैं ? तो सेवकों ने कहा कि दिवस को नगर में दरशन देता है और रात्रि को बन बिषे गुप्त होजाता है । ऐसा सुन कर एक दिन अपनी बहुत सी शिष्य मंडली सहित रामानंदजी गुरू साहब के दर्शन को आये । (और) प्रणाम करके बैठ गये-गुरू साहब ने भी परम सत्कार करके पूछा कि आओ स्वामी रामानंद जी पुरातन जोगीशर ! सर्व कुशल तो है ? ताँ गुसाईं जी कुशल समाचार का उत्तर देकर बोले कि तपाजी हमारा प्रश्न है इसका उत्तर कृपा करि देवो (उस समय यह गोष्टि परस्पर हुई, किसी प्रसंग वश्य से शिव नाभ आदि को संगलादीप में श्रवण कराई जान पड़ती है) ।

(२) जल्प तथा वितंडाभाव की शंका निवारण अर्थ प्रथम ही अपने आ र को दास कहि दिया है इस कारण श्रद्धा भक्ति संयुक्त (गोष्ट रूप) प्रश्न है ।

कवन शब्द कवन नाद[१] । कवन गोष्ट कवन बाद ॥
कवन पूछे कवन कहे । कवन अरंभ सुहेला रहे ॥ ?

(श्री गुरोवाच)

शब्द एक दूसरा नाद । समझ गोष्ट अनसमझ बाद ॥
मन पूछै उन्मन गहे । पवन अरंभ सुहेला रहे ॥ २ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन मलीन कवन प्रगास । कवन घर आसन रहे उदास ॥
कवन घर मन निहचल रहै । कवन दर्शन अलष पुरुष को लहै ॥३॥

(श्री गुरू०)

अलमल[२] काया निर्मल प्रगास । सहज[३] आसन मन रहै उदास ॥
प्रेम आसन मन निहचल रहै । अकल दर्शन अलष पुरुष कै। लहै॥४॥

(श्री रामानंद०)

कवन कायाँ कवन जीउ । कवन सुंदरी कवन पीउ ॥
कवन घर कवन घरवास । कवन तत्त लै खेले बिलास ॥ ५ ॥

(श्री गुरू०)

काया करनी कारन जीउ । आतमा[४] सुंदरी प्रान पीउ ॥
निहचल घर परचै घर वास । पाँच[५] रत्न लै खेले बिलास ॥६॥

(श्री रामानंद०)

कवन आवै कवन जाय । कवन खोवै कवन खाय ॥
याका मोहि बतावहु भेव । पूछै सिक्ख कहो गुरदेव ॥ ७ ॥

(श्री गुरू०)

संजोग आवै बिजोग जाय । माया खोवै ब्रह्म खाय ॥
सतिगुर कहै सुन रामानंद । ब्रह्म गोष्ट मैं परमानंद ॥ ८ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन बटाऊ[६] कवन बाट । कवन बस्ती कवन हाट ॥
कवन कुंजी कवन ताल । कवन खोलै कवन रखवाल ॥ ९ ॥

---

(१) ध्वनि । (२) महा मलीन (परम अंधकार रूप) । (३) सहज घर सुषम्ना का घाट वहां पर की स्थिती से मन में बैराग्य होता है । और प्रेममई स्थिती से मन निस्तरंगता को प्राप्त हो जाता है । (४) जीवकला, सभ की अपना आप रूप । (५) पांच आकाशी शब्द । (६) पंथी, मुसाफर ।

(श्री गुरू०)

जीउ बटाऊ जन्म बाट । काया बस्ती अठसठ हाट ॥
सतिगुरु कुंजी शब्द ताला । सतिगुर खोलै गुरू रखवाला ॥१०॥
पवन बटाऊ काया बाट । ब्रह्म बस्ती समझ हाट ॥
शब्द कुंजी सुरत ताला । खोल परचै तौ शब्द रखवाला ॥११॥

(श्री रामानंद०)

कवन जोगी कवन रावल । कवन धान[1] कवन चावल ॥
कवन अपदा कवन पानी । कवन बोलै अनाहद बानी ॥ १२ ॥

(श्री गुरू०)

अलष जोगी अकल रावल । प्रगट धान गुप्त है चावल ॥
अपदा[2] अैनी खिमा खीमानी । शब्द नाद बोलै अनाहद बानी ॥१३॥

(श्री रामानंद०)

कवन जोगी कवन जुगता । कवन सुंदरी कवन भुगता ॥
कवन संसा कवन जोग । कवन उपकार बिचार परजोगु ॥१४॥

(श्री गुरू०)

अलष जोगी अकल जुगता । आत्मा सुंदरी प्रान भुगता ॥
संसा रोग (शब्द जोग) । सुरति उपचार ब्रिचार पर जोग ॥१५॥

(श्री रामानंद०)

कवन मंत्र कवन माला । कवन तिलक कवन जप माला ॥
कवन ध्यान कवन धर्म । कवन चाहे आशरम ॥ १६ ॥

(श्री गुरू०)

नाम मंत्र सचु माला । तत्तु तिलक जुगति जप माला ।
ध्यान तत्त आतमा धर्म । सहजे चाहे सच आश्रम ॥ १७ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन शब्द लै बाँधे बंध । कवन शब्द रहे निर्बंध ॥
कवन शब्द लै उन्मन रहै । कवन शब्द अगम की कहै ॥ १८ ॥

---

(१) गेंहू आदि धान । (२) अैनो नाम पानी के चशमे का है जो कि भाव आंखों से है, यही अपदा का मुख्य कारण है क्योंकि कुरूप वस्तु के दर्शन से भी दुःख ही देती हैं और सुरूप दर्शन से भी बंधायमान ही करती हैं । इन का भाव इनकी पाणी रूपा द्रिष्टी धार का खिमा करना अर्थात् अपने ठिकाने पर स्थिर करना=धारना खिमानी= स्थिरता, भाव शांति का कारण है ।

(श्री गुरू०)

गुरु का शब्द लै बाँधे बंध । सतिगुरु शब्द रहे निर्बंध ॥
बकता शब्द लै उन्मन रहो । परचे शब्द अगम की कहो ॥१९॥

(श्री रामानंद०)

कवन घरि चाँद कवन घर सूर । कवन घर बाजै अनहद तूर॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन बर्षै केती धार ॥ २० ॥

(श्री गुरू०)

अर्द्ध चाँद[1] उर्ध सूर । अंतर बाजे अनहद तूर ॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन बर्षे एको धार ॥ २१ ॥

(श्री रामानंद०)

कै आदमि सिरजा करतार । कै पात चले संसार ॥
केते पंख चले साथा । प्रिथ्मी कह्यो केते हाथा ॥ २२ ॥

(श्री गुरू०)

दोइ आदम[2] सिरजा करतार । दो पात[3] चले संसार ॥
पाँचौं पंछी[4] चलैं साथा । प्रिथ्मी कह्यो साढे तीन हाथा ॥ २३ ॥

(श्री रामानंद०)

प्रिथ्मी कहीए केते खंड । केता ऊचा है ब्रह्मंड ॥
अंबर उगवैं केते तारे । इंद्र बर्षै केते धारे ॥ २४ ॥

---

(१) शुन्य मंडल का धनी नीचे है और भंवर गुफा का धनी सूर्ज ऊपर, इनकी अंतरालिक हद्द में अनहद का बाजा बजता है । यद्यपि सहस्र दल का मालिक चांद नीचे तथा त्रिकुटी का मालिक सूर्ज ऊपर है और इनकी अंतरालिक संधि में भी अनहद की ध्वनि होती तो है तथापि सहस्र दल में जो प्रकाश है वोह सुन्न मंडल का आभास मात्र है और भंवर गुफा के धनी का आभास त्रिकुटी में है इस कारण स्वामी रामानंद जी जैसे आचार्य के साथ नीचे मंडल के अधिकार की वार्ता को उपेक्षत कर (छोड़) रखा है । परंतु विपर्य्य ज्ञान रूप भ्रांति के संशय निवृत्ति अर्थ कह भी दिया है कि त्रिकुटी में जो झनकार शब्द का है वह ऊपर ले शब्द के तेज का है और गगन मंडल में केवल एक धार मात्र ही शब्द की वर्षती है । जहां से धार आती है वह भंडार तो ऊपर ही है । सो त्रिकुटी के शब्द तथा प्रकाश का भंडार भवर गुफा में तथा सहस दल के शब्द तथा तेज का भंडार सुन्न मंडल में है यह सूचन कराया । (२) जीव, ईश्वर । ईश्वर को भी आदम कहि देने से कई एक ईश्वरवादी चिड़ेंगे; परंतु आदम नाम पुरुष का है । सो पुरुष शब्द का प्रयोग जीव ईश्वर दोनों के वास्ते एकसा ही होता है । पुरुष प्रकृति के संयोग से संसार की उत्पत्ति और पुरुष स्त्री से संतान उत्पत्तिवत् । (३) पाप पुन्न । (४) पक्षीवत् उड़ने वाले पांचों प्राण ।

(श्री गुरू०)

प्रिथमी कहीए नवखंड । चार[1] उँगल ऊचा ब्रह्मंड ॥
अंबरि उगवैँ[2] हैँ दो तारे । इंद्र बर्षै एको धारे ॥ २५ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन[3] यह पेड़ का भंडार । कवन है मन का अहार ॥
कवन यह बकते का बिवहार । कवन ते होवै उपकार ॥
कवन से कहीए काया अवतार ॥ २६ ॥

(श्री गुरू०)

प्रान यह पेड का भंडार । शब्द यह मन का अहार ॥
बबेक यह बकते बिवहार । अकल सिऊँ कीजै उपकार ॥
कायाँ सौँ कहीए कृष्णावतार ॥ २७ ॥
जो जो जीव का नही बशेष । चेतन होय सतिगुरु को देख ॥
बकते के नैन सुनते के स्रवन । गुणीए गुण घट मैं हर त्रिभवण ॥२८॥
शब्द[4] गुरू सुरति धुनि चेला । करै ध्यान मंत्र मैं मेला ॥

---

(१) लिलाट स्थान। (२) सहस दल कमल रूप आसमान में सुरति निरत रूप दो तारों का साक्षात होता है। सुरति का प्रकाश उजला होता है निरत का श्याम आभा संयुक्त इसी करके ही सहस दल कमल का नाम श्यामसेत भी लिया जाता है। इसी की छाया आंख में है, आंख की ज्योति उजली है परंतु धीरी श्याम सरूप है। इसी वास्ते सुरत निरत दोनों का बास आंख में माना है। (३) इस संसार रूपी वृक्ष का। (४) जैसे गुरू की आज्ञा में वर्तना शिष्य का धर्म है- ऐसे ही जो अनहद रूपा शब्द घट में होता है, उसकी जो ध्वनि है उसके पीछे सुरति का चलना धर्म है॥ शब्द गुरू है, ध्वनि उसकी उपदेश रूप आज्ञा है; सुरत चेले को उस ध्वनि के पीछे २ चलाओ भाव जहां से वोह ध्वनि आती है उसके पीछे २ सुरति की तार बांधकर चलते जावो-परंतु गुर शब्द (नाम उपदेश) रूप दीक्षत मंत्र का उस ध्वनि के साथ मेलान करके सुरत को; ध्यान कर्तव्य है। बहुत से जज्ञासू शब्द और शब्द की ध्वनि को एक रूप जानते हैं परंतु यह एक रूप हैं भी और एक रूप नहीं भी हैं। जैसे अगनि का प्रकाश तथा दाहक धर्म स्वाभाविक (निज रूप है) ऐसे ही शब्द का शब्दायमान तथा ध्वनित होना भी निज रूप सहज सुभाव है। परंतु जिस प्रकार प्रज्वलित अगनि के सन्मुख चंद्रकांत मणि धर देवें अथवा अगनि बंधन मंत्र का प्रयोग करें तो अगनी का दाहक धर्म न्यारा हो जाता है- प्रज्वलित तो रहती है परंतु दाह करने की सामर्थ्य नहीं हो सकती। इसी प्रकार भीतरीय शब्द में बंध मोक्षकारी दोनों शक्तियें हैं। जिनका निर्भार ध्वनि पर होता है- सो जब सुरति रूपी चंद्रकांत मणी तथा गुर शब्द रूपी शब्द बंधन मंत्र को उस शब्द के सन्मुख एकटक स्थिर किया जाता है तो शब्द से ध्वनी न्यारी हो आती है जिस पर गुर शब्द रूपी ज़ीन डाल कर सुरत यदि आरूढ़ हो जावे तो ध्वनि सचखंड में अवश्य पहुंचा कर ही छोड़ेगी। ध्वनि परखने के वास्ते एक सहज दृष्टांत लो:— समय दिखलाने वाली घड़ी में से एक शब्द टन टन (एक रस) जारी रहता

नां खेलबो जूआ[५] नां हारबो दूआ। न बैठबो पिंजर न होयबो सूआ ॥२९॥

(श्री रामानंद०)

ऐसो गुर ज्ञान जीवत ही मूआ। रामानंद सुआमी निहचल हूआ॥
किरपा करि गुर नानक रामानंद शिष्य कीआ। खंड मंडल का बीचार दीआ ॥३०

एह बचन गोष्ट जद बाबे सुनाई तां गुसाईं जी गुरू जी के चरणों पर मत्था टेकिआ। ते हथ जोड़करि आखिओसु जी! एती अवध मेरी एवैं वृथा गई। बड़े भाग भए जो गुरू के दर्शन होए हैं। अब मुझ दास को मंत्र उपदेश करो। तां बाबा बहुत हसिआ। ते आखिओसु गुसाईं जी! तुसीं पुरातन जोगीश्वर हो—सभ कुछ जानते हो॥ तां गुसाईं जी आखिआ जी! मैं तां सभ कुछ जाणता हां पर तुमारे बचन सुणकर मेरा हिरदा शांत प्रकाश होया। सारी विद्या तेरे बचनों पर कुरबान है जी। जो तुसीं मंत्र उपदेश कहोगे, सो मैं गुह्य हिद्य मैं रखांगा। तां बाबे गंगा जी मैं स्नान करवाय कै पूर्बमुख[६] बैठाय कै मंत्र उपदेश कीता। कहु 'सत्यनाम' एह चार अखर सत्त हैं—ते होर[७] त्रिगुण पसार असत्त है। सत्त से प्रगटे हैं सत्त के आश्रे हैं। सत्त विषे लीन होता है। इतने ही मैं समझो। तां रामानंद जी गुरमुख होकै बहुत बहुत प्रसन्न होया। आखिओसु जी। अज मैं कृतकृत्य होया। अनेक प्रकार की धूप दीप नैवेद फल फूल सों पूजा करी। ते पिछली सारी उमर की तपस्या गुरू जी के आगे भेटा रखी। बाबे प्रसादि वर इह दीया, जो तुम को सदा सत्तनाम स्मर्ण रहे। कबहूं न भूलै। इह बर लै करि अपने आसन पर गया। जां ई कथा[८] कबीर जी ने सुणी जु श्रीरामा-

---

है यह तो शब्द है परंतु ध्वनि इसे नहीं कहि सकते। उस घड़ी को कान से लगाओ दस पंद्रह मिनिट प्रयंत उसके शब्द में आंखे बंद करके सुरत को (उसमें) लगा दो, तो जहां पर टिन टिन की आवाज़ बंद होगी एक बहुत ही झींनी जैसी आवाज़ वहां पर प्रत्यक्ष सुनाई देवेगी, उसीका नाम ध्वनि है। उस ध्वनि में से ही शब्द प्रगट होता है, उसी में समाता है, उसी के आश्रे शब्द को स्थिरता है। गुरू का गुरुआई भाव बाहरला अंग है, प्रंतु सतगुरु भाव उसका निजरूप हुआ उसके अंतर में है। ऐसे ही शब्द का शब्द भाव स्थूल रूप है और अंतरीव अंग (ध्वनी रूप) उस का निज रूप है। शब्द का बीज सरूप निज रूप, सचखंड के धनी से आया और उसी का सरूप है। इस वास्ते ध्वनी को सतगुर सरूप कहा है। तांते पहिले के कथन से दूसरे का विरोध नहां। शब्द गुरू है और ध्वनि सतगुर स्वरूप है जो इसको यथार्थ २ (भीतर) परख लेवे अवश्य सच्चखंड का झलका देखे। (५) विषय भोगों पर जन्म की बाजी लगाना। (६) जब सूर्य पूर्व में उदय होता है तो क्षण प्रति क्षण इसका प्रकाश उन्नति के शिषर कोही (बढ़ता) जाता है इसी वास्ते पूर्व का नाम 'चढ़ता' ही लोगों में प्रसिद्ध हो गया है। और इसी हेतु से पूर्व दिशा में चढ़ाव (उन्नति) के संस्कार दृढ़ रखे गए हैं सो जो कोई ऐसा कर्म जिसमें उन्नति या पूर्णता आदि की आवश्यकता हो तो पूर्वमुख होकर करने की ही शास्त्र आदि की मर्यादा है। (७) इसते इत्तर, (सिवाय) और सब कुछ। (८) (कबीर जी रघुनाथपुर को उस काल में गये हुये थे, बड़ों की बात शीघ्र ही लोगों में पसर जाती है) जबी ही गुरू साहब के तथा रामानंद जी के इस प्रकार के मिलाप की कथा कबीर जीने सुनी।

नंद जी श्री बाबे जी का शिष्य होया तां कबीर जी फूलपान लैके बाबे का दर्शन करन आये। आय करतार करतार करि बैठ गए ॥ तां बाबे कहा ॥ आओ भगत कबीर कुशल है? तां कबीर कहा गुरू जी तेरे दर्शडिठे[१] सभ कुशल होई है। पर जी मैने सुनिआ है जो श्रीरामानंदजी का सशंय आप ने निवारन कीआ है। तांते मेरे भी संशय को छेदन करो। तुम तो जगत विषे गुरू सूर्य प्रकाश भए हो, सर्व जगत के कल्याण नमित्त तुमारा अवतार है॥ तां बाबे कहा– तुसीं भी बचन करो।

॥ गोष्ट कबीरजी नाल होई महला १ ॥

कहै कबीरा चरन लाग करि, किरपा कीजै देवा।
अगम अगाध बिषम पद कहीए, सो कित[२] पाईए सेवा॥
मुहि समझाय कहो गुर पूरे, भिन्न भिन्न अर्थ दिखावहु।
जिह बिधि परम अभय पद पाईए, सो बिधि मोहि बतावहु॥
मन बच कर्म कृपा करि कहीए, क्योँकरि मिलै अपारो।
चेला कहै सुणो सतिगुर जी, दीजै शब्द बिचारो ॥१॥
नानक कहै सुणो कबीर जी, शिष्या एक हमारी।
मन तन[३] पवन जीउ करि एका, सुन्न लगावहु तारी॥
कर्म अकर्म दोऊ पख त्यागहु, सुरत निरत बिधि मेलहु।
निशि बासर तुम खोजत खोजत, सहज कला[४] मैं खेलो॥
तजि माया निर्मायल होवहु, मन के तजहु बिकारा।
सतिगुर कहै सुनहु रे चेला, इह बिधि मिलै अपारा ॥२॥
कबीर माया पर्बल निबल हऊँ, क्यौं मन इस्थिर होय।
काम क्रोध व्याप्र सदा, सुरत निरत दई खोय॥
मन राखऊँ तउ पवन सिधारे, पवन रहे मन जाई।
मन तन पवन जीउ होय एका, सो बिधि देहु बताई ॥३॥
नानक आसण दृढ़ करि पूता, उन्मन ध्यान लगावउ।
अल्प अहार खंडत करि निंद्रा, काम क्रोध पर जारउ॥

(१) देखने करके। (२) "सो पाईए कित भेवा"—पाठ भी है; किस प्रकार। (३) शरीर को आस्नी भूत करके अर्थात आसन लगाकर श्वास के साथ मन तथा सुरत को एक करके सुन्न मंडल में नाम के सहारे ताड़ी लगावो, भाव सुरत निरत की बिधि मिला दो। इंगला पिंगला की संधि को स्थिर कर दा। उस काल में कबीर जी रामानुजी व्यवस्था में रहते थे तबी ही कर्म अकर्म दोनों पत्त का प्रीत्याग गुरू जी कहते हैं। (४) सहज शब्द में स्थिरता रूप।

दहदिशि[1] रोक एक दर राखो, सुरत निरत रस पीजै ।
जोऊ अंतरि सोऊ बाहरि दीसै, इत बिधि मन बशि कीजै ॥४॥
कबीर कवन सूक्ष्म कवन अस्थूल। कवन डाल कवन है मूल ॥
क्या लै सोवै क्या लै जागै, क्या ले रहो उदासा ।
कवन अगनि की धूनी तापउ, कवन मँडल मैं बासा ॥५॥
नानक ब्रह्म सूक्ष्म सुन्न अस्थूल । मन है पवन डाल है मूल ॥
कर्म[2] लै सोवहु सुरत लै जागो, ब्रह्म अगनि तुम तापहु ।
निश बासर[3] तुम खोजहु निज घरि, इह बिध रहो उदासो ॥
सतिगुर कहे सुनहु रे चेला, एहु लच्छन परकासो ।
गुर प्रसादि सर्ब मैं पेखहु, सुन्न मंडल करि बासो ॥६॥
कबीर ऊहाँ जाय न देइ सँदेसा, क्या अचर्ज होइ जाई ।
मैं भै[4] चक्र भयो गुर पूरे, इह बिधि देहु बताई ।
अपना अनुभउ कहो गुरूजी, परम जोति क्यौं पाई ॥७॥
नानक शशी अर चलत देख तुम, लाखउ जहिँ कीटी भीर न होता ।
सतिगुर कहै सुनहु रे चेला, मिलै परम तत जोता ॥८॥
कबीर धन्य धन्य गुरनानक, जोगी सतिगुर परम उदारा ।
निर्मल पद दिखरायो मोकउ, रमता राम अपारा ॥९॥
जब हम भगत भए सुखदेवा। तब जनक विदेह कीआ गुरदेवा ॥
कलि मैं कोरी[5] नाम कबीरा । ढूँढ थके मन भयो न थीरा ॥

---

(१) दसों दरवाज़े ही रोक कर एक में रखो-नौ दरवाज़े बंद करने योग्य हैं परंतु दसवां गुप्त रीति से जो खुला रहता है उसी में से प्रकाश आता रहता है वह बंद हो जावे तो नीचे प्रकाश नहीं आ सकेगा। नीचे प्रकाश आना संसारी जीवन तथा बंधन का कारण है। संसारी ओर से जीते मरना मोक्ष का हेतु है इस विचार पर दसम द्वार का भी निरोध कहा है। नौं दरवाजे निरोध हो सक्ते हैं दसम का निरोध नहीं हो सकता किंतु इसका प्रवाह ही उलटा फेरना निरोध करना है। दसम दुआर गुरूजी ने तीन कहे हैं प्रंतु यहां उस दसम द्वार से भाव है, जिस घाट पर कि मन बैठकर अपना कार्य करता है। नौं दरवाजे निरोध करने की आज्ञा साधारण अधिकारी प्रति आचार्यों की होती है परंतु पूर्ण योग भ्रष्ट परमोत्तम अधिकारी के वास्ते लोगों की अंतिम सोपान ही प्रथम सीढ़ी होती है। यही कारण है कि योगियों का अंतला दशम द्वार कबीर जी का प्रथम पद समझा गया है।
(२) कर्म कांड आदि की प्रवृत्ति को लै अर्थात् लीन करके। (३) "निश बासर तुम खोजत खोजत इह विधि मनूआ राखहु"—पाठ भी है। (४) मैं चकित हो गया हूं। (५) जुलाहा।

बहुत भाँति तप सिमरन कीनो। तऊ न एहु मनु चंचल भीनो[1] ॥
हार परे सतिगुर के दुआरे। गुर नाम दान दे लीए उबारे ॥ १० ॥
समझ परी तब भयो उदासी[2] । तब काटी जम काल की फासी ॥
जात कमीन जुलहा अपराधी । गुरु किरपा ते भगति समाधी ॥
सत्तिपुरुष सतिगुरु ते पाया । तब सत्तनाम लै रिदै बसाया ॥
मुक्त भये सतिगुर के शब्दी, बिनसी[3] सभही पीरा ॥
जुग जुग सतिगुरु नानक जपिआ, कीट मुरीद कबीरा ॥ ११ ॥
लै उपदेश गुरू का पूर्ण, मन महि भया अनंद ।
मुक्तिकरी[4] नानक गुरू, रंचक रामानंद ।
न पिंजर न सूहटा, न बाणी न बंद ॥
कल कीरति नानक रही, पायो अलष अछेद ।
चंद सूर्ज नही बासना, नहि बिद्या नहि बेद ।
दास कबीर, गुर भए गुरू नानक दीनो भेद ॥
कहाँ नाथ कहाँ सिद्ध है, कोऊ न था जग थीर ।
नानक गुर सर्बत्र थिर, इहु गहि रहे कबीर ॥ १२ ॥

॥ प्रश्नोतर माला संपूण ॥ २ ॥

जद अैसे उपदेश श्री बाबेजी, कबीर जोग कीता, ते 'सत्तनाम' नाम का मंत्र दित्ता[5] । तां बाबे आखिआ इहु चार अक्षर तेरे हृदय के तम हरनहारे हैं। कलिजुग के क्लेश मिटावने को बिश्नवत समर्थ हैं। हृदय के विषे धारणे करि मन के संकल्प विकल्प को छेदणेहारा है। सर्ब शास्त्रों का अरु सर्ब मंत्रों का अरु सर्ब देवतिओं का इह बीज है; जैसे वृक्ष का बीज है-तैसे सर्ब का बीज सत्त[6]

---

(१) द्रवीभूत, प्रेमार्द्र, रसमगन। (२) गुरमताऽविलंबी, शरीर आदि के अहं मम अध्यास शून्य। (३) " काटी संसा पीरा" भी पाठ है। (४) मुक्तिकर्ता, मुक्तिदाता। (५) दिया। (६) संसार में जिस ओर ध्यान पसार के देखा जावे, या तो जड़ वस्तु द्रिष्ट आती है या जंगम, जड़ जंगम भाव को छोड़कर यदि कोई वस्तु 'संसार' खोजें तो कुछ भी हाथ नहीं आवेगा, इस वास्ते संसार का सरूप ही जड़ जंगम है। इस जड़ जंगम का बीज "सत्त" है। यदि हम किसी वृक्ष के बीज को देखना चाहैं तो ना मूल में मिलेगा, ना छाल में और न फूल पात में मिलेगा; ना डाली डाल में। परंतु यदि हम फली या फल को हाथ में लेवें तो तत्काल बीज को देख पावेंगे। जप तप तीर्थ ब्रत दान पूजा आदि साधनों में प्रवृत्त होकर यदि 'सत' का खोज कोई लगाना चाहे तो ना लगा सकेगा। योग से भी सत्त का पता ना चलेगा सत्त सरूपी बीज केवल तब ही जाना जावेगा जब कि बिबेक ज्ञान की शरन में आवेगा। संसार के पदार्थ अनंत हैं एक २ का बिबेक कर सकना असंभव है, चैारासी

है । जां बाबेजी कहिआ तौ कबीर जी बहुत प्रसन्न होया । ते आखिओसु जी अज मेरी भगति संपूर्ण होई । ते सर्व पुन्नों का फल मैने पाया है । क्यों जु प्रतख्य

लाख योनि गत संपूर्ण पदार्थों का शिरोमणि भूत संसार वृक्ष का फल सरूप मनुष्य शरीर भी एक पदार्थ है। जो कुछ संसार में है सब ही कुछ इस में है जैसे संसार में जड़ चेतन दो भांत के पदार्थ हैं ऐसे ही जड़ तथा चेतन दो वस्तुओं का समुदाय रूप यह मनुष्य शरीर है। इसी से संसार का आरंभ और इसी पर ही संसार की समाप्ती है। बीज में वृक्ष है (मूल-तणा-डाली-पात फूल फल आदि सब कुछ बीज में हैं) और बीज फल में है। इस लिये फल की खोज की जावे तो बीज हाथ लगता है, जो फल को नहीं खोजता बीज को नहीं पाता; तांते मनुष्य शरीर को खोजिये कि सत्त हाथ आवे। शरीर तीन हैं एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म तीसरा कारण। स्थूल शरीर पांच भूतों के पच्चीस तत्त्वों से बना हुआ है। १-काम क्रोध शोक मोह भय-आकाश के पांच तत्त्व हैं। २-चलना, बलना, धावना, पसारना संकोचना-यह वायु के पांच तत्त्व हैं। ३-क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, क्रांति-यह तेज के पांच तत्त्व हैं। ४-शुक्र (बीर्य), रक्त, लाला—मूत्र, पसीना यह जल के पांच तत्त्व हैं। ५--हाड़ मांस, नाड़ी, त्वचा और रोम-यह पृथ्वी के पांच तत्त्व हैं। यह सब स्थूल शरीर का मसालह है। दूसरा सूक्ष्म शरीर यह सत्रह तत्त्वों का समुदाय रूप है। पांच ज्ञान इंद्रियां, पांच कर्म इंद्रियां, पांच प्राण, दो मन बुद्धि-(चित हंकार मिला कर कोई १६ तत्त्व का भी कहते हैं बात एक हा है)। पांच भूतों की उत्पति तीन गुणों से है। और कार्य में सदैव कारण रहता है इस लिये जितनी पांच भैातिकी रचना है उस सभ में तीनों गुण व्यापक हैं। एक एक भूत के सतो गुण अंश सेः-कान, त्वचा (चर्म), नेत्र, रसना, नासिका रूप ज्ञान इंद्रियां क्रम पूर्वक उत्पन्न हुई हैं। हर एक भूत के रजो गुण अंश से एक एक कर्म इंद्री उपजी हैः-वाक इंद्रिय, हाथ, पांव, लिंग, गुदा। पांचों भूतों के मिले हुये सतोगुण अंश से मन बुद्धि (चित अहंकार) रूप अंतःकर्ण प्रगटा है। पांचों भूतों के राजसी अंश से पांच प्राणः-प्राण, अपान, समान, उदान, ब्यान और पांचों भूतों के तामसी अंश से भोगने योग्य पदार्थ (स्थूल) उत्पन्न हुये हैं॥ अब तीसरा जो कारण शरीर है वोह केवल तीनों गुणों के साम्य भाव रूप अज्ञान मात्र है। तीनों शरीरों की प्रक्रिया तो प्रगट कर दी। परंतु हम को प्रक्रिया मात्र से क्या सिद्धि जब तक कि खोज का भेद हाथ ना आवे। अब इन तीनों शरीरों की संपूर्ण सामग्री को इकत्र कर लीजिये जिस एक शरीर से तीन में गये अब फिर तीन का एक ही समझ लीजिये। प्रक्रिया ज्ञान केवल शारीरिक मसालह के बोधन अर्थ था। जब तक मूल भाग की ओर से वृक्ष पर आरूढ़ नों हुआ जावे फल कैसे प्राप्त हो सके। जितनी सामग्री निरूपण हुई वा तो कोई द्रव्य रूप है, या क्रिया, गुण (ज्ञान) रूप। किसी द्रव्य की सिद्धि कदाचित् नहीं हो सक्ती जब तक कि उसकी अस्तित्व अर्थात (हस्ती) द्वारा स्फुर्ति ना होवे। ज्योंही कोई वस्तु सनमुख आवे और "यह अमुक वस्तु है" ऐसा बोध ना होवे, उसका ज्ञान हृदय में नहीं उपजेगा मन में उसका संकल्प नहीं उठेगा, इंद्रियों में क्रिया शक्ति नहीं जागेगी। जिससे अवश्य मानना पड़ेगा कि क्रिया, ज्ञान (गन) इच्छा जो समग्र संसार की प्रवृत्ति निर्वृत्ति का मूल हैं उन सब की मूल सत्ता (हस्ती) ही है॥ कोई पुरुष खड़ा होवे परंतु कोई है! क्या है? कौन है? अमुक (फुलाना) है ऐसे संकल्प द्वारा यदि उस पुरुष में अस्तित्व (सत्ता) किसी को भान नहीं हुई तो वोह पुरुष बन के ठूठ से भी क्या बढ़ कर हो सकता है; भाव उससे कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सक्ता परंतु ज्योंही वोह अपने आप हा "हूं" इतने मात्र शब्द से अपनी

गुर परमेशर का दर्शन होया है। धन्य भाग हैं मेरे इहु बचन कहिकर कबीर जी गुरू जी के चरनों पर मत्था टेकिआ। जां नेत्र खोले तां बाबा गुप्त होया। बालवा कुंड देश बिच जाय निकला॥

इति श्री प्राण संगली श्रीगुरूग्रंथे मार्ग बृतांत प्रकाश प्रश्नोत्तर माला बरननं नाम तेरमों ध्याउ सम्पूर्णं॥ १३॥

हस्ती का होना सूचन करावे तत्काल प्रश्नोतर का व्यवहार चल पड़ेगा कहीं शत्रुता कहीं मित्रता आदि सब उस में भास आवेंगी। इसी प्रकार शुभाशुभ क्रिया ज्ञान और एक २ पदार्थ की पदार्थता भाव का जब तक ज्ञान ना होवे तब तक किसी वस्तु की स्थिरता नहीं हो सक्ती। जिस काल में जिस की सत्ता भान हुई उसी काल में उस वस्तु की उत्पति तथा स्थिरता होती है। घट है, मट है, पट है-जल है, थल है-पुरुष है, देव है, दैत्य है-वेद है, कतेब है-पुरान है, कुरान है ऐसे यावत पदार्थ मात्र का नाम लो, सभ की आधार भूत सत्ता (है) के बगैर कोई पदार्थ द्रिष्ट नहीं आता। सत्त का आकार कोई नहीं और सर्व आकार उसी के हैं सर्व वस्तु विकार को प्राप्त होती है परंतु सत्ता ज्यों की त्यों निर्विकार रहती है। सत्ता का नाम कोई नहीं परंतु सभ की नाम सरूप, स्वयं नामी (रूप) यही है। नाम बिना रूप की सिद्धि नहीं इसी वास्ते रूप २ प्रति नाम कल्पित करिके कार्य सिद्धि की जाती है, परंतु सर्व नाम मिथ्या हैं। सच्चा नाम यही सत्ता है, इसी में ही सर्व नाम कल्पना किये जाते हैं इसी करके ही इसको 'सत्त नाम' कहा गया है, यह ही सर्व का बीज है। जो वस्तु प्रसिद्ध हो उसको नाम कहा जाता है सो सत्त ही प्रसिद्ध है, सत्त का निशान ही सर्व के साथ है। इस कारण भी इसको 'सत्त नाम' कहा जाता है। सत्त नाम के उच्चार्ण मात्र से सर्व वेद शास्त्र पुराण का स्वते ही उच्चारण हो जाता है। और भगवंत के सर्व नामों का उच्चार्ण भी हो जाता है। सत्त को सर्व का आधार (ज्यों का त्यों) जान लेने से सर्व ठौर सत्य वस्तु का ही दर्शन होता है। इस प्रकार सत्तनाम का स्वरूप जान लेने से अहंता ममता का विष्य सर्व द्वैत प्रपंच विस्मर्ण हो जाता है। और अंतर सुरति साक्षात्कार को प्राप्त होती है। जब इस प्रकार की अंतर्मुखी दशा प्राप्त होजावे तो उसमें सत्तनाम रूप शब्द का ध्यान करे। यह सत्त-नाम का स्मर्ण कहाता है। इसी को ही सुरत का अभ्यास भी कहा जाता है। परंतु जब इस दशा में स्वयं सत्तनाम का अनुसंधान किया जावे तब तो इस का नाम नाम स्मर्ण कहलाता है और जब अपने आप निर्यत्न ही सत्तनाम की ध्वनि (उक्त अवस्था में) स्फुट भान होने लग जावे और सुरत का खिचाव उसमें होवे तो उसका नाम भजन कहाता है। यिह सतनाम के स्मर्ण भजन की बिधि तथा परस्पर का भेद है। स्मर्ण से भजन की परम विशेषता है। और भजन ही सर्व का बीज सत्त है। अत्यंत दुष्प्राप्य होने से "कहु नानक कोटन में कोऊ भजन राम को पावै"। क्रोड़ों अधिकारियों में से इसकी प्राप्ती किसी विरले को ही होनी गुरूसाहब ने सूचन कराई है।

॥ १ ॐ श्री गुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १४ ॥

श्री बाबे जद तेरहूं ध्याउ सुनाया तां राजा शिवनाभ हाथ जोर कर बोलिआ जो हे श्रीगुर परमेश्वर जी इस संसार विच जीऊ क्योंकरि उपजदा है क्योंकरि गर्भ विच रहिंदा है। ते संसार की आदि उत्पत्ति क्योंकरि है। होर कितनीआं तदबीरां उत्पत्ति दीआं सुणीआं हैं, पर जी! तूं आप करण कारण हैं। तेरा ही कीता होया सभ कुछ है। तैथों[1] कुछ छपिआ नहीं। होर शास्त्रां वाले अनुमान करिकै ते सुण करि आखदे हैनि, ते जी! तूं आप कर्ता पुरुष हैं। भावें तूं बहुतेरा[2] ही आपनू छपावना ही हैं। पर जी तेरी कृपा नाल असां तैनू पाया है ते समझिआ है जो तेरा कीता; सभो आकार है, तूं आदि पुरुष गुप्त प्रगट (सभो) तूं हैं हैं।

जां इतनी बेनती राजे कीती तां श्री कर्तापुरुष जी, प्रसन्न होय करि बचन कीता ध्याऊ चैध्वां **सुन्न-ते-उत्पत्ति-कीती**—बिसमाद बाणी प्रगट कीती ओसु, सुसंबेद बोलना श्री बाबेजी का।

उन्मुन सुन्न प्रान पिन्ड का बन्धेज गुरुजी बाणी

॥ राग राम कली महला १ ॥

॥ श्लोक ॥

आतम परबोधु ततु अगम बीचारु ॥
परमार्थ प्राण संगली ज्ञान बिबेक अपारु॥

अगमु खाणी अगमु गुर ज्ञानु। आदि अंत जपि एको धयानु ॥१॥
उन्मनि आदि सुन्न आपारं। गगन उतपत्ति ते पवन निरारं ॥
पवनु उत्पति ते जल बिंब अकारं। सर्बनिरंतरि अलख अपारं ॥
सुरति शब्दि धुनि ओअंकारं। आदि अनूप प्राण आधारं ॥ २॥
ऐसा अलषु अपार निराला। सो अमरु अडोल सर्बसिरि काला[3] ॥

॥ १ रहाउ ॥

सुन्न शब्द ते उठै झनकार। सुन्न शब्दि ते ओअंकार ॥
सुन्न शब्दि ते पवनु बिचार। सुन्न शब्दि ते अगनी[4] चार ॥
ओअंकार लै ब्रह्मा भया। देवी देव उपंन्ने भया ॥ ३ ॥

---

(१) तेरे से। (२) बहुतही। (३) सर्ब की सरकार। (४) चन्द्र अगनी मानसरोवर घाट में एक अगनी; दूसरी त्रिकुटी प्रकाश; तीसरी अगनी सहस कमल की जोती; चौथी अगनी भैंवरगुफा (तीसरे तिल) का प्रकाश; यिह ४–अगनी हैं।

जीअ जोति घटि घटहि समाना। कूचु मुकामु हुकमु नीसाना॥
सो आदि जुगादी अवगतु भया। सो अकुलु अलेषु सदा थिरु रह्या॥

सोगु बिजोगु न तिसु कदे, सो नायक नाथु अमारु।
अदृष्ट अलिप्तु अलेष सो, ताका कथनु न पारावारु।
घटि घटि बैसि न दीसई, जहँ देखा तहँ सोइ।
जिनि करि बीचार जगु थापिआ, ओह मरेन बूढा होइ॥४॥
अपरं पुरुष अपार सो, ब्रह्म बिधाता राय।
अदृष्ट अलिप्त अलेख सो, अलखु न लखणा जाय॥
उहु नारि न पुरुषु न जाति तिसु, तिसि सिरि नाही कालु।
सुप्ने बाजी जगु कीआ, सिरि सिरि माया जालु॥
गति मिति बेदु न पावही, भेद कतेबाँ नाहि।
पढ़ि पुस्तक अन्तु न पाईऐ, सिद्ध साधिक तिण[१] गाहि॥५॥
बेद[२] कतेबाँ पाप हो, त्रैगुण कथि बिस्थारु।
अन्तु न पावैं बपुड़े उहु, ऊचा अगमु अपारु॥
चहु जुगाँ सालाहिआ, कीमति किनै न पाइ।
जो सतिगुर अलखु लखाइआ, घटि घटि रहिआ समाय॥६॥
शिव सनकादि ब्रह्मादिका, इन्द्रादिक मुनि देव।
सनकादिक जनकादिका, हरि चरण साधु गुरसेव॥
सुर नर मुनिवर शुक ब्यास, ब्रह्मे बिश्न महेश।
अन्तु न पावहिं बपुड़े, अपरंपर पुरुष अलेख॥ ७॥
किलबिष हंता गुन निधान, सुर नर देव अपारु।
प्राण पुरुष पुरुषोत्तमा, उतभुज[३] चलित[४] निरारु॥

---

(१) फोकले तृण, जिनमें कण है ही नहीं प्रंतु गाह रहे हैं, भाव व्यर्थ जप तप आदि काष्ट साधनों में प्रबृत हैं चित्तकी शांति रूप फल हाथ नहीं आता किन्तु छोड़ नहीं सकते; 'गुण गाहि'--पाठ भी है। (२) बेद तीन गुनों में ही प्रबृत करते हैं और फिर यिह माया मई हैं। जो जिस भाँति की प्रबृति वाला होगा अंत में वैसीही गति को प्राप्त होगा--सो यथार्थ मारग को गुप्त रख कर माया की संगति कराने वाले की संगति सभ कोई ही निषेध करता है। (३) जड़। (४) जंगम। इन दोनों से नियारा है।

ब्रह्मा बिश्नु महेश मुनि, 'कवलाकंतु'[१] मुरारि ।
किर्तु लिखिआ रचनु रचाया, त्रैगुन करि बिस्थारु[२] ।
सो आदि निरंजन त्रिभुवन धनी, घटि घटि रहतु निरारु ॥
ज्ञानी ध्यानी कथि रहे, अंतु न पारावारु ॥
आपे आपु उपाय करि, ब्रह्मु कवलु प्रगासु[३] ।
नानक सहजे रवि रहिआ, ऊर्ध कवल[४] बिगासु ॥ ८ ॥
दुइ[५] पुड़ जोड़ि बिछोड़िआ, धरति कीआ आकासु ।
आपै करण समर्थु है, आप उपंनै तासु ॥
खंड दीप कई लोअकरि, गगन मँडल पाताल ।
सर्ब निरंतरि एक तूँ, अबिनाशी अबिचाल ॥
करे करावै कर्मु करि, करि करि वेखै सोय ।
नानक एको रवि रहिआ, अवरु न दूजा कोय ॥ ९ ॥
जल बिंबु अपारु सु घोरु तहँ, कीओ चरित अपार ।
शिव शक्ती घरि अवतरे, रक्त बिन्दु आकारु ॥
चन्द[६] सूर्ज दुइ साखीआ करि, निर्मल जोति उज्यारु ।
करि करि वेखै सो पातिशाहु, सुर्ग मिर्तु पातालु ॥
किर्तु न जाई मेटिआ, जो लिखिआ सो नाल ।
आपै कहि बूझै सुनै, आपे करै बीचारु ।
नानक दूजा को नही, सिरि सिरि सिरजनहारु ॥१०॥

प्रान मुक्ति प्राप्त गुर ज्ञान । ज्ञानु ध्यानु गुर शब्द पछानु ॥
अकलु अबिनाशी करनेहारु । अकथ कथा अगम बीचारु ॥
घटि घटि आदि अदिष्टु सबाया । नानक आपे करि वेखै चिरतु[७] उपाया ॥११॥
जहाँ देखा तहाँ तेरा खेलु । पउण पाणी अगनी का मेलु ॥
इसु देही महि अलखु समाणा । बूझहु गुर ज्ञानी इहु पद निर्वाणा ॥

(१) महा बिश्नु से भाव है (मान सरोवर के अधिष्ठाता)। (२) बिस्तार। (३) ब्रह्म लोक अथवा त्रिकुटी को आपही रचकर आपही उस में उसने अपना प्रकाश किया है। (४) उससे नीचे सुरगापुरी सहस दल कमल सहज का घाट रचकर उसमें भी आपही रम रहा है। (५) उसके नीचे पिन्ड ब्रह्मंड धरती की संधि रूप आकाश को जोड़ कर फिर न्यारा न्यारा कर दिया; उस (जीव की बैठक) को (जहां पर) उसने रचा है। (६) चन्द सूर्य (नेत्र) उस निरमल जोत के उजारे की साखी देते हैं। (७) चरित्र।

त्रैबिधि ऊपरि सो ब्रह्म ज्ञानी । नानक बूझीअले इह अकथ कहानी ॥११॥
सो आदि पुरुष अविगतु सुजानु । जिनि जगु थापिआ चलितु विडानु[1]॥
पंच तत्तु लै इहु घटि थाप । जो किछु कीनो सु आपे आपि ॥
अपु तेजु बाय प्रिथ्मी आकासा । पंचि मिलै जड़ि[2] जोति प्रगासा ॥
सोहं आदि निरंजन सोई । नानक अवरु न दूजा कोई ॥१२॥

दुइ मिलि जगतु उपाया, मातु पिता हेतु मिलाइ ।
जो उपजे सो बिनससी, किर्तु न मेटिआ जाइ ॥
गरभवास महि आयो, चंचल करि संजोगु ।
शिव शक्ती घरि आयो, पंचि अगनि तनि रोगु ॥
जीउ जोति पवना मिलै, मात पिता रस भोग ।
नानक शरनि अपार की, काटहि सोग विजोगु ॥१३॥

सागर महि बूँद कीओ बिस्थारु । ताँका कोय न पावै पारु ॥
वरन जाति कुलु किआ तिसु कहीऐ । सो अबिनाशी गुरकी मति लहीअै ॥
सासु सासु तनु धनु सभ ताकउ । सो अलष पुरुष अपरंपर साकउ ॥१४॥

साठ दिनसु महि पिंड भया, रक्त बिन्दु जीउ पांय ।
जीआँ का जीउ पवनु है, बिन पौने कौन जीवाय ॥
पवनु माया आकारु है, जब पवना तब देह ।
जब देह छोड़ि पवना चलै, तब भसमु भया तनु खेह ॥
सर्वा ऊपरि हुकम है, सर्ब निरंतरि सोय ।
नानक मन तन प्रभि बसै, अंति सहाई होय ॥१५॥

करै करावै करनैहारु । करि करि वेखै सिरजनहारु ॥
आनंद रूप अनूप अपारा । कीते का नाही कुछ चारा ॥
चेतनांमुखी सदा दरि सुखी । अचेत पिंड नानक दरि दुखी ॥
तीन चार मास उद्र महि भये । दुय मास महि प्राण करये ॥
जिधर सर्ब शरीर अकारु । ताहिँ खान पान नहिँ पवनु अहारु ॥१६॥

---

(१) आश्चर्य । (२) जड़ चेतन ।

सुख दुख की सार न जाणई हर्ष सोग तिस नाहि ।
पाप पुन्न नही मनि बसै सुचि संजम नहीं ताँहि ॥
जो किछु कीओ कमाइओ तैसे बंधन पाय ।
कर्म बंधन की जेवरी[1] नरि साक्त दूख सहाँय ॥१७॥
षट पंच मास बिधि नै कीओ मुख मस्तक पग हाथ ।
नाक कान जीभ करी तिसनो हिरदे राख ॥
भवनु गगनु सभ तनु कीओ सप्त समुंद सधीरु ।
परम जोति आनंद रूप मन तन देह शरीर ॥
परम हंस विचि नायको सो होआ आदि अनीर ।
मथि समुंद्र रचना करी निरंकार आकार ।
पंचिततु करि साजिओ बंक[2] देह दश द्वार ॥
त्रई लोक नाथु सचा धनी निर्मल जोति अपार ॥१८॥
नैन उद्र सभ तनु कीअउ सो समर्थ करनै जोगु ।
अस्त[3] चर्म मुख रोम तिसु घरि महि कीओ संजोग ॥
कायां नगरु गढु साजि करि विचि बालक भोगै भोगु ।
आत्म जोति संजोग करि शिव शक्ती घरि वासु ।
नाभि कमल सत्सरि कीआ मनु इन्द्री आकास ॥
जोग बिजोग संजोग घरि सुख दुख का अस्थानु ।
भला बुरा अरु पुन्न पाप हुकम लिखिआ नीसानु ॥१९॥
रसु अंतरि जिसु तुच्छ पल प्रभ अंधु न सूझै भोगि ।
वाट वटाऊ[4] आयो हँउमै दुबिधा सोगु ॥
रंगु चिहनु आनंद रँगि इह अचरजु कीना घाट ।
अजब समाशा प्रभु कीआ जगु खेलै नटूआ नाटु ॥
ज्यौं तसकरु पर घरि बसै पर धनु चाहै चीति ।
भोरु भया बंधनु परै त्यौं साक्त गरभि बसीति ॥
नानक गुरमति छुटीऐ प्रेम भगति मन चीत ॥२०॥

---

(१) जेबड़ी । (२) बाँकी, सुन्दर । (३) हाड़ । (४) मुसाफर ।

सप्त अष्टमैं माह भै[1] सम्पूर्ण देह शरीरु ।
ऊर्धि ध्यान अंतरि करै कष्ट दुखी तनु पीरु ॥
नव दश मास उदर महि भये माय बाल दुहुँ दूख ।
बाहरि निकसि न पावई गर्भि नरकि कहँ सूख ॥
मात दिनसु पक्ष को गणै जितने अनदिनु सूरु[2] ।
जठर[3] कुंड कलमल[4] करै ज्यौं जल ते मीना दूर ॥२१॥
तब ज्ञानु ध्यानु किछु नाँहि मनि गीत कवित्त न स्वाद ।
तिष्णा तामसु लोभ मोह काम क्रोध बिषु[5] बादु[6]
अकलु पुरुष नही मनि बसै साध संत नही सेव ।
आतम रामु न चीनिओ नाँ हरि भगति गुरदेव ॥
निर्दया मुखि झूठ मनि आया उदर मझारि ।
नानक सचे नामु विणु नाँ उरवारु न पारु ॥ २२ ॥
माया मगनु महाँ अप्राधी संशै रोग संतापै ।
साध संगति गुर दर्शु न सेवा मनु झूठै धंधि बयापै ॥
लालच लागे नामु बिसारिओ लोभ पाप मनु लाया ।
नानक मेलि लेहु करि किरपा गुर मति भरमु चुकाया ॥२३॥
सुधर्मु कर्मु नही करि सकिओ मनु भूल्यो सु धनी विसारि ।
भरमि भूलो मन बावलो[7] चौपड़ बाजी हारि ॥
बिबला नदी डरावणी क्यौं पाईयै भवजलु पारि ।
कालु जालु जमु कर्मु फुनि पायो उदर मझारि ॥
हरि मुख ते बेमुख सही न जाती हरि भगति ज्ञानु ।
नामु निरंजन बीसरे मनि गरभि बसिओ अभिमानु ॥२४॥
शुचु संजम नामु न मन बसै मैला देह शरीरु ।
मनमुख अंधा मैला मड़ा[8] न गुरु शब्दु न पीरु ।

---

(१) हुए। (२) सूर नाम सूर्य का है प्रन्तु शंक्राती (मिती) का कारन होने से और सप्त बारोँ (सप्ताहक दिनों) की आदि होने से 'सूर से' वार आदि का भाव है। (३) गरभ कुंड। (४) ब्याकुलता वशि हाथ पाँव मारना, कुरबिलाट करना। (५) विष्य वासना। (६) झगड़ा। (७) कमला। (८) जीताही मुरदा।

किस शरणागति छुटीऐ क्यौं बंचै जमु तीरु ।
हरि गुरु शरणागति छुटीऐ साध संगति बसि चीति ॥
जमु कंकर नेड़ि न आवई टूटै न सची प्रीति ।
हरि भगति हेति मनु बेधीऐ जब पाईऐ हरि वरु मीति ॥
नर साक्त दुख न चूकई कालु सदा सिरि देखु ।
नानक प्रभ शरणागती जिसु नाँही मस्तकि लेख ॥ २५ ॥
मात पिता करि देह उपाया । अनेक कर्मि करि इहु तनु पाया ॥
गरभ वासु महि कवनु सहाई । अलष अपारु घटि घटि जुग भाई ॥
तहँ दूसर अनत न देवन हारु । अपरंपरु ठाकुर अपर अपारु ॥
किस पहि माँगउँ दे आधारु । मन महि काम क्रोधु चंडारु ॥
साध संगति बिनु जन्मु विकारु ॥ २६ ॥
अगनि कुंड मलमूत्र महि सो दाता पूर्न देह ।
सभ जीअ तिसके सो त्रईलोकनाथ-प्रभ दीन की रक्ष करेह ।
तिस मते मसूर्त को नही आपुन लेवै देह ॥
तिसु अंबड़ि कोय न सकई उहु ऊचा अपरु अपारु ।
उहु आदि निरंजनु आदि गुरु आदि अंति सचु सारु ।
सतिगुर मिलिआ नदरि करि नानक मुक्त द्वारु ॥ २७ ॥
तहाँ सषा सैनु नही मीतु को नाँ सुत बंधपु नारि ।
बिकर्म अधर्म कमाया मन आयो उद्र मझारि ॥
लाख चैाराशी जोनि भ्रम पायो देहु शरीरु ।
तिसु महि अलष अपार सो चीनहि गुनी गँभीरु ॥
मिलु सतिसंगति साध की दुख हऊमै दूरि करेइ ।
जन्म मरन भउ मेटिआ जनवासा[1] सहजि घरेइ ॥ २८ ॥
तहँ भाई कुटंब पूतु नही धीआ । तहँ नेबु ष्वासु[2] न बीबी मीँआ ।
तहँ माई बाप कहौ को थीआ ॥
तहँ अन धन लक्ष्मी नही माया परवारु । नाहीं तहँ षड्ग बान अउध[3] हथीआरु

(१) डेरा, स्थिती, उतारा । (२) नायब, ष्वास, ख़ासेदरबारी । (३) आयुध, हथ्यार, शस्त्र ।

नही शब्दु सुरति धुनि ओअंकारु[1] वीचारु ।
नही मनु मनसा असथिरु गुरशब्दु पिआरु ॥
मनु मुगधि इंद्री नहीं गुर ज्ञानु परगासु ।
दैआ भउ पति सति नही गुर चरन निवासु ॥
हउँमैं के बंधनि परे (माता) गरभि निवासु॥ २९ ॥

तहँ नेब ष्वासु चेरी नही चेरा । तहँ रस भोगणि नही, नरकि बसेरा
तहिँ हुकमु सलामु नही किछु तेरा । तहँ गज हैवर नही मालु घनेरा ॥
तहिँ पहिरनु ओढनु कछूओ नाही । तहँ धनवंत कहाँ ते खाही ॥
से काल गिरासे जमपुरि जाँही । नानक भगति रते गुन गाही ॥३०॥

तहाँ चोआ चंदन मरदनु नहीं अंकि । तहाँ षोड़सीगार न कामणी बंकि॥
सिरि जमुकाल ज्यौँ चंद कलंकि ॥
तिष्णा तामसु सहै सजाई । भूख प्यासै नीँदि न पाई ॥
बंक नाड़ि रसु कछूओ जाई । नानक सो दाना करे रजाई ॥३१॥

इड़ा पिंगुला सुषमणा इस देही महि परधान ।
तिसु ध्यानि अहि निशि जपै अजरु जरै गुर ज्ञान ॥
अखीँ अंधु ना सुनही गंधु । कंनीँ सुरति न बाँधे बहु बंध ॥
जिह्वा नामु रसनु नही चाखिआ । बिषु अनरस मीठै अंम्रित भाखिआ ॥३२॥

इंद्री सबलु मनु ताँकै भाइ । इंद्री का पीड़िआ मनु दह दिशि धाइ ॥
फेड़े फेडु न बूझै अंधु । साक्त मूढ़ा भरमु दुखु बंधु ॥
भूलै समझै सतिगुर मति पावै । नानक पुनर्पि जन्मि न आवै ॥३३॥

मनु पवनै की सुधि न, बुधि नाँही मतिहीनु ।
मन्मुख मति फीकी बावरी आतम रामु न चीनु ॥
गर्भिवासु तनि पीड़ीअै ज्यौँ तिल कोल्हू लठि सहीनु[2] ।
बिनु अगनी के तनु तपै ज्यौँ जल बिनु है मीनु ।
कर्म कला की जेवरी पशू बाँधिओ काल अधीनु ॥ ३४ ॥

---

(१) शब्द सुरति तथा ॐकार की धुनी की वहां कहीँ वीचार मात्र भी नहीं । (२) कोल्हू में पड़े तिल जैसे लठ की नपीड़ाँ को सहारते हैँ ।

तहाँ अबिनाशी पूर्न देइ । क्षनु क्षनु पहुँचावै सभ सेइ ।
तिसु कुंभर कुंट[१] महि करै प्रतिपाला। दीना प्रभु बंधपु दीनदयाला ॥
ब्रह्म बिधाते लिखिआ सिरि लेखु। तिसु कोय न मेटे सिरि सिरि देखु॥
तिसका कीआ त्रिभवण परवानु। नानक सो आपै जानै जानु ॥३५॥
बंधन बाँधिओ उद्र मझारि। सागर ते साइरु[२] उपजिओ पिआरि॥
जन्म मरन की सोझी नाहि। सतिगुर ते भूला आवै जाहि ॥
जन्महिँ मरहिँ जोनि बहु पाहि ॥
काल क्राल[३] की नाही सारा[४]। ऊंधै[५] कवल सीस जमु मारा ॥
तिष्णा तामसु लोभ विंकारा। नानक जन्म मरहि साक्त अनेक वारा३६
बिनु गुर शब्दि न मन पत्याइ। जन्मि मरै फिरि आवै जाइ ॥
लख चैाराशी भरमै कई वारा। बिनु हरि भगति न मुक्ति द्वारा॥
भूख प्यासै शांति न आवै। नानक नदरी[६] नदरि समावै ॥३७॥
गर्बु गुमानु महा बलवंतु। दुर्मति विसरे सहजि सुमंतु[७] ॥
जीवन धनु संतति की आसा कीनी। आत्म तत्तु वीचारु न चीनी॥
निर्गुण सरगुण की सार न जानी। नानक अंधुलै धंधु परानी ॥३८॥
उत्तम जन भगति न जानसि मूढा। भवजलि डूबे साक्त कूड़ा ॥
बहु जूनि भवै इहु पुर्बि कमाया। अपना कीआ आपे ही पाया॥
हरि रस माते मुक्ति द्वार। नानक गुरमति तत्तु बीचारु ॥३९॥
जिंव मीना जल बाहरा ज्यौं चात्रिक जलै अधीनु।
तिवैं उद्र महि दुख सहै अंधलउ कालि ग्रसीनु[८] ॥

(१) हुँबस वाली कोठी, कुंभी नरक समान। (२) कवीश्वर, (अपनी राय) गुरू साहब (प्रगट कर रहे हैं) कि संसार सागर के साथ इस जीव को प्रीति उत्पन्न हो गई है। (३) भयानक, दुखदाई, क्रूर। (४) सुध, खबर, सूझ। (५) बर्तमान दशा जो जीवों की है, यह उलटी है जब इस दशा में जीव की बैठक होती है तो जीव की दृष्टी नीचे पिंडी रचना की ओर होती है। इसी को ऊंधा कवल कह कर इस की निंदा गुरू जी करते हैं—और इससे उलटी दशा में जीव की निगाह यदि पलटी जावे तो वोह सीधी अवस्था है जिसे आम लोग उलटी कहेंगे। (६) नज़र की नज़र में ही समावें (७) सहज शब्द जो सुमंत्र रूप सत्यनाम है उससे दुमर्ति दूर होती है। (८) ग्रसे हुए।

सहे कमायो आपनो हरि गुर तै बेमुख तास ।
त्यौँ उदरि नरक महि दुख सहै जो लिखिआ भोगु बिलास ॥
माता पूछे पंडिताँ जोतक पढ़हि अनेक ।
जो बिधि ने लिख पाया को बुझै न ज्ञानु बिबेकु ॥४०॥
माय सहै दुख आपनो बालकु सहै कमाइ ।
जिनि कीना तिसु भाइआ तिस कीमति कही न जाइ ॥
पढ़ि गुण अंतु न पाईअै हउमैं खपै[1] खपंति ।
लेखै अंतु न पाईअै बिनु हरि भगति न प्रापंति ॥
सूरति मूरति एक लिव जिसै जनावै सोइ ।
नानक ताँका दासु है जुगु जुगु हरि सेवकु होइ ॥ ४१ ॥
जिँव तिल ईख तनु पीड़ीअै दुख सहै बिषु खाय ।
जिँव आरण लोहा पाहीअै[2] तपै भषै[3] भा खाय ॥
जितना वासा गरभि कुंड अैसी सहै सजाय ।
सुख दुख सहु तूँ आपनो जैसा पुरबि कमाय ॥
नाँ ओह वधै वधाइआ नाँ ओह मेटिआ जाय ।
अैसा संम्रथु को नही किसु पहि करउँ बिनंतु[4] ॥
पूरा सतिगुर सेव तूँ गुरमति सोहं मंतु[5] ॥ ४२ ॥
सुख दुःख अरु पुन्न पाप, भला बुरा वापारु ।
साध संगति सतिगुर नही भायो, इऊँ वसिओ गरभि गुबारि ॥
दरु[6] दर्शनु नदरि न आवई घरि दर की सोझी नाहि ।
अंधु गुप्तु दुर्गंध वासु नर साक्त गरभि गलाहि ॥
तूं भोग कमाइओ आपनो भागि कहाँ पहि जाँहिं ।
नानक साक्त कर्मां बाहरे[7] मरि जन्महि जोनी पाहिँ ॥ ४३ ॥

---

(१) खपने में ही खपते हैँ भाव झँबेले में पड़े रहते हैं। (२) पान चढ़ाईये । (३) तप तप कर लाल वर्ण हो जाता है, भा (अगनी) खा खा कर । (४) विनय, प्रार्थना । (५) टिपण में प्रथ्म इसका भेद प्रगट किया गया है । (६) दर्शन का दरवाजा (त्रितीय तिल) । (७) बिहीन ।

पंख[१] प्रान ते नाहि तनु नाँ गुर शब्दु न पछानु ।
वशि तिसकै जीउ देहि, ओहु पूरा पुरुष भजानु ॥
सुख दुख रोगु बिकारु मनि लदि लिआयो भारु ।
बंधन बंध भवाईअै[२] लख चौराशीह वार ॥
हरि भाउ भगति नही मनि वसै साध संगति नही पिआरु ।
करि साधू की निंदु लोभु मनि आयो उदरि मँझार ॥ ४४ ॥
जे गरभकुंड ते नीकसौं ए गुण करम करेउँ ।
सर्व[३] जीआँ प्रतिपासरै अहिनिशि भगति करेउँ ॥
मनु धनु बुद्धि तिसु देसि लउँ गुर मिलि मुक्ति सनेउँ[४] ।
सेव न छोडउँ गुरदेव की जब लगि जीअ जोति समेउ ॥
बुरा ना काहूँ चितविउँ दुख संतापु न देउँ ।
नानक संगति साध मिलि अमिउ महाँ रस प्रेउँ ॥ ४५ ॥
करउँ प्रभू बेनंतीआ इक बंधिकु[५] गरभि गुबारि ।
अनाथु अतीतु सुपंथि सिरि प्रभ दीजै मुक्ति द्वारु ॥
अहिनिशि जाचउँ सचिनामु सतिगुर की सेव करेउँ ।
हरि गुर की टेक न छोडसाँ सचु घोलि महाँ रसु प्रेउ[६] ॥
आपे ही आपु पछाणिआ देखि गुरमति पावै भेउ ॥ ४६ ॥
खोट खपटु नही मनि करउ परधनु नाँ हिरि लेउँ ।
बलबंचु[७] न करौं किसै साथि किछु सुकृत्तु कर्मु करेउ ।
बिषया माया पलरौँ[८] निंद चिंद न करेउ ॥
चोरी चंचल मति परहरउँ रहउँ अतीत सरूप ।
दया दगंबरु नामु एकु मनि एको आदि अनूप ॥

---

(१) यहाँ पर आ कर अब श्वासा के अजपा जाप का इष्ट भी छुड़वाते हैँ। प्रान रूपी पंखौं कर यिह शरीर जीवित नहीं है और नाँही हंस मंत्ररूप गर्भित प्राण कर इसका सजीव रहिना पछानो। बलकि जीव तथा देह उस परम पुरुष के वशि में हैँ, उसी मात्र को भजो (भाव) केवल उसी मात्र में मगन हो जाओ (फिर पिछले सिलसिले पर आते हैँ)। (२) भ्रमाइये, फिराइये। (३) सर्ब जीवों की जो पालना करता है, रात्रि दिन उसी की भगति करूंगा—और (४) मन धन बुद्धि (आपाभाव) देकरि, गुरोँ को मिलकर मुक्ती का सनेँहा (सँदेसा परवाना) शब्द रूप लेऊँगा। (५) कारागार, जेलख़ाना। (६) पीऊँ। (७) छुल ठगी। (८) परहरौं, त्यागौं।

हरि चरण कवल उर धारिसँउ आदि अंति प्रभु सेव ।
मुक्ति पदार्थ देहि प्रभि सफल जन्मु गुर सेव ॥ ४७ ॥
अंध कूप ते काढु प्रभ एहु बंधिकु महा अनाथु ।
अनाथु अतीतु तिसु पंथि सिरि प्रभ कीजै मुक्ति षलासु ॥
गरभि कुंड मलमूत्र महि रखिउ किरपा धारि ।
उर्धि ध्यानु अंतरि करै इक निमष न मनहुँ बिसारि ॥
भई कृपा दरि आइउ जन्म पदार्थु पाय ।
मुक्ति पदार्थु देहि प्रभ सफल जन्मु गुर भाय ॥ ४८ ॥
भई कृपा बंधन कटै दरि आयो दुखु जाणु ।
कर्म बिधातै लिखिआ चार रत्न नीसाणु ॥
जन्मु पदार्थ पाइउ मानुष रूप शरीर ।
अंधा मुगध अचेत मति बाहरि मनु नही धीरु[1] ॥
मुक्ति पदार्थ छोड़िओ करण पलाह[2] करेइ ।
जैसे कर्म कमाईअहि तैसे बंधन परेइ ॥ ४९ ॥
जन्मि लैइ अवतारु करि खूलै पाट किवार ।
शिव शक्ती घरि आइओ मोहे चलितु अपारु ॥
चार पदार्थु प्रेम हितु सुख दुख लिखिआ लिलारि[3] ।
मिरतु मंडिल माया मई मोहिउ मोहनिहारि[4] ॥
मुक्ति पदार्थु मुक्ति घरि त्रिहुँ गुण का सिरि भारु ।
नानक भरमि विगुचीऐ[5] किउँ तरीऐ भवजल सारु ॥५०॥
कर्मी बाँधो आया कर्मी बाँधो जाय ।
नानक मुक्ति प्रानु सो, चीनै आपु गवाय ॥
राज रूपु रसु भोगणा माया भरमि भुलाय ।
सो सूरा पूरा साधु गुर सहजि रहे लिव लाय ॥
तिसु शरणाई नानका सहजि भाइ गुण गाय ॥ ५१ ॥

(१) ढारस, शांति, धीर्य । (२) कुरबलाट, चीषा चाषी, कीरणे । (३) मस्तकि । (४) माया। (५) ख़राब होईए, घाटे में पड़िये ।

भूख त्रिषा दुइ लगीआं रुदन करै बिललाय ।
विष्टा जलुरसु घोलिआ पीवै सो दिन[१] साय ॥
भी फुनि दूध पीआईअै त्यों शुभ कहि जीवन माय ।
माय सरसी[२] बालु पेषिकै सपरवारु सबाय ॥
अंङनि खेलै दरि घरि फिरै मात पिता मनि चाय ॥
गरभि बास ते निकस्यो जन्म्यो करि अवतार ।
नानक सचे नामु बिनु न उरवार न पार ॥ ५२ ॥
जो शरन परै प्रभ एक की छूटै सतिगुर सेव ।
हउमैं तिष्णा परहरै हरि चीनै आत्म देव ॥
तिस हरि दर्शनु की आस है हरि जपै आपु गवाय ।
मस्तकि हाथु सतिगुरू का तउ आसा मनसा खाय ॥
रामु नामु रसु मनि बसै रहै अतीतु सुभाय ।
मनु जीतै त्रिभवण जिणै नानक प्रभि शरणाय ॥ ५३ ॥
बहनि भाइ विगसैं सुखी जब देखिउ बाल सुभाय ।
दादी नानी फुफी मासी मामानी मनि चाय ॥
गाय मंगलु बाजंत तूरे[३] षरचियो द्रब्य सींगार[४] ।
सो दिन बिसरिउ आप ते पशू बाँधिउ मोहि पियार ॥
जन्मि मरै जो आयो हउमैं खपै खपाय ।
नानक किसि का को नही जगु अंधा धंध[५] भुलाय ॥५४॥
एकु इकेला गरभि महि तहाँ अवरु न कोई मीतु ।
जब जरु जरुवै तनु पीड़ीअै तब कहो कवन संगीतु[६] ॥
मात गरभ ते निकसिउ महाँ अनाथु अतीतु[७] ।
जब रोग सोग मनु तनु खपे तबहि न बेली[८] कोय ॥

---

(१) सा दिहाड़ी, नितप्रती; रोज बरोज। (२) हर्षवान हुई सभ प्रवार समेत । (३) बाजे । (४) भूषण घड़वाने पर अधिक धन खरचते हैं। (५) "भरमि" । (६) संगी, साथी। (७) दिगंबर, अवधूत समान । (८) सहायक, मददगार ।

जब जम पंथि भवाईअै तब सैन[१] सषा कहं सोइ ।
जब जम पुरि बद्धे मारीअहि किसहि सुणावहिं रोय ॥
जब भवजलि बद्धे मारीअहि कोय न राखनहार ।
नानक सचे नाम बिनु ध्रिगु जीवनु संसारि ॥ ५५ ॥
जब दरगहि लेखा मंगीअहि बहि धर्मु करै बीचारु ।
तहां जीउ अकेला मारीअै कहाँ सु कूक पुकार ॥
बिनु सचै बेली को नही सो निधरिआं[२] आधार ।
पंच पँखेरू[३] उडरे मनु झूठा अहंकारि ॥
पाप पुंन्न दुइ साखीआ तिसु सचै कै दरबारि ।
नदरि तेरी सुख पाया सचै शब्दि अचारि ॥
जो दीआ कीआ पाईअै ठाकि न सकै कोय ।
नानक गुरमुखि छूटीअै जन्मु सकार्थ[४] होय ॥ ५६ ॥
जब दरगह लेखा मंगीअै तहाँ हाजर कीजै जीउ[५] ।
तहाँ सचा शब्दु बीचारीअै तहाँ सचै शब्दि पतीउ[६] ॥
तहाँ शब्दु सहाई जीआ का सतिगुर पूरा नालि ।
गुर शरनि परे से उबरै भउजल उतरै पारि ॥
भवजल बिषमु डरावणा सतिगुर बोहिथु[७] आदि ।
दर्शन देखि विगसिआ सचै दरि शाबाशि ॥ ५७ ॥
अब लोक सबाए मीतु करि सुपरवार कहाय ।
ज्यों आया तिउं जावसी को संगि न साथी माय ॥
दिनु दिनु खूलै गंठड़ी लजि टूकिस मूसा खाय ।
गणवै[८] सास ग्रास मुखि अंध न सोझी पाय ॥
बिन गुर ज्ञान न छुटसी जासी जन्मु गवाय ।
नानक गुरमति उबरे रहे एक लिव लाय ॥ ५८ ॥

---

(१) अंग साक, संबंधी, मित्र उस समय कहाँ सोये रहते हैं। (२) निराश्रयों का आश्रा। (३) पाँच प्राण। (४) सफला। (५) जान। (६) प्रतीत लावो। (७) आदि बोहिथ, धुर का जहाज़। (८) गणती के श्वासों का मुख में ग्रास लेता है।

एको एकी आयो एको एकी जाँहि ।
एको जन्मिओ मरहि एकु एकु गरभि दुख पाँहि ॥
एको दुखु सुखु मनि बसै एको दुखु सहाँमु ।
हउमैं झूठा जगु भ्रम खपै जब मन ते बिसरे राँमु ॥
एके रचहिं त सुख सत्रहिँ सर्ब निरंतरि सोय ।
आदि निरंजनु अकुल धनी अंत सहाई होय ॥ ५९ ॥
ओहु प्राण पुरुष पुरुषोत्तमा जाति वरनु कुल नाहि ।
अकुलु अलेषु अथाहु सो आदि अंति मनि माहि ॥
खंड मंडल ब्रह्मंडि सो त्रिभवण करनैहारु ।
अबिचल अविनाशी नानका निरभउ हिरदै धारि ॥ ६० ॥
बालकु खेलै खेलना[1] मात पिता मनि चाउ ।
गहली[2] भोली बावली इहु जगु सुपना वाउ[3] ।
कालु कड़कै सिरि खड़ो ज्यौं बाजीगरु खेलै दाउ ॥
जो जनमिउ सो जायसी जीँवदिआँ माराइ ।
वारी आपो आपनी तनु देही भसम रलाइ ॥
जो दीसै सो बिनससी सिरि दीसै कालु बलाइ[4] ।
कालु अथर्वण[5] महाँ बली अंतिकाल लै जाइ ॥
माता मनि आनंदु है जब देखिउ बालक पिआरि ।
चउपड़ खेलै खेलना हरिगुण मनहु विसारि ॥ ६१ ॥
बिषु माया मनु बेधिआ मरि जन्मै आवै जाय ।
जिनि माया जगु मोहिया मोहि रली[6] लपटाय ॥
काटी कटै न मरि रहै औसी प्रभू रजाय ।
कर्म काल की जेवरी जन्मु बिरथो जाय ॥
ज्यौं बन फूले केतकी[7] कितही काम न साइ[8] ।
गुर सेवा हरि लिव उबरे नानक सहजि सुभाइ ॥ ६२ ॥

(१) खिलौना । (२) अधिक भूली हुई ; बहुत भोली, (३) स्वप्न रचना वत्, व्यर्थ ही, वा स्वप्न के वायू झकोलेवत् । (४) कालरूपी भूतना । (५) जंगी जोधा । (६) ठगी मात्र खुशियाँ में लपट करके । (७) केवड़ा । (८) सो ।

जिनि माया जगु मोहिआ ब्रह्मा बिश्नु महेश ।
ब्रह्मादिक सनकादिका इंद्रादिक मुनिएस[1] ॥
जती सती भेषी कई मोहे मोहनहारि ।
सिद्ध साधिक अरु जोगी जंगम ग्रिह बनि चिंताधार ॥
देवी देव सबाया सिध साधिक मुनि ध्यानि ।
जाल काल वशि पाँहि[2] सो हुकमि सचै नीसानि ॥
हरि भगति कीए हरि षासिआ[3] सचु अपरंपरु मानि ॥ ६३ ॥
बेद कतेब तिनि मोहिआ से कूक सुणावहि लोइ ।
नरक सुर्ग पाथर दिसै त्रिहु गुण सहसा होइ ।
पूछहु बेद पढ़ँतिआँ विणु नावै मुठी[4] रोइ ॥
सुर्ग लोक तिन मोहिआ गगन मंडल पाताल ।
गुर शरनि परे से उबरे हरि हिरदै एकु समालि ।
नानक सो दरु दर्शनु पायसी अबनाशी नदरि निहालि ॥ ६४ ॥
साथ लदै तिनाँ पाधीआ[5] गुर की सन्ति मति धीर ।
प्रीत्म[6] प्रान पिआरिआ मन तनि बसहि शरीर ॥
गूड़ी बाणी प्रेमु पदु गुर की मति अगाहु ।
विणु नाँवै को थिरु नही बिनु नावै किआ वेसाहु ॥
विणु नाँवै सभु अपवित्र है विन नाँवै नापाक ।
विणु नाँवै किआ गलि मिलाँ विन नाँवै किआ साक ॥ ६५ ॥
विणु नाँवै किआ मंत्रीआ कोइ देइन आदरु आखि ।
विणु नाँवै जम मारसी नाँ को संगी साथि ॥
विणु नाँवै किआ सुखि वसाँ किउँ नाम बिना घरि जाउँ ।
नामि बिना दोहागणी भूली आवउ जाउँ ॥

---

(१) मुनीश्वर । (२) पड़ेँगे । (३) षासे, दरबारी (४) मोहे हुए । (५) पंधीआँ, मुसाफराँ । (६) ऐ पिआरे ! प्रान प्रीतम तो मन, तन तथा शरीर मैँ भाव कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के अंतर इन ते परे अपना आप हूआ (साक्षी स्वरूप से) विराजमान है ।

गुर के शब्दि संतोषीश्रा सचु दरगहि पाई मानु ।
सतिगुर कउ शाबाशि है नामु दीआ जिनि दानु ॥ ६६ ॥
जहाँ नगरु तहाँ राजनु सोइ । जिसका कीआ सभ किछु होइ ॥
जो किछु करि पाया सो एका वारा । बहुरि न पायै जन्मु अपारा ॥
काम क्रोध तनि लोभु वधाया । तनु धनु सुत पिश्रारा कामणि चितु लाया ॥
कापड़ पहिरे सोहणे षटरस मीठे खाय । नानक लेखै माँगीअै श्रउत जणँदी[1] जाय॥६७
घर बालू[2] का देह मड़ोली[3] काची गागरि जाणु ।
कालु सदा सरु साँधहै ज्यौं पंखी सिरि सीचाणु[4] ॥
जब जमु पकड़े तब को न छडाए। सुपने ज्यौं भूले फिरि पछुताए ॥
आपे जिसु बषशै तिसु मेलि मिलाए। नानक सहजि भाइ लिवलाए ॥६८
दुधु मखनु रोटी खाय बाल भोगै रसकस भोग ।
सो दिन मन ते बिसरै मात पिता संजोगु ॥
अँधुला धँधु व्याप्या दुर्मति जोग व्योग ।
खावे भोगै मीठ रस नाम बिना सभ रोगु ॥
झूठे खेलै खेलणा झूठै नाल पिआरु ।
ज्यौं आया त्यौं जायसी मिटै न लेख लिलारु ॥ ६९ ॥
जन्मु मरणु दुख कालु सिरि घरि घरि माई बापु ।
गरभि पवहि मरि ऊतरहि[5] सिरि मारै कालु संतापु ॥
धर्म धीरज धरमापुरै पापी पिआरा पापु ।
वेसवा केरे पूत ज्यौं किसहि कहहिंगे बापु ॥
जमदर बाँधे मारीअहि दरगहि नाही मानु ।
जम जरूश्रै इहु गढ़ जोहिआ बिनु साध संगति हरि ध्यानु ॥
मनमुख नामु विसारिआ दरगह चलिआ हारि ।
नानक सचै नाम बिनु अंधा नरक गुबार ॥ ७० ॥

---

(१) संतान उत्पन्न करती हुई भी जो श्रसंतान वत दुखी हो, जैसे उसकी संतान 'श्रउतरी के' कहाती है वैसे ही दरगाह मेँ लेखा माँगते समय जीव का मंद तर हाल होगा। (२) रेत का कोट। (३) मढ़ी। (४) बाज पत्ती। (५) जन्म लेता फिरे, मर करि फिर जन्मे।

बाल बिनोद अचेत भै सुत्तिआँ गई बिहाय ।
घरु दरु रखि न सकिओ गाफलु भया रजाय ॥
भवजल बिषमु डरावणा क्यों तरीअै मेरी माय ।
जो दुख सहीअै गरभि कुंड सो दुख तेरे नालि ॥
सो दाता भुगता थिरु धनी होरि हउमैं बाँधे कालि ।
तूं सहु कमाया आपना किस कउ दोष धरेहि ॥
तिसु अँबड़ि[1] कोइ न सकई मरि जनमहिं होवहिं खेहि ॥७१॥
शिव शंकर मुख सबाए देवा । बहु कर्म कमावहिं अंतु न सेवा ॥
सिद्ध साधिक त्रयतीस[2] सबाय । जो हउमैं तयागै सो दर्शनु पाय ॥
भगत ज्ञानी साधू सोय । नानक जिसु मनि साचा अवरु न कोय ॥७२
बीर नाथ नारद मुनि सारै । जोगी जती पंडित बीचारै ॥
जो आतमु चीनै सो ततु लषारै[3] ॥
आदि पुरुष अपरंपरु पाया । सतिगुर परचै परम पदु आया ॥
आपु पछाणै सो लहै निधानु । आपु पछाणि महलु घरु जानु ॥
नानक पावै भगति नीसानु ॥७३॥
हठी तपी केते बनबासी । नगन मोनि ते[4] पवनु अभ्यासी[5] ॥
इकि निरहारी पवनहार उदासी । बिन सतिगुरु सहजि संतोष न आवासी ॥
साक्त अंधुलै शब्दु न जाणिआ । नानक केवल भगति मनु मानिआ ॥७४॥
अकलु पुरुष केवल गुर ज्ञानु । नाम निरंजनु अंतरि ध्यान ॥
प्रेम पराइणु प्रीतमु मानु । नरु निहकेवल निर्भउ दीबानु ॥
जीवन्मुक्ति अंम्रित फलु पाए । सर्ब निरंतरि रह्यो समाए ॥
आदि अतीतु पूरा गुरुज्ञानु । नानक माने परम निधानु ॥७५॥
परम निधान पदार्थ नाउं । परम तत्तु सचा बिसमाउ ॥
अमर अजोनी आदि जुगादि । परम निधान पूर्न परमादि ॥
आदि अंत सचु पूर्न पूरा । नानक जुगु जुगु असिथरु सूरा ॥७६॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरु ग्रंथे उन्मुन सुन्न प्राण पिंड बंधेज नाम चैाधमों ध्याउ ॥ १४ ॥

---

(१) पहुंच, बराबरी । (२) तेतीस कोट देवता । (३) बीचारै, लखै । (४) और । (५) हठयोगी ।

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १५ ॥

श्री बाबे जद चौध्वां ध्याउ सुणाया तां राजा जी अते नाथजी ऐसे प्रसन्न होए। जो कहणे विच नही आंवदा। सभनांदे हिरदेकमल विगास होते भए। नगर के जो लोग भागवान हैं ते सभ सुणकर मुक्त रूप होए। सभनां टापूआंदे राजे सुणकर आए। श्री बाबे जी को बारंबार प्रणाम करते भए। षोड़श प्रकार कर पूजा करत भए। श्री गोरखनाथ को तथा सर्व सिद्धाँ विषे जो गुप्त प्रगट थे तिन की राजा जी अरु मंडलेश्वर सभ मिलकर पूजा करते भए, भोजन वस्त्रों कर। जिस २ अधिकार के पुरुष थे, सभनों की प्रसन्नता श्री राजा जी करते भए। अरु राजे के भाग सभ सलाहते भए, ते श्री बाबा जी जो पवनहारी हैं तिनकी जैकार बोलते भए; जां सभ स्वस्थ चित्त होए, ताँ श्री बाबा राजा की ओर प्रसन्न अंम्रित द्रिष्टि कर देखते भए। जैसे बर्षा सों भरा हुआ मेघ बर्षा करणे को आय संम्रथ होत है। तौ प्रिथ्वी बडे बिलास कौ प्राप्त होती है। अरु मोर प्रसन्न होते हैं तैसे श्री गुरू जी को कृपाल देखि कै राजा हाथ जोड़ कै बेनती करत भया।

श्री राजोवाच—हे भगवान कृपानिधान जी ? मेरी इह इच्छा है जो श्री सतिगुरू जी की उस्तति सुणाईए जी, ते निरजोग भगति का बिस्थार सुणाईए जी इह प्राणसंगली मेरे प्राणों का कवच है। मेरे कल्याण के हित है। श्री गुरू जी तुमारी इह कला प्रगट होई है। जां राजे जी बहुत बेनती कीती, तां श्री गुरू जी प्रसन्न होय कै पंध्रवां ध्याउ प्राणसंगली जी का सुणावणे लगे।

सुसंबेद अगमबाणी परम जोत का ध्याउ चलिआ

॥ राग भैरउ महला १ ॥

गुरमुखि नाम निरंजन लीजै,
साध संगति मैं राख गुसाइ राम रिदै मुखि अम्रित पीजै॥१॥ रहाउ ॥

॥ पउड़ी ॥

गुर जत सत संजम मुक्तिवर दाता जपु तपु सहजु ध्यानं।
संतोष सरोवर ज्ञान परायण घट घट सो परधानं ॥
सभ सुच संजम गुर ज्ञान पदार्थ हरि अंतरि भगति षजाना।
मिथ्या लोभ नहीं सचु सूचा सहजभाय मनु माना ॥
परम निधान परम गुर पूरा घटि घटि ब्रह्म पछानु।
गुर आदि जुगादि जुगो जुग अंतरि अबिनासी पुरुष प्रधानु ॥१॥
गुर आदि जुगादि जुगो जुग जागै मरै न आवै जाई।
गुर निरवैर निर्भउ भउ खंडन सचे सच समाई ॥

गुर हरि रंग भीना ज्यौं जल मीना निर्भेउ तिल न तमाई ।
गुर बेशुमार अपार अपरंपर कीमत कहणु न जाई ॥
गुर द्रयाउ सदा जल निर्मल दुर्मति मैलु न काई ।
गुर उपदेश ज्वाहर माणक सो सेवै पुर्ब कमाई ॥ २ ॥
गुर जत सत पूरा सत बुध मूरति सत्त पुरुष निहकामं ।
संतोष सरोवर गुर ज्ञान पदार्थ रत्न अमोलक नामं ॥
गुर आदि निरंजन पाप निखंडन अगम रूप बिस्रामं ।
गुर ब्यंत मित किनै न पाई नौं निध नाम निधानं ॥
गुर अलेख अलक्खु न लखीऐ शब्द मिलै मन माना ।
नानक सतिगुर तिनकौ भेटै जिन कर्म पया नीशाना ॥३॥
काम क्रोध हंकार न लोभं त्रिश्ना तामस नाही ।
सहसा जोगु व्योग न व्यापै जो शब्द रत्ते मन माँही ।
सतिगुर सेव परम पद पाईए साचे सच्च समाँही ॥
हर्ष सोग ते मुक्त अजोनी हरि निर्मल जोति शरीरा ।
आनँद रूप अनाहद बाणी प्रभ जाणहि पर पीरा ।
कैवल गुर ज्ञान अजोनी सँभउ रिदै वसै मनु धीरा ॥ ४ ॥
मुक्ति सरोवर न्हाय सु मुक्ता नाँ तिसु जन्म न कालो ।
नाँ तिसु बासा गर्भ जठर महि उह पूरा दीन दयालो ॥
सूचा मनु साचु न मैला होई । आपे आप उपंन्ना सोई ॥
आपु पछानि बसै ब्रह्मंडि । काल बिकाल कउ खंड बिखंडि ॥
सदा अतीतु आवै न जाय । नानक गुण कहि गुणी समाय ॥५॥
जाति वरन ते मुक्ता है साधू कुल अपमानु[१] न गर्बु करै ।
उह साधू भगत मुक्ति का दाता तिस चरन रहउ लिव लाग रहै ॥
हर्ष सोगु ते रहत निरारा सहज भाय बैरागी ।
सर्ब जीआँ महि रहिआ समाई उर्ध ध्यान लिव लागी ॥
अजपा जापु जपै जिँह आई । नानक सचु सिऊँ राता सचु समाई ॥ ६ ॥
सचु सिऊं राता सचे माता । आय गया क्यों आवै जाता ॥

---

(१) बुरामान (अभिमान) ।

सचु उपदेश साधू गुर लक्षण। जप तप संजम सुरत बिचक्षण॥
हिरदै हार परोवै कंठी। सचु धनु पल्लै नानक गंठी॥ ७॥
सचु धनु पल्लै मत परवानु। सचु धनु पल्लै अमर दीबानु॥
सचु धनु पल्लै सिफ़्त सलाहु। सचु धनु पल्लै पातशाही पातशाहु॥
सचु धनु पल्लै तषत निवासु। नानक सचु धनु पल्लै हरिगुण प्रगासु॥८
सचु धनु पल्लै दर सचे पति। सचु धनु पल्लै जा बहै तषत्तु॥
सचु धनु पल्लै अपरंपर थान। सचु धनु पल्लै दरगहि मान॥
सचु धनु पल्लै सचु नीसानु॥
सचु धनु पल्लै नामु सचु सारु। सचु धनु पल्लै नानक जैकारु॥९॥
सचु धनु पल्लै ताँ सचि समाय। सचु धनु पल्लै सचे पत्याय
सचु धनु पल्लै गहर गँभीरु। सचु धनु पल्लै गुणी गहीरु॥
सचु धनु पल्लै रत्न अमोलु। नानक सचु धनु (पल्लै) अगम अतोलु१०
अंतरजामी जोति सबाया प्रभ काटै पर पीरा।
सभ तीर्थ मंजनु गुर दर्श तुहारो रिदै बसै मनु धीरा॥
अकथ कथा निर्गुण मनु मानिआ अलषु ध्यानु मन राता।
सुरत शब्द धुनि आनि निरंजन ओह पूर्न पुरुष बिधाता॥
उह पूर्न पुरुष पुरुषोत्तम पूरा। उस पत परवाना नानक सचु सूरा॥११
एको एकी रहतु निरालम आतम तत्तु बीचारा।
नानक ताके चरन सरेवै ओह सतिगुर पुरुष निरारा॥
सो पुरुष परंम निधान ज्ञानी किलविष हंता सर्ब मए।
नरहर नरनाथ निरंजन देवा उर्ध ध्यान लिव लाय रहे॥
नरहर नाथ निरंजन सुआमी अमर अजूनी आदे।
आय न जाई सचु ठकुराई नानक आदि जुगादे॥ १२॥
पारब्रह्म परधान निरालम त्रिभवन जोत अपारा।
सतिगुर शरन महाँ शम[1] पाईअै सो आकुल रिदै पिआरा॥
निरवैर निहकाम निरोधर सोई आदि सरूपो।
सर्ब निरंतर सारु समालै सो आकुल आदि अनूपो॥

(१) "महारस"=परम शांति।

सो आकुल आदि जुगादि जुगताई ओह सचा सचु पतीणा ।
कर बिस्थार जिन सफा बनाई सो नानक घटि घटि लीणा ॥१३॥
मुक्ति पदार्थ इन बिधि पावसि साध संगति लिव ध्यानु हरे ।
साध संगति मनु इस्थिर आछै गुर अलषु लषावै नदरि करे ॥
खिमा दया सचु संजमु निहचलु काम क्रोध का नासो ।
लोभ मोह जन निकटि न आवै दर सचे दासनु दासो ॥
अहनिशि एक नामु लिव लाए हउमै दुबिधा नासी ।
सत संतोष बसै घटि भीतरि प्रभ पाया अबिनासी ॥ १४ ॥
निंद चिंद नही तात पराई तिश्ना तामस दूर करै ।
सुख दुख रहत अतीत निरालम सो सतिगुर साधू मुक्ति सरे ॥
अजपा जापु जपै गुरबचनी परम जोति पुरुषोतम हे ।
एक अनेक जप जोत सबाई निर्गुण सरगुण एको हे ॥
अध्यात्म कर्म महाँरस मीठे आपे[1] जानै अलष घरे ।
मूल मंत्र जो एको चीनै जन नानक ताँको शरन परे ॥ १५ ॥
जप तप संजम सुरति बिचक्षण । ज्ञान खड़ग ले मनहि समक्षण[2] ॥
ऊची पउड़ी लै गगनंतरि चढ़ीआ। अनहद बीचारु चमकी जोतड़ीआ ॥
जिँव दामनि चमक चंदायण पेखे । तयोँ अंतरि जोत निरंतर देखै॥१६
दिब्य दृष्टि जोत अनूप तहिँ होती । गुरमुखि पसरी साची जोती ॥
सचु सरूप साचु प्रगासु । गुरमुखि घटि घटि सचु निवासु ॥
आस्त नास्त एको नाऊँ । नानक दर्शन को बल जाऊँ ॥ १७ ॥
सचु सो दर्शनु कुदरत मुशताक। सचु भोजन सचु घर अउताक ॥
सचु सषाई प्रीतम राउ । सचु रचै सचु मनु चाउ ॥
साचा प्रीतम प्रेम अनंद । प्रेम प्रायण परमानंद ॥
गुरमुखि सचु सदा बषशंद ॥
सचु द्रिढ़ता सचु सचि समाउ । नानक जुग जुग सचु पसाउ ॥१८
सतिगुर मिले मुक्त दर खूलै, हरि भगति भाउ मन मानै ।
पंच मार मनु मनहि समानिआ, अनत न दुतीआ जानै ॥

(१) "आप रहे जन अलख घरे"—पाठ भी है । (२) सनमुख करे ।

हरि रस चाहहि मीत पिआरे। अहिनिश भगत रहै लिव धारे।
निज महली घरि सूख बसाही। हरिजन निश्चउ मरै न जाही॥
गुर शब्दी घर कार्ज सारे। जन के कार्ज आप स्वारे॥
भगति भाय रह्या भरपूरु। किसु नेड़े किसु आखाँ दूर॥ १९॥
जो जन दर्शन आस पिआसा। जुग जुग ताके चरन निवासा।
साध जनाँ मागऊँ पग धूरे। सहज दुख भरम मिटे ते दूरे॥
भला बुरा आतम ते जान। हरि भजु मन तूँ होहु स्यानु॥
जन्म मरन की आस मिटाई। तब पहि[1] आपु पछाता भाई।
दुइकर जोड़ि कराँ अरदासु। नानक साध जनां महि हरि पूरी आस॥२०
सो मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावै। साध संगति महि हरि लिव लावै॥
गवन मिटिआ हरि वसिआ चीता। अकाल जपत रहै नित नीता॥
पी अंम्रित मनु त्रिप्तु अघाना। सर्ब महि एकु देखि मनु माना॥
अनहद शब्द अतीत बजाया। सो आकल आदि निरंजन गाया॥२१
मन तन भूख पिआस न लागी। दुतीआ भाउ संसा हऊँ त्यागी॥
गुरमति चीनि भया बैरागी॥
दीन दयाल भए किरपाला। राखहि राखन हार दयाला॥
साध संगति महि मनु तनु रँगै। नानक दुत्तर तरउ तिँह सँगै॥२२
कचहुँ कंचन करे अपारा। आकल भया तत्तु बीचारा॥
आपे करन करावन हार। आपे पार उतारै तारु॥
आपे संगति साध मिलावै। नानक आपे आँख[2] दिखावै॥
आपे सतिगुर[3] आपे गुरबाणी[4]। आपे सेवक सुरत समाणी॥२३॥
पंचलोक ठाकुर परधान। साध संगति मिलि इहु मन मानु॥
सभ महि ठाकुर रह्या समाय। सो प्रभ सतिगुर दीआ दिखाय॥
जो आतम चीनै आपु गवाई। प्रभ दीन दयाल महल घर पाई॥
त्रिभुवण उपर सिंहासन बासा। नानक सो आदि पुरुष प्रगासा॥२४

(१) "पहि" संदिग्ध पाठ प्रतीत होता है यदि यही पाठ शुद्ध हो तो अर्थ पास ('निकट') करने से अर्थ (पंक्ती का) हो सकेगा। संभव है कि 'पहि' का जगह 'प्रभु' पाठ होवे। (२) 'आंख' पाठ शुद्ध हो तो तीसरा नेत्र और 'आंख' पाठ होने में कथन (उपदेश) करके अर्थ होंगे। (३) शब्द ध्वनि (अनाहत)। (४) अनाहद शब्द (जो श्वासा की चोट से प्रगट हुआ करता है)।

त्रिभवण ऊपर सिंहासन थाँन । तहीं निरंजन पुरुष सुजान ॥
तहँ अंम्रित बरसै किरपा धार । तहाँ प्रीतम सचु मनि सचु पिआरु ॥
तहाँ भगत सँबूह का अंतु न पारु । तहँ पवन न पानी नाँ आकारु ॥
तहाँ पुरीआँ सप्त ऊपरि कउलास । नानक निरंकार निरजासु[१] ॥२५॥
प्रभु दया करे जनु मेल मिलाए । सो जनु बिछुड़ नाँ दुख पाए ॥
दुख संताप नहीं गुर सेवा । अंतरजामी पुरुष अभेवा ॥
जिन जानिआ गुरुशब्द लखाया । नानक प्रभ पूरा दर्शन पाया ॥२६
आदि अंत प्रभ सषा सहाई । सो हरि प्रीतम रह्या समाई ॥
अहिनिशि निर्मल हिरदै हरि भाउ । नानक दर्शन कउ बलि जाउ॥
हरि दर्शन परसे भया अनंद । नानक सर्ब सषा गोइंद ॥
दर्शन परसै गुरुमति धीरु । नवनिध गुण गावै देख हजूर ॥
शब्द गुरू उपदेश दिढ़ाया । सतिगुर परचे परम पदु पाया ।
अमर अजोनी सचु पसाउ ।
कीता पसाउ एको कवाउ । नानक होवै लख द्रयाउ ॥ २७ ॥
अपने धर्म कउ निहचल पालै । ज्योँ प्रीतम गऊ गोपाले बालै ॥
ऐसा हरि जन ज्योँ जल मीना । हरि सिऊँ प्रीति प्रीतम मनु लीना॥
नानक सललै सलल मिलाया । त्रिभवन एको जोति लिउ लाया ॥
बिन सतिगुर मेलि न सकै कोई । सतिगुर मिलै मुक्तिवर होई ॥२८॥
सतिगुर शब्द भगत जसु गाया । अलष पुरुष इक चलत दिखाया ॥
सतिगुर मिलिआ मनु पत्याया ॥
करि करि वेखै आपि सुजाँन । संत जनाँ हरि भगत निशाँन ॥
अकथ अपार की अकथ कहानी । नानक मुक्ते पद निरबानी ॥२९॥
पंच मिलहि अपने घरि पूरा । तिस घटि बाजहि अनहद तूरा ॥
कार्ज सिद्ध सहज बैरागा । हरि भगत हेत पूरे वड भागा ॥
साध संग जस पावै देवा । नानक आदि अंति प्रभ सेवा ॥३०॥
हउमै दुख का भया बिनास । सहज भाय जन दासन दास ॥
शरनि परे लाज राख अपारु । तूँ बेप्रवाह मैं दीन बीचारु ॥

---

(१) निरगो भूत तत्त्व (परम तत्त्व) ।

अकथ कथा का तत्तु बीचारु । तूँ भै भंजन अलख अपारु ॥
निकट बसहि संगी मनु माहि । सहज भाय मिलिआ बुध ताहि ॥३१
साध संगति मिल ज्ञानु प्रगासै। साध संगति मिल कवल बिगासै ॥
साध संगति मिलिआ मनु माना । ना मैं ना हउँ सोहं जाना ॥
सगल भवन महि एका जोति । सतिगुर पाया सहज सरोत ॥
नानक किलविष काट तहाँ ही । सहजि मिलै अंम्रित सीचाही ॥३२॥
सहजि मिलै मनु सुन्न समाना । सहजि मिलै मनु ते मनु माना ॥
सहजि मिलै घर लहै निधानु । सहजि मिलै दरगहि प्रवानु ॥
सहजि मिलै सचा नीसानु । सहजि मिलै नानक घरु जानु ॥३३॥
सचु मिलै सची पति आई । सचु मिलै फुनि काल न खाई ॥
सचु मिलै साचे घरि जाई ॥
सचु मिलै गुर ज्ञानु अचलु । सचु मिलै सुख लहै महलु ॥
सचु मिलै नानक दर मलु ॥ ३४ ॥
पंच मिलै अस्थिर मनु पावै । पंच मिलै गरभ जोनि न आवै ॥
साध संगति महि ऋद्धि सिद्धि बुद्धि ज्ञानु । पंच मिलै तब मुक्त ध्यानु ॥
पंच मिलै पावहि प्रभ सोय। नानक गुर मिलीऐ कार्ज सिद्ध होय॥३५
साध संगति गुर ज्ञानु समावै । साध संगति दरगहि पत पावै ॥
मनु शब्द अतीत बिरला जनु कोय। तिसु घटि दुतीआ भाउ न होय॥
दूजै भाय साक्त दुख लागै । नानक ओइ आइ जाहि अभागै ॥ ३६ ॥
मनु मानै मनु माहि अनंदु । घटि घटि चीनै कैवल चंदु ॥
सुख दुख दाता बषशिआ मनु आय। अकथ कथा की सोझी पाय ॥
मनु निहचल पूरी गुरमति । मनु निहचल तब बहै तषत्त ॥
मनु निहचल सत संगति पावै । नानक सो दर्शन पैधा जनु जावै ॥३७
पंच मिलहि परवार सधार । मूल ध्यान घर ओअंकार ॥
सतिगुर मिलै भउभंजन गाईऐ । नानक अनहद शब्द समाईऐ ॥
शब्द पछान मिलै गुर ज्ञानु । नानक तारू थाहि पछानु ॥ ३८ ॥
सभि सखीआँ मिलि मंगल गाया । जिस मंगल शोभा सचु पाया ॥
सचु मंगल सहीआ गुण गाय । सचु मंगल सूहागु न जाय ॥

अस्थिर कंत मिलिआ सिउ लाय ॥

सुरत शब्द आवै परतीत । भगति भाय सचु गुण संगीत ॥

पंच मिलहि संग्राम न हारै । गुर ज्ञानु खड़गु लै मनु मनसा को मारै ॥३९

मनु निहचल घरि अंम्रित रस पाया । अनरसु तयागै सहजि सुभाया ॥

सो अबिनाशी सिर छत्र अपारा । पंच मिलहि तत्तु कार्ज सारा ॥

साध संगति मिलि दरगहि मानु । नानक साध संगतिं मिल निरंजनु जानु ॥४०॥

सतिगुर परचै सो प्रभ पाया । तिसकी जोति त्रिभवन सोभाया ॥

दूर दरद मन साचा भाउ । आदि जुगादि सचु पसाउ ॥

गुण निधानु कैवल तिहु लोइ । नानक आवागवण न होय ॥४१

इहु मनु मानिआ आतम वीचारु । मनु निहचलु पावै पद सारु ॥

साध संगति गुर शरनि रहाउ । बिन अभिभगती आवै जाउ ॥

नानक सो प्रभ जुग जुग गाया । सतिगुर मिलीऔ इहु पद पाया ॥

अमर पद चीनि रहे लिव लाई । नानक इत रस कालु न खाई ॥ ४२ ॥

कचहुँ कंचन होय गुरमति लाल । पंच मिलहि तहिँ लाल गुलाल ॥

पंच मिलहि हरि नदरि निहाल ॥

जुग जुग सचा अमर दीबानु । पूरे गुर के शब्द पछानु ॥

नानक गुर ते रह्या आव न जानु ॥ ४३ ॥

साध संगति कारज सिद्ध होई । पंच मिलहि तिन की मति होई ॥

मनु मानिऔ अघ दूख न होई । मन मानिऔ निर्भउ घरि सोई ॥

मनु मानिऔ मनूआ थिर थाई । नानक दर्शन कउ बलिजाई ॥४४॥

सतिगुर का मन शब्दु पछानु । त्रैदल साधु मिलावै मानु ॥

सो पंचा ऊपरि परधानु ।

पंच मिलहि छत्र सिर लेइ । बैसे तषत सुअदल करेइ ॥

करै तपावस अदली आपै । उन्मन कालु कउ मारै चापै ॥४५॥

चैतन्य पुरुष बैठा हुश्यारी । घर दर राखै शब्द विचारी ॥

अंतरि बाहरि लीला एकु । बूझहु ज्ञानी करहु बिबेकु ॥

राखै बस्तु एक लिवलावै । चोर न पैसे दूत न खावै ॥
गगन अगंम अरंपर वासा । नानक प्रभ सेवक निकट निवासा ॥४६॥
काल कंटक तिश्ना गति कीनी । आत्म राम गुरमति सचु चीनी ॥
काल बिकालु न आवस नेरा । प्रेम अगनि गुर शब्द निबेरा ॥
जन्म मरन की चूकी कान । नानक हरि भजु मुक्त निधान ॥४७
सचु अस्थिरु पंच सागर मँझारे । अदल करै अपने बीचारै ॥
पंचा का जो जानै भेउ । ओह अलष निरंजन करता देउ ॥
सो अगम निगम का जाणै जाणु । नानक घटि घटि पुरुष सुजानु ॥ ४८ ॥
सो बूझै जिसु आपु बुझावै । सतिगुर शब्द अनहद पति पावै ॥
इहु मनु समझि अंतु घरि पावै । मन तिप्तै फिर भूख न आवै ॥
भरम जाय सतिगुर मति आवै । नाथहि नाथ निरंजन पावै ॥
हउमैं जाय ताँ इह रस पावै ॥ ४९ ॥
गुरमति उपजै प्रेम ज्ञानु । गुरमति लागै सहज ध्यानु ॥
इन बिधि आपे आपु पछानु ॥
गुरमुखि उलटी नाउ तरावै । नानक गुरमुखि अगनि बुझावै ॥५०॥
सहज संतोष न मनहि डोलावै । निर्भउ घर बसै न चोटा खावै ॥
एकहि रचहु एक करि जाण । एको ही त्राण[१] निमाणिआँ का माण॥
नानक इह रसु कालु न चापै । ताँ गुरमति आपु पछानै आपै ॥५१॥
अगनि बुझी मनु शीतल भया । अनरसु तयागि महारसु लया ॥
गुरमति मनु चलता ग्रिह राखै । गुरमुख सचु समायण चाखै ॥
अकथ कथे जुग जुग परवाणु । नानक सर्ब निरंतरि एको जाणु ॥५२
गुरमुखि जोग पवन अभ्यास । गुरमति बेद सिंमृति अभ्यास ॥
गुरमुखि नाद बेद धुनि बाणी । गुरमुख जीआ जुगति समाणी ॥
गुरमुखि तत्तु निरंजनु गाया । गुरमुखि नानक मनु पत्याया ॥
गुरमति सर्ब देवा इक सेवा । नानक चीनस अलष अभेवा ॥५३॥
गुर की मति को ले न जाइ कहही । मन्मुख निगुरे जम पुर रहही ॥
सिर जम कंकर अति दुख सहाहि । इउं गरभि गलहि बहु जोनि भरमाहि ॥५४

(१) रक्षक ।

गुरमुखि अघड़ घड़ावै थाट । गुरमति ले पूरा नही घाट ॥
गुरमति टेक टिकै नहि मनूआ डोलै । गुरमति शाँत सहजि घरि बोलै ॥
गुरमति पूरा तोल अतोलै । नानक गुरमति तत्तु विरोलै ॥५६॥
गुरमति अस्थिरु चितु मनु माना । गुरमति लेइ सोई परधाना ॥
गुर की मति ले रसक रसाई । गुरमति लेइ न कतहूँ धाई ॥
सतिगुर का सेवक सो हितकारी । नानक सहज मिलै प्रभ किरपा धारी ॥५७
साध संगति बानी मनि भावै । कहै सुनै मनु सुन्न समावैं ॥
इत रसु जम जंदारु न लावै । गुरमति लाहा मूल करावै ॥
गुरमति संगति मनु ठहरावै । गुरमति नानक जो सेव कमावै ॥५८॥
दर्शन पावै सो वडभागी । आत्म चीनि भए बैरागी ॥
सदा दयालु दया प्रभ धारी । हउमै त्याग मिलै बनवारी ॥
इत रस जन्म मरन दुख जावै । नानक गुरमति अबगति कउ पावै ॥५९॥
अबगति नाथ न लखिआ जाय । बिश्न महेश रहे लिव लाय ॥
ताँके दर्शन कउ बिललाय । सिद्ध साधक मुनि जोगी ध्याय ॥
जोगी जती तपसी गुरज्ञानी । अकथ अपार साधू गुर ज्ञानी ॥
रहै निरालम अकथ कहानी ॥
अकथ कथा लीनी मनु मानिआ । नानक निहचल घटि २ जानिआ ॥६०॥
अगम अलष गुर दीआ दिखाई । सतिगुर मिलीअै तिश्ना भउ जाई
मूल पछाँन सु ब्रह्मज्ञानु । इहु मनु शीतलु ब्रह्म ज्ञानु ॥
आदि अंत का सषा सहाई । नानक सतिगुर सोझी पाई ॥६१॥
प्रभ से प्रीतम तजहि गवारु । आनि आनि मीतहि वेकार ॥
दुख कर्मा के बंधे कालु संतावै । सुरति शब्द बिनु मुक्ति न पावै ॥
जन्महि मरहि काल के बाँधे । कालु न छोडै बिनु हरि रसु राधे ॥
बिन हरि मीत सखा नाँ कोय । नानक सहजे होय सो होय ॥६२
आत्म प्रबोध अतीत बिचारी । आदि निरंजन प्रभ मिलै मुरारी ॥
सतिगुर शब्द कीआ परधान । सची दरगहि सचा मानु ॥

आतम वीचारी अगनि निवारी । आद अंत जन करणी सारी ॥
नानक जुग जुग भगति निरारी ॥ ६३ ॥
गुर शब्दी मनु भया विगासु । सतिगुर परचै मिलै प्रभु तासु ॥
घटि घटि साचा प्रेम आनंदु । आदि अंति भजु गुन गोबिंदु ॥
गुन गोबिंद की कवन बडाई । त्रैलोक मिल किनै कीम न पाई ॥
नानक सचे सच वडाई ॥ ६४ ॥
मनमत को भूलै तिस गुर समझावै । पूर्ब लिखिआ साधू गुर पावै ॥
सतिगुर मिलै पूर्ब संजोगु । आयै हर्ष न गयै सोगु ॥
हर्ष सोग समसर कर जाणै । नानक निरगुण संत तिसु भगत षजानै ॥ ६५ ॥
निरगुण कथा जाके मन भावै । निर्मल निश्चल सो घर थिर पावै॥
अपिओ पीए अंम्रित रसु नावै । आदि अनील अनादि समावै ॥
इत रसु जम कै संगि न जावै । नानक प्रेम पदार्थ पावै ॥ ६६ ॥
जिस जन दरगहि मिलै वडाई । त्रिभवण जोति रहै लिव लाई॥
चंचल मति थाकी निश्चल बुधि पाई । साध संगति महि सुरत समाई
मन मान्या गुर अलष लषावै । नानक सहजि समाधि लगावै ॥६७

॥ इति श्री प्राण संगली गुर ग्रंथे पंचदशमों ध्याउ संपूर्ण ॥ १५ ॥

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसाद ॥

॥ अध्याय १६ ॥

श्री बाबे जी जां पँद्रहूां ध्याउ सुणाया तां राजे शिवनाभ बेनती कीती—जी मिहरबान ! सतिगुर जी की बुद्ध कौन कहीए ? जिसकरि सिक्ख का कल्याण होता है; अरु मुक्ति पदार्थ पावता है । अरु जी गुर बुद्ध ते प्रगास जो होता है सो क्योंकरि होता है ? अरु जी वहु कौन आराधन है अरु कौन ध्यान है जिस करि मुक्त होईता है (संसार ते) ? सो कृपा करि वरनण करो जी ! जां राजे प्रश्न करिआ तां सदा दयाल पुरुष गुर परमेश्वर जी परमतत्त्व का ध्यान बोले—

॥ राग केदारा गौंड महला १ ॥

काल बल निर्जोग भगति ।

बुद्धि प्रगास मुक्ति गुरु ध्यानु । इस ग्रहि मंदिर आत्मे कउ जानु ॥
रामु रसायणु सहिज पछानु ॥१॥ रहाउ ॥

सो ग्रही जो भगति ग्रहि जागै। तिसु ग्रिह मंदिर चोरु न लागै॥
राखै वस्तु गुरमुखि निज ध्यान। धर्म दया दृढ़ पुन्न परान॥
परमहंसु परम पुरुष परधान॥
उहु पावै मुक्ति न फासै जम जाल। तिसु कर्म क्रितु नाही शिरि काल॥
नानक दया करी हरि दयाल॥१॥
दाना बीना देखै बीचारु। हौंमैं दूख मिटै वेकारु॥
कायाँ हरि मंदिरु ब्रह्म समाना। सत शब्द निहकेवल ध्याना॥
भगति भाउ करि रहहि अतीता। कहि सुनि बूझहि हरि रस गीता॥
त्रिकुटी छूटै मुक्ति दुआरु। अंम्रित पीवै निर्मल धारु॥
सर्व मुक्ति वैकुंठ बुद्धि पाई। नानक सो प्रभ प्रान सषाई॥२॥
सषा सषाई सो दीबान। भगति बड़ाई भगति नीसान॥
असंख नाम प्रभ सूचा करै। जपि केवल नामु उपाधि दुख टरै॥
केवल रामु रहिआ भरपूरि। केवल नामु मेरै संग हजूरि॥
केवल राम रवंते[1] जाणु। नानक गुरमुखि पावहि माणु॥३॥
इह कुटंब त्रिष्णा ग्रिह सागर, भूख पिआसे त्रिप्त नही।
माया ममता लोभ नर मूठे, अहिनिशि तिनके जन्म जाहीं॥
बिन गुर शब्दै शांति न आवै। जलतु फिरै तिस नहि तिप्तावै॥
शब्दि सुरति नहीं बूझसि बवरे नटूआ ज्यौं संगि भुलाना।
नानक तप्त बुझी गुर शब्दी जब चीनिआ आत्म रामा॥४॥
सुत बंधिप माया मद माते सषा सैन बाप माई।
नामु बिना कछु संगि न चालै सब झूठी प्रीति लगाई॥
नानक छोडि चले ग्रिह मंदिर खिण महि भई पराई।
तब संसा दुख न लागै बिनशै इऊँ साक्त भुख न जाई॥
धर्मराय जब डंडु लगाना तब शिरि धुनि बहु पछुताई।
अंध गुबार किछु नदरि न आवै दर की षबिर न पाई॥
सतिगुर मिलै ताँ सहसा भागै नानक हरि केवल जोगु कमाई॥५

(१) रमणहारा (व्यापक)।

ब्रह्मण सो जो ब्रह्म कैा चीनै उत्तम सो परधाना ।
अस्थिर चीत अस्थिरु मति पूरी ब्रह्मज्ञान इस्नाना ॥
निर्मल संतोष सदा सचु शिक्षा क्षमा दया गायत्री ।
जपु तपु संजमु सुरति सदा तपु धीर्ज बच 'सत' शांती ॥
मनु जीते जगु जीति जनेऊ पूजै हरि देउ निरारा ।
एक शबदु इकु कथा बीचारी सो चीनै ब्रह्म अपारा ॥६॥
परम तत्त की हिरदै माला मनि तनि एक सुभाया ।
हरि हरि हारु कंठि लै पहिरै हरि हिरदै हरि राया ॥
अठसठि मजनु मस्तकि टीका अनत न मनु डोलाया ।
अंतरिध्यानु धर्मु सचु पड़िआ मान सरोवर न्हाया॥
जिह्वा इंद्री जत जुगति जनेऊ अनदिनु सद ही मुक्ता ।
जोग जुगति सचु एको एकी मनु मानिआ ब्रह्म सु जुगता ॥७॥
निर्मल कथा अकथ कउ चीनै निर्मल देह पुनीता ।
निर्मल नामु भोजनु करि त्रिपतै पंचे इंद्री जीता ॥
निर्मल जोति निहकर्म निरंजन निर्वैरु पूजा न जुगता ।
निर्वैर निरोधर[१] नरु निहकेवल ब्रह्म ज्ञानी भगता ॥
ताका दर्शन पुन्न फलु पावै नानक निर्भउ हरि चेता ।
कोटि कुटंतरि महि बिरला को साधू पुन्न प्रायण[२] बेता ॥ ८ ॥
अहिनिशि निर्मलु निर्मलु मनु धोती, ब्रह्म कर्म का बेता ।
एकु ध्यानु सचु माल प्रीती सूचा मनु तनु चेता ॥
निर्मलु साखी सत संतोषी निर्मलु नामु सुहेता ।
ब्रह्म कर्म करि ब्रह्मु पछाता सची सुरत सुचेता ॥
निहकर्म का तत्तु अभिअंतरि सूचा, सूचे मनु बुद्धि देही ।
सूचे संत साच कउ चीनै, प्रभ आपे दया करेही ॥ ९ ॥
रहै अतीत आप कउ चीनै, सभ महि रहै निरारा ।
सुत बंधप माया ते मुक्ता, सभ सुख हित हरि पिआरा ॥

(१) जिस का किसी के साथ विरोधना होवे । (२) पुन्न-नाम पवित्र का है सोई परम आश्रा भूत वस्तु (ऐसे शुद्ध परम तत्त्व का जाननेवाला) ।

रहै अलेप कवलु विच पाणी, घर ही माहि उदासा ।
बोलै साचु मिथ्या नही राई, साचे तषति निवासा ॥
मुक्त भया हरि प्रीति पुनीता, हरि संत जनाँ हितकारी ।
नानक घटि घटि ब्रह्मु बिधाता,[१] चीनहु शब्दि बिचारी ॥१०॥
सप्त पुरीआँ इस्नान स्वारै, हरि दर्शन जनु चाहै ।
उत्तमु कर्मु आप कउ चीनसि, एकै शब्दु सलाहै ॥
मनु मनसा बुद्धि हरि संगि भीने, सुरति शब्दु इकु जोती ।
आपु खोय अपरंपरु चीनै, मनसा मनहि प्रीती ॥
शब्दु अतीत धुनि जोति लषावै । आप जानि अपुनै घरि आवै ॥११॥
उलटी गंग गगन सरि निर्मलु, काँया काँशी इहु मनु न्हावै ।
आपे सतिगुर आपे सेवक, आपे सहजि समाधि लगावै ॥
आपे पारसु परसि गुर दाता, हरि दर्शनु देखि दिखावै ।
सूरति मूरति शब्दि पछानसि, इऊँ सललै सलल समावै ॥
सर्ब निरंतर पुरुषु निरालमु, अबिनाशी पुरषु अभेवा ।
नानक हारि परे दरि भीतरि, जो त्रिभवणु एकु सरेवा[२] ॥
जैसी संगति तैसा मनि भाउ । जैसी भगति तैसा फलु पाउ ॥
जैसा गुर मिलै तैसे गुन गाउ ।
जैसी आसा मनसा फुनि तैसी । नानक दर्शन कउ बलि जासी ॥१२॥
जैसी बूझीअले वर्ती तैसी । सतिगुर शब्दि रँगीअले रैसी[३] ॥
इकु सचा चीति नाही मनु भंगु । इकु हरि शरन साधू का संगु ॥
पढ़ि गुन बूझीअले ब्रह्म ज्ञानु । नानक अस्थिर ब्रह्मु ध्यानु ॥१३॥
वेद विचारि लीआ अकथु मनु मानिआ। साध संगति महि अलख पछानिआ॥
कर्म धर्म तीर्थ इस्नाना । सतिगुर पुरुष मिलै हिरदै हरि जाना॥
सति सति ब्रह्म बिबेक बुद्धि साची सर्ब निरंतर साचा हे ।
बिबेक हीन भरमति मति काची कितु बिधि पावहि साचा हे ॥१४॥
गुर शब्दु साचु दरगहि परवाणु । सचु कालु (सिर) हुकमु नीशाणु ॥

(१) विशेष करके सर्ब का धारण करनेवाला। (२) रचन हार। (३) सतिगुर शब्द केप्रभाव से रंगीले (अनंत सरूप हो पसरनेवाले प्रेम पुंज सच्चे प्रीतम) भगवंत में रमण करेंगे।

सचा साहिब अलषु अलेषु । घटि घटि वरतै तिसु रूपु न रेषु ॥
जो आया सो निहचउ जाय । नानक एकु सचु रहिआ समाय ॥१५
जैसी जानसि पूजसि तैसो। घटि घटि देखु ज्ञानी ऐसो ॥
क्या जपु क्या तपु क्या ब्रतु पूजो। जब लग ब्रह्म न चीनसि नीको[1] ॥
बिबेक बुद्धि हरि भगति सुहेला। इतु रसि मन मानिआ गुर चेला॥१६
गुर चेले का भया मिलापु । चूका सोगु बिजोगु संतापु ॥
जन्मु मरनु दुख कालु न ब्यापै। संसा भरमु न काल संतापै ॥
निर्मल थानि रहिआ भरपूर। आस अँदेसा सभ दुख दूर ॥
मन बुद्धि जीअ जोति इकु ठायँ । मनु पवना ले सुन्न समाय ॥१७॥
अमरवेलि अंम्रित फलु लागा, कर्म फलु-कहाँ भाई ।
पंडित ज्ञानी सिद्ध साधिको, समझि बतावहिँ राई ॥
तिलु महि तेलु जत्नु कर पाईऐ, जब कोल्हू लठि इक बैला ।
रस महि दृष्टि धरी तउ पावै, इऊँ अंतरिजामी भैला[2] ॥
दूध महि घिरतु काष्ट महि अगनी, बिनु जत्नु बिधी कहाँ पाईऐ ॥
नाना भेष रंग बहुतेरै,[3] नानक नदरि समाईऐ ॥ १८ ॥
राम नामि लिव लागसि छूटै, सभ रस या घट माँही
ब्रह्मा बिश्नु महेश सुदेवा, सो अलषु न लषिआ जाही ॥
केवलु ब्रह्मु न जाई लखनो, सभ माँहि गुप्त निराला ।
एकु अनेकु सर्ब को दाता, सो पूर्नु दीन दिआला ॥
अदृष्ट अगोचर कथनि न कथीऐ, सतिगुर परचे पाईऐ ।
तुरीआ ततु आप कउ चीनै, नानक सहज समाईऐ ॥ १९ ॥
अध्यातमु कर्मु किरतु संमानिआ। अंतरिगति अंतरि बिधि जानिआ
अंतरि बाहरि भिन्न न कोई । सो बूझै जिसु किरपा होई ॥
सो बूझै जो ब्रह्म ज्ञानी । घटि घटि रवि रहिआ निरबानी ॥ २० ॥
जो इस मंदिर का महलु न पावै। सो मरि मरि जन्मै आवै जावै ॥
जितु घटि शब्दु नाँही गुर ज्ञानु । उजड़ थेहु मटूआ[4] माशानु ॥

(१) यथार्थ रीति से, भली प्रकार । (२) सत्य सरूप, पिआरा । (३) अनंत । (४) शमशान भूमि में जैसे मढ़ी उसारी हुई होती है-ऐसे ही ।

ते भ्रमि भूले नरक पचानु ॥
साध संगति बिनु भरमु न नासै । नित्त नित्त भरमति काल ग्रासै ॥२१
जो इस मंदर का महलु पछानै । तषति बहै अदली राजानै ॥
इस ग्रहि मंदर महि हीरे लालु । नानक परखै नदरि निहालु ॥
सची कार धुरहुँ फुरमाई । नानक सचे सच वडिआई ॥ २२ ॥
मान सरोवरि न्हावहिँ गुर ज्ञानी । गुरमुखि बूझीअले अकथु कहानी
संतोष सरोवरि सचु इस्नानु । अठसठ का टीका कर्म नीशानु ॥
मनु निर्मलु सूचा सचु होई नानक इत रसि पुनर्पि[1] जन्म न होई ॥२३
संसा भ्रमु त्यागि त्रिकुटी मिल फूटी, कवलु बिगासे भाई ।
आदि जुगादि अनाहदि लीणा, साची सुरति समाई ॥
केवल गुर ज्ञान रत्न प्रगासिआ पुनर्पि जन्मु न राई ।
निरंकार निज महली वासा नाँ आवै नाँ जाई ॥ २४ ॥
किलविष काटै शरनि परै पारु दीसै भउजल संसारा ।
सतिगुर बोहिथ आदि जुगादी भउजलि पार उतारनिहारा ॥
इकु आवहिँ इकु (चलि चलि) जाही ।
बेद कतेब पुकारहिँ बपुड़े इहु अकथु कथा मन माँही ॥
भउ दुत्तर तारन दुःख निवारन, साचा सिरजनिहारो ।
नानक प्रभ नदरि मुक्ति दरु खूलै, जिसु संगति मुक्ति दुआरो ॥२५॥
सतिगुर का सेवकु इंद्री का जती । हिरदे का मुक्ता जिह्वा ते सती ॥
चंचल चाय न जाय तमाशै । जूए जाय न खेलै पासै ॥
अंतरि ज्ञानु हरि चरन निवासै । सूरज कवल किरणि प्रगासै ॥
सची जोति सचि सहजि बिगासै ॥ २६ ॥
अंतरि साचा नामु निधानु । सदा दैयाल सर्व सोजानु ॥
हिरदै हरि गुन हरि परम निधानु । अज्ञान मारै तउ मिलिआ जानु॥
गुन का गर्बु न कुल का भेदु । नानक सो अमरु कंधु नहीं छेदु ॥२७॥
अस्थिरु मनु मति सहजि घरि रहना । अकथु कथा जम का डंडु न सहना ॥

(१) फिर, दूसरीबार ।

आदि जुगादि रहहु हरि शरना। इतु रसि जानु जरा नहीं मरना॥
ऊची पउड़ी गुरु मति ले चलै । अनंत विचारि चमकि ज्यौं तड़ै ॥२८
जो तिनि कीआ भला करि मानै । हउमैं जाय तं आपु पछानै ॥
बाहरि जाते शब्दु गहि आनै । सर्व निरंतरि अलखु पछानै ॥
आपु पछानि महिलि घरु जानै ॥
शब्दि नादु की सुरति समावै । नानक सुन्न समाधि लगावै ॥२९॥
सर्ब निरंतरि अलखु परधानै । एको एकी ब्रह्म पछानै ॥
देखि बिनोद मन माहि अनंद । गुरमति पाए परमानंदु ॥
गुरज्ञानु प्रायण सतिगुर का पूत । नानक सतिगुर गुर अवधूत॥३०
घटि घटि ब्रह्म सु गुरमुखि जाता । ज्यों जानिआ मनु मानै[1] राता ॥
अगम निगम की जाणै बातां । सोई गुर पूरापुरुष बिधाता ॥
जिन अपुने वशिगति पंच समाए। नानक घटि घटि अलखु सबाए ॥३१॥
मुक्ति तिप्ति नहिँ अन घर जाय । सर्ब निरंतरि तृप्त अघाय ॥
मोह के जाल न फासै कबही । रहै अतीतु शब्दु गुर गहही ॥
हरि हरि सूचा साचु दैयाला । नानक शरनि परे जग जीवनु हरि संत जनां रखवाला ॥
राखै राखनिहारु सुआमी, जिसके जंत्र सबाए ॥
आपे दाना आपे बीना, अलखु न लखना जाए ॥३२॥
हरि ऐसो मीत विसारिकै, क्या नवतन मीतु बिरानु ॥
जमु मारे घत्ति[2] पिँजरै, अंति करै खुलहानु[3] ।
अंति सषाई बीसरै, किसते लीचै दानु ॥
अंति काल पछुतापसी, नामु बिना क्या त्रानु[4] ।
जनमि मरहि फुनि अवतरै, काची मति देह निमानु ॥३३॥
जब धर्मराय तनु पीड़ीअै, वशि कीता जम जंदारि ।
जब हरि लेखा मँगीअै, बहि धरम-लेख वीचारि ॥
कहाँ सु अउसुर मीतु से, सषा बंधपु सुत नारि ॥
जग सिऊं प्रीति सु मिट गई, धंधु थका सिरि कागु ।
जिसु सषमु विसारी नानका, तिसु क्यों थिरु नाह[5] सोहागु ॥३४॥

---

(१) 'मानिआ' पाठ भी है। (२) डालकर। (३) लत=मर्दन; पाइमाल। (४) रक्षक। (५) सच्चा पति।

सागर गहरा गाँदला अगनि बिंब असरालु[1] ।
मनमुख निगुरे बूडीअहि सीस मारे जमकालु ॥
भाय[2] भड़के तितु तनु पर त्रिया संगि रउणु[3] ।
तपति थंम्म गल लाईअहि तहँ संगि न साथी कउण ॥
तहँ आपे बषशे नानका गुरमुखि करणी सारु ।
नानक नामु अराधि तू सचि सवारणहारु ॥३६॥
पूरा सतिगुर जिसु मिलै, सचु बोलै पति परवाणु ।
देखि दर्शनु अउगुण हिरै, आतमरामु पछाणु ॥
अगनि मरै सुखि घरि बसै, अचिंत पुरुष की सेव ।
आत्म जोति निरंजना, आदि अंति गुरदेव ॥
से सूरा पूरा शब्दि गुरु, अकथु कथै बीचारि ।
नानक दरि सचै सचिआर सो हउमैं अगनि निवारि ॥३७॥
जो जन्मै सो जाय मरि जो आवै सो जाय ।
किसके कहीअहि घरि मंदर, हउमैं संगि काल बलाय ॥
तिष्णा तामसु लालची जासी मूलु गवाइ ।
तनु धनु साथि न चलसी राज रूप सभ छाइ[4] ।
कालु कड़कै शिरि खड़ा, जरु जीते जोबनु हारि ॥।
नानक गुरु बिनु बिगुचीए[5] सो मुक्ति नहीं कुआरि[6] ॥३८॥
गरभि संघारे कालु बलु अफरिउ[7] कालु असरालु ।
कालु संहारै मुनिवरा कितु पया शिरि कालु ॥
कालु कड़कै शिरि खड़ा ज्योँ पंखी सीचानु[8] ॥
कालु संघारै अंति कालि हुकमि सचै नीशानु ॥
सतिगुर कालु लिखिआ शिरि लेखु ।
आपि अकालु नानक सचु एकु ॥ ३९ ॥
सो अबिनाशी भरपुर रहिआ ताका अंतु न पारो ।
साहिब सेवहि संत भगत जन तिन राखै प्रान अधारो ॥

---

(१) भयानक, (संसार नामक भयानक जीव का नाम भी) है। (२) अगनी प्रचंड। (३) पर स्त्रियों से जो रमन करते हैँ। (४) छाया (पर छाया) जैसे धूप की (नाशवंत) होती है। (५) घाटे, तोटे को ही प्राप्त होईता है। (६) पे झूठे। (७) हंकारी। (८) बाज़पची।

त्रिभवनु जीअ काल वशि कीने सासि गिरासि कमाई ।
जो आया सो जाय स्वेरै उठि चलना हुकमु रजाई ॥
सभ सैँ ऊपरि कालु सिआणा जगु बउरा नाम दुराई ।
जो अकालु बषशे जन अपने इकु तिलु पलु सचु वडिआई ॥४०॥
कोई फरू[१] नही काल कराले, थाके कर्मि कमाई ।
कंटक काल सिर ऊपरि ठाँढा, सभ काले नाथि चलाई ॥
नाँ को काले मीत पिआरा, ना काले (को) वैराई ।
अंतिकाल बलु हिरै न छोडै, सिध साधिक बुद्धि काई ॥
अपना कीआ कमावहि बपुरे, जैसी पुरबि कमाई ॥
बलु छलु करि लैजाय न छोडै, निर्भउ कालु सबाई ॥ ४१ ॥
कालु अहेरी[२] जीअ न छोडै, जलि थलि महीअलि सारे ।
अष्ट दिशा चहुँ कुंड न छोडै, सुर्ग मिरतु पइआले ॥
गण गंधर्ब मुनि काल ग्रासे, देवी देव सबाया ।
मुनिवर जोध सभ काल संघारै, जति जोगी जोगु कमाया ॥
जो सतिगुर शरनि परहि सतसंगति, हरि हिरदै अलषु ध्याना ॥
नानक राखि लेहु जन अपने, जहाँ गुर बचनी मनु माना ॥४२॥
गरभ संघारै काल बलु ऐसा, बालु बिनोद न शंक करै ।
भरि जोबनु तिसु कालु न छोडै, वृद्ध अवस्था दृष्टि करै ॥
जप तप किंतु न छोडै प्रानी, जो जुग केते जाँही ।
एह जरु जरवाना काल के, कुतरे रोग करहि तनु हीना ।
नानक शरनि परै हरि गुर की, हरि साध संगति रसु पीना ॥४३॥
कालु जीअन को पारधी[३] हुकमि लिखे नीशानु ।
भ्रमु पाखंडु काल न छोडई, बिनु हरि भगति क्या तानु ॥
लबि लोभ लै जाय रसातलि, भूले चोटाँ खाई ।
काम क्रोधि तनु भसमु सबाया, अंतवार पछुताई ॥

(१) पकड़नेवाला (बराबरी करनेवाला) । (२) शिकारी । (३) धीमर (जाल में फंसानेवाला) ।

पाप पुन्न ब्योहार सु करनो, दे दे लैनो साई ।
नानक भगति रते बैरागी, हरि साध संगति बुद्धि पाई ॥ ४४ ॥
सभ से उपरि कालु सिआणा । लिखिआ लेखु धुरे परवाणा ॥
सचे हुकमि कालु संघारे । मनमुखि निगुरे सीसि जमु मारे ॥
पिंड पड़े जीउ लैसी (आ) सिरि कालु कड़के आय ।
नानक सचे नामु बिनु जमपुरि बांधा जाय ॥ ४५ ॥
नवतन कालु शिरि सदा कड़के । ज्यौं निशि दामनि बिजुली चमके ॥
ज्योँ सिरि घणु[1] मारे लोहारु । ज्योँ गईअरि[2] अंकुश सिरि भार ॥
ज्योँ अनदिनु अगनि भषे दिनुराति । त्यों नामु बिना सुखु नाही शांति ॥४६॥
शिरि जमु कंकर मारे कालु । बिन गुरि आप गया बेहालु ॥
बिनु गुर जम की पावै पालि[3] । विनगुर डूबैगो असरालि ॥
बिनु गुर अत्ती[4] अरु महा अतिताई[5] । नानक गुर विनु नरकि पचाई ॥ ४७
बिन गुर अत्ती अरु तपति बहु ताता । जलतु फिरे माया मदि माता
परग्रिह जाय नरकि विस्रामी[6] । विषु भोगै[7] हरि विसरतु सुआमी॥
चुभहिँ पगि जमु सूल संघारा[8] । तह जमु मारगु पंथ करारा ॥४८
तहँ नाँ को सषा संगि साहाई । तहँ तप्र थंम्म गलि लागहिँ भाई॥
महाँ अगनि महि तहिँ तू जलै । तह सिरि जमु कंकरु अटलु न टलै ॥
सचे न्यायं बहै धरम राय । नानक तहँ आपे बषशे हुकमि रजाइ ॥४९।
जत्न करहि जीवन धन संतत कउ, जुगत जीअ की जाणै सोइ ।
ताँकी कीमति कहणु न जाई अैसा संम्रथ नाही कोइ ॥
जो अस्थिर सभ चलणहारी करि करि वेखै आपे सोई ।
आवागवनु कीआ तिसु भाया फुनि दूजा हुकमु न होई ॥

---

(१) अहिरण। (२) हस्ती । (३) "धाड़"–पाठांतर प्रंतु पाल नाम धाड़ का है और धाड़ नाम डाके का । (४) अत्त (जुलमी) उठाने वाला। (५) १–अगनी लगाने वाला २–नँगा शस्त्रलेकर जो मारने आवे। ३–स्त्री हरने वाला ४–धरतो (खेती) हरने वाला ५–विष देने वाला ६–धन हरने वाला जो इन छः अपकर्मों को करे वोह अत्तित्ताई होता है–भाव (हत्यारा) जिसको बारंबार ऐसा करते रहिने का स्वभाव ही पड़गया हो। अथवा सर्व प्रकार करके निर्बलोँ तथा संतोँ साथ अत्याचार करने वाला हो वोह महाँ अत्तताई है। "संत का दोषी महाँ अत्तिताई" इस में पंचम गुरू साहब का बचन प्रमाण है । (६) निवास करने वाला । (७) विषय भोग । (८) मारा ।

सो साधू जिस अलखु निवासी आदि अंत सषाई ।
नानक साध संगति गुर बचनी हरि राम नामु लिवलाई ॥ ५० ॥
जिसु गुरमुखि हिरदे सचा नाऊँ। सो तषत निवासी महलीथाऊँ॥
कालु जालु तसु हुकमे कीने। सिरि सिरि जीआ सुख दुख दीने ॥
जेते जीअ तेते सभ तोही । नानक सर्बते ऊपरि ओही ॥ ५१ ॥
तनु धनु नाँही आपनो, अवराँ क्या कहीअै ।
जिसका है सो तिस का गुर की मति लहीअै ॥
सतिगुर कौ पूछि करहु वीचारु । सर्बे उपरि एकंकारु॥
जिसका जगतु त्रिभवणु आकारा। आपे शाहु आपे वणजारा ॥५२॥
आपे रतनु ज्वेहर लालु । आपे माणकु मोती सालु[1] ॥
आपे गउहरु[2] आपे हीरा। आपे परखि विसाहे हीरा ॥
आपे राजनु आपु वजीरा ॥
आपे तषति दुलीचे पाउ । नानक सचे सच पसाउ[3] ॥ ५३ ॥
आपे शाहु सराफु अपारु । आपे वणजु करे वापारु ॥
आपे पूरा तोले तोलु । आपि अतोलु अडोलु अमोलु ॥
आपे सचा परमानंदु । नानक सचा सदा बषशिंदु ॥ ५४ ॥
आपे रत्नु ज्वेहरु कीना । आपे परखे आपि कसि[4] लीना ॥
आपे देवे आपे लेइ । आपे कीमति नदरि करेइ ॥
आपि अतीतु हुकमि टकसाल । नानक नदरी नदरि निहाल ॥
नदरि निहाल रहे लिव लाय । अवगतु नाथु न लखनो जाय ॥५५॥
उत्तम जन संगति उत्तम गुरु ज्ञान। उत्तम गुण गावै दरगह परवाणु॥
जे तिस भावे सतिसंगु मिलावै । सोई करे जि सचे भावै ॥
जो तिनि कीआ त्रिभवणि परवाणु। नानक समझ रहे मिहमाणु॥५६॥
तिसु मुक्ति प्राप्ति लहे निधानु । सो जन्मु सकार्थु भगति नीसानु ॥
जैसा है तैसाही रचे । आकुल चीने काल ते बचे ॥
रहे अतीत कलपति बिषु[5] तयागे। नानक तितु घटि जमदूत न लागे५७

(१) घोंगा जो कौड़ी के आकार का होता है। (२) मोती। (३) पसारा, प्रसन्नता। (४) परीक्षा करना, कसवटी पर घिसना। (५) मिथ्या विषयभोग, कल्पनामात्र, ।

इहु मनु मैगलु शब्दि वशि कीता। गुरमुखि बोलहि सचु पवीता ॥
गुर के शब्दि कायां गढ़ जीता। आपु कउ चीनहि पूरे गुरु मीता॥
अंम्रितु नामु महाँ रसु पीता। नानक जुग जुग अमरु अतीता ॥५८॥
नर्मल पाधरु[१] सतिगुर मति पावहि।सतिगुर सेवि शब्दि सामावहिँ ॥
सचा शब्दु नदरि सचि रक्षण। गुर ज्ञान पदार्थु ततु बिचक्षणु ॥
नानक साध गुरू एहु लक्षणु ॥५९॥
घटि घटि मुक्ता मुक्ति दुआरु। उरवारि पारि जिस की सिरिकारि॥
बूझहु गुर ज्ञानी करहु बीचारु। सबै ऊपरि करनैहारु ॥
शब्दि अनाहद जोति अतीता। नानक जुगु जुगु रंगि रंगीता॥६०
ज्यौं जल ऊपरि कमल निरारे। त्यौं साधू जग ऊपरि वीचारे ॥
जल कवलै का देखि सनेहु। बिन जल कवल न उपजै एहु ॥
जहाँ जल सरोवर कवल सरूप। त्यौंनानक जुग जुग आदि अनूप ॥
चात्रिक मीन जैसी जल प्रीति। नानक सो प्रभ अहिनिश चीत ॥६१
सरवर महि हंस मोती चुन खाहि। सतिगुर मतिज्ञानी अंम्रित अथाहि ॥
बगुला काग नहीं उह देश। शूकर सुआन साक्त नर पशू भेसि ॥
ज्यौं सर्पनि काटा लहरि ले काई। नानक ते बेमुखी जहाँ भगति न भाई ॥६२
ते बेमुख उरवारि न पारि। गुर दरश न पाया सचि वीचारि ॥
शब्दु न साखी सची नही प्रीति। जमपुरि जाँहि दुखाँ की रीति॥
कऊए कूकर शूकर गधूए। सरप स्याल क्रिम विष्टा मधूए ॥६३॥
त्रिश्ना बाँधे मरहि सभ दूखा।ओहु मिटहि न भावी सहहै दुख भूखा॥
सतिगुर मिलै त इहु रस भाए। साध संगति मिलि इहु रस पाए ॥
दर्शन देखि रहै हैरान। अमर पदार्थु भगतु नीशानु ॥
नानक कहै स्रिष्टि करता सोइ। जिसका कीआ त्रिभवण लोइ ॥६४
जिसु गुर प्रसादी इहु मन द्रवै। उह पर घर भिक्षा काहे भवै[२] ॥
जिस अंतरि नवनिध भगति भंडार। ओह सभ हीका दाता देवणहार॥
सति संगत मिलिआ सो परवाणु। नानक सो दरगह पावै माणु ॥६५
अठसठ तीरथ का इस्नान। जो दर्शन पाए सो परधान ॥

---

(१) मार्ग। (२) क्यों भ्रमण करेगा।

अकल्प तरोवर[1] पूरा भगवान। निरभउ मन केवल पतपरवाण ॥
सुफल्यो वृक्ष अंम्रित फल लागे। नानक नाम रते वड भागे ॥६६
सर्ब जीआँ पालै शरनाई। दया पति दाता अंत सषाई ॥
प्रान पुरुष पुरुषोतम हे। दँदे तोट न कबहूँ से ॥
सो दरु घरु राखै जिसु सचु पिआरु। नानक पूरा तिस भंडार ॥६७
मनु मानिआ निर्भउ घरि बासु। सचु शब्दि सुखि सहजि[2] निवासु॥
ऊचो गढ़ अपरंपर थाउ। अमर अजोनी सचि तषत पाउ ॥
नानक सचे सचु समाउ ॥ ६८ ॥
शिषा सरोवर[3] अंम्रित सर भरिआ। से पीवहिँ संत भगत जन तरिआ॥
अंजनु सारु निरंजनु पाया। सो आसा माहि निरासु दिखाया॥
जन्म मरन का गवन मिटाया। नानक जिनि पूरा दर्शनु पाया ॥६९॥
सतिगुर पूरे दीक्षा दीनी। शब्दि गुरू अंम्रितु बिधि चीनी ॥
सचु जोगु बैरागी जोगी। भगतु ज्ञानी कायाँ रस भोगी ॥
घट मटके महि जीवतु मूआ। नानक सो जन अस्थिर हूआ ॥७०
अकल्प बिरख की पूरी मत्ति। नानक सच घर बहै तषत्त ॥
तुरीआ तत्तु पाए सुर ज्ञाना। सभ दुःख मिटाए भगति षजाना ॥
अस्थावर जंगम कीट पतंगा। नानक भेष नाना इक रंगा ॥७१
हीरा रत्न ज्वेहर लाल। मनु मोती तिसका है साल ॥
हिरदै हरि गउहर लाल गुलालु। अनहद राता सदा निहालु ॥
सची जोति रही भरपूर। निध गुण गाए देख हदूर ॥ ७२ ॥
आदि जुगादी साचा सोइ। तिसकी कीमति कहै न कोइ ॥
सतिगुर बाझहु[4] परख न होय।
आपे परखै बूझै लेइ। नानक सो आपे नदरि करेइ ॥ ७३ ॥
पाखंड करै न लोक दिखावै। अंतर जोत तितै लिव लावै ॥
गंधण[5] वैण नही पतिआवै[6]। अंतरि ज्ञान तितै आघावै ॥
अंतर बाहर अलष लषाए। नानक जोती जोत मिलाए ॥ ७४ ॥

---

(१) वृक्ष। (२) "महलि" पाठांतर—अर्थ ब्रह्म रंध्र, जो कि भाव सुन्न सरोवर से है। (३) क्षमा सरोवर पाठ भी है। (४) बिना। (५) मलीन बाणी (वासना ग्रसित जप पाठ आदि से) भाव है। (६) प्रतीति नहीं आवे।

जाग्रत अवस्था गुर शब्द सुहेला । सर्ब त्यागि गुर संगति मेला ॥
दुरमति जे। बूझहि मिलण दुहेला ।
अबगत नाथ करै सो होय । सर्ब जीआ का दाता सोइ ॥
ज्यौं जोहड़ पानी सरताल । नानक मुक्ते नदर निहाल ॥ ७५ ॥
सतिगुर सेवहि परम पद पावहि । साध संगति महि सहजि समावहि
अस्थिर घरि वसै न आवै जावै ।
अवगत नाथ निरंजन एकै । नानक बूझहु गुर ज्ञान बिबेकै ॥ ७६ ॥

इति श्री सुसंबेद प्राण संगली श्री गुर ग्रंथे परमतत्व ध्यान वरननं नाम षोड़शमों ध्याउ संपूर्ण ॥ १६ ॥

॥ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

अध्याय १७

॥ कलावती बाणी सुसंबेद ॥

॥ राग सूही महला १—श्लोक ॥

जोबन बाल बृद्ध अवस्ता[१] । जोबन हारिआ जरूआ[२] जित्ता ॥
जम ग्रिास्या पलक पलत्ता[३] । खंनिअहु[४] तिक्खी पुरस्लात करड़ाता ॥
जम मार्ग मुत्ता[५] गर्भ रहत्ता । बाल बिवस्था शोभा सम्पत्ता[६] ॥
नानक भ्रम भूला जन्म अबिर्था[७] ॥

॥ पउड़ी ॥

भ्रमि भूले जन्म तैं खोयो, इह अवसर चढ़ै न हाथ ।
कवडी बदले खोया, लाल अमोलक आथ[८] ॥
ग्रिह कुटंब महि पलचिआ[९], मोह मिथन[१०] दुर्गंध ।
माया कामु व्यापिआ, नहि बूझै मानुष अंध ॥

---

(१) अवस्था । (२) बृद्धावस्था । (३) परचा हुआ, वा पलटा-भाव संसार में परचे हुए जीव को जम ने जब पल भर में ही पकड़ लिया । अथवा जब जम ने पकड़ लिया तो पलकें पलट जाएंगी अर्थात् संसार की ओर देखना नहीं मिलेगा । (४) खड़ग से भी तीक्ष्ण पुरस्लात (परलोक के कठिन मार्ग) से गुज़रना पड़ेगा । (५) मोहिआ, ठगा हुआ, घबराया हुआ । (६) संपन्न, संयुक्त अथवा बाल अवस्था की शोभा बृक्ष के पत्र वत झड़ जाने वाली नाशवंत है । (७) व्यर्थ, अकार्थ । (८) माया (धन) । (९) परचिआ, उरझा । (१०) मिलाप, संयोग ।

खड़[1] पक्की कुड़ भज्जै बिनसै, जर जित्तै जोबन हारु ।
नानक सच्चै नाम बिन किन बिध उतरै पारु ॥ १ ॥

राम नामु जप मूढ़े अंधु ।
भ्रमि भ्रमि जोनि भेष बहु कीने राम भगति छूटै जम फंधु॥१॥ रहाउ॥
पर घरि जाय न घरि बसै मद काम लोभ की तात ।
दिनस माया पर दर्ब हिरै पर घरि चितवै राति ॥
लाज नाहि कुल लोक की भउ नाँही मनु अपमानु ।
सतिगुर साध न रसु मिलिओ भ्रम मुठा गर्ब गुमानु ॥
पान फूल रस मास मद भोगै भोग अनीति ।
घर मंदर महली बसै जरु जरूआ[2] नही चीत ॥
सेज सुखाली सुख सवैँ कामनि सिउँ प्रीति लगाय ।
अंति दुखाली दुख सहै जमपुर चोटाँ खाय ॥ २ ॥
मन हठि कबही न चेतही सहहि सजाईं भारु ।
थम्माँ के गलि लगाईअहि सिर पर अगनि अँगारु ।
जित पंथी लगा सु सेवकी उत पंथ[3] चलाईअहि मीत ।
पिछै जमु मारै कुठार सा समैाँ नही तुझ चीत ॥
करैँ हवाँई[4] बिगसि मनु खासैँ[5] अंति सजाय ।
नानक अपने कीए कउ अंति रसातल जाय ॥ ३ ॥
दूताँ भय हरि बीसरै सहहिँ जमडंड सजाय ।
गाफल भूला दुर्मती कतही न हरि गुण गाउ ।
जोबन माता न सुख सवैँ जिस हिरदै नाही नाउ ॥
हरि भगति हेत नहि पाईऔ नही साधू गुर संग ।
नानक सच्चे नाम बिन मन तन मैला भंग[6] ॥ ४ ॥

---

(१) पकी हुई खेती खड़ नाम (ग्रहि में) ले जाकर (संभाल लो) नहीं तो कुड़क कर अर्थात् तिड़क (कुबड़ी हो) कर टूटती हुई विनाश को प्राप्त होवेगी भाव यौवन अवस्था में निज ग्रहि रूप भगवंत के दरबार में अपनी सुरत को चढ़ाकर ले चलो, नहीं तो बृद्धावस्था के आए नीच योनियाँ की प्राप्ती रूप विनाश को प्राप्त हो जावोगे । (२) ज़ोरावर (ज़ालम) बृद्धावस्था । (३) इसी मार्ग । (४) कामना, ख़्वाहशां । (५) खावेंगा, पावेंगा । (६) " रंग " पाठ भी है ।

दर्ब स्नेही भूप[1] ज्यौं बिन दुख सुख नाहिन-राम ।
सुंदर नारी सोहणी अति ततकारी[2] काम ॥
तितु जम पंथ चलाईअहि जहँ महाँ तप्त बहु घाम ।
तप्त कड़ाहै ताईअहि जिन मन्मुखि नाही राम ।
किर्तु न मेटिआ जायसी जो कर्म लिखिआ नीसानु ॥
जहाँ जमु पंथ डरावना तहाँ मन जाणा तोहि ।
इथै नामु विसारिआ लीआ मोहनी मोहि ॥
क्यौंकरि कालहुँ बंचसी क्योँकरि जम ते छूट ।
सहै सजाईं मूढ़ मन पढ़ै वदाणी[3] कूट ॥
जैसा करहि तैसा सहहि अवरु न राखणहार ।
अपणी करणी पै पचिआ साक्त मुग्ध गवार ॥ ६ ॥
कुंभी नरक तहिँ सुनींदा मनु तहीं निवासा होगु ।
तैं रखणहार न चेतिआ हित माया रस भोगु ॥
इन माया ममता मोहिआ जपन न देई नाम ।
हक्कु हलालु न जाणिआ खाया रज्ज हराम ॥
शराअ स्रायति न जान्यो तहाँ तरीकत नाँहि ।
बिन मन सोधे नानका घोर नरक महिँ पाहि ॥ ७ ॥
तिनाँ मिहर मुहब्बत्त नाहि मनि हर्ष सोग बिललाँहि ।
भाउ दया मनि तिलु नही बाँधे दुःख सहाँहि ॥
ऐसा संम्रथ को नही जो मेटे एहु उपाध ।
पूरा सतिगुर जब मिलै मेटै सगल व्याध ॥
साक्त गुरू न जानिआ बिन गुर दुख सहंत ।
लख चौरासी भरमि भ्रमि साक्त नरक डुबंत ॥ ८ ॥
लख चौरासी नाँ भवै सतिगुर की मति लेइ ।
सतिगुर का शब्द जिस मनि बसै जो अरपि संत मनु देइ ॥

(१) जो द्रव्य के साथ प्रीति करने वाला हो यदि वुह राजा भी हो तो दुःख बिना उसे कुछ भी सुख प्राप्त नहीं होता (एक गुरों की प्राप्ती बिना) राम सुख तो उसे होना ही क्या है। (२) संताप-कारी। (३) जैसे लोहार के वदान की-चोट पर चोट-अहिरण पर पड़ती हैं तैसे ही हे मूढ़ मन तुझ पर भी सज़ा (मार) पड़ेगी, जो कि सहनी पड़ेगी।

आवन जाना तिहँ-मिटै हरि कीरति मनु बेध ।
दु:ख निवारण मनु बसै होत न जम की खेध[१] ॥
बिनु मनु बेधे स्याम[२] सिऊँ अवर कीरति सभ बाद ॥
नानक मनि तनि सोऊ बसै जो पूर रहिआ अंति आदि ॥ ९ ॥
ते मुख खरे सुहावने जिन मुख हरि हरि राचु ।
तिन शोभा नहीं गनी जाय जो मनु राम रचे साचु ॥
कूड़ कपट तिन त्यागिआ साचु लीआ मनु पोय ।
सप्त दीप नव खंड महि तिस जन उस्तति होय ॥
शिव शंकर नारद ब्यास तिसु आगै डंडउत ।
जो जन राता प्रेम पद तिनकी इह अमरउत[३] ॥
प्रिअ अपने सिऊँ रचि रहै तिन महमा गनी न जाय ।
नानक सेवक संत संगि रहै प्रेम लिव लाय ॥ १० ॥
मूढ़े भरमि न छुटीए बिन सतगुर की टेक ।
बिनु नावैं पै लूटीअै जम मारै तिस फेट[४] ॥
साध संगति मनु थिर रहै सतिगुर शबद बबेक ।
उझड़ि भूला मारीअै क्रितु पया सिरकालु ॥
क्योँ भउजल पार उतारीए महाँ बिषम असराल[५] ॥
कुंभी नरकि पचाईअै सिर पर झमकै काल ।
नानक शरन अपार की गुर कै शब्द निहाल ॥ ११ ॥
गुरज्ञान ध्यान मनु बीसरै कनक कामिनी हेत ।
असु गज देखे बहु घने पायकु रथु अनेक ॥
सोनाँ रूपा दर्ब बहु आने चलत अनीत ।
ज्यौँ मखी मीठे पचि खपै मनु तनु झूठी रीति ॥

---

(१) खेद । (२) त्रैदल, तीसरा तिल, शिवनेत्र, अकाश का बीजतत्त्व, जिसे नुक्ता स्वैदा या Eastern star भी कहते हैं। (३) हाकमी, सरकार । (४) धक्का, वंगार फंसाकर, क़ाबू पाकर । (५) भयानक, संसार ।

कूकर असीआ[१] ज्यौं गलै निकसै फाटो भीति ।
सेज सुखाली सोहिआ अवरु कामिनी हीत ॥
इन बिधि सो प्रभु बीसरै जगु खेलै जूआ रीत ॥ १२ ॥
गढ़ मंडप अरु मोहणी ऊचे गगन गहीर[२] ।
तषत दुलीचे[३] अति भले नेब[४] ष्वास वजीर ॥
दल लशकर तिस अगले बहु दिसन भाई बीरु ।
पुत्र घने पोत्रे बहुत अरु दिसै सपरवार ।
तित मगि नहि साथी सषा को अंतिकाल सहु मार ॥
ज्यौं दीपक मंदिर महि धरे सभ चानण मंदिर माहि ।
ले पवन झकोलै ऊडरै अंधु धंधु घटि ताँहि ॥ १३ ॥
मेरी मेरी सभ को कहै किछु लदि न चलिओ कोय ।
इन माया जगु मोहिआ आय जाय दुख रोय ॥
म्रित मंडलि ग्रिह मंडपा तनु धनु देखि भुलाहि ।
कोऊ बिरला घरि चीनै नानका गुरमति सहज सुभाइ ॥
हउँ हउँ करता आया हउँमैं करता जाइ ।
राम नामु धनु वीसरै उर उरझि मुआ पछुताइ ॥ १४ ॥
ओह अपतपशू[५] अज्ञान मति पति गति नहि आचारु ।
तैसो जैसी कामनी सेव भगति बिनु छारु ॥
घर दर नदरि न आवई नाँ उरवारु न पारु ।
नाँ गुर शब्द न भेदीऐ क्यौं सोहै गुर दुआरु ॥
बिनु पउड़ी गढ़ि क्यौं चढ़ै कंचन कोटरसाल ।
गुर पउड़ी सचु पाईऐ नानक नदरि निहाल ॥ १५ ॥
मन्मुख पापी पच मरै दर सचै कुपरवाणु ।
जमु कंकर मारै सिर खड़ा किछु चलै नाही ताणु[६] ॥
पुरुष नारि बेमुख खपै जो कूड़ बोल मल खात ।
जिन पूरा सतिगुर न सेविआ सेजाय रसातल आत ॥

(१) हाँडी का गलावाँ । (२) गंभीर (३) गद्दी, मसनद, गलीचा, गुद्दड़, शुचआसन । (४) नायब अमीर; चोबदार, चँवर बरदार । (५) नाक़द्रा पशू, नाकारा समझ कर त्यागा हुआ ढ़ोर, पशू । (६) सामर्थ, ताक़त, बल ।

बिष[१] खावै बिष ओढ़नो बिष पीवहि मिठी सुआइ[२] ।
हुकम भया सभ छोडना अंतकाल पछताइ ॥ १६ ॥
साक्त मुग्ध अजान मति सुरति शब्द नहीं जान ।
भाउ सुभाउ न जाणई बधक कर्म कमान ॥
हरि जसु कंने न सुणे जो अंति छडाए सोय ।
जम की फाही प्रै फसी[३] क्यौं कार छूटन होय ॥
उलझि परे उलझाउ महि छूटन कवन बीचार ।
तिन होवति ख्वारी बहुति अंत धर्मराय के दुआर ॥
सिरखुर[४] पाटी तिनाँ पति ते नर षाक रले ।
नानक पूरे गुरू बिन साक्त गरभ गले ॥ १७ ॥
बिनु जग आपु गवाया से मूए अपने पाप ।
अनिक बार जन्महि मरहि उपजहि थाप उथापु ॥
तिँह वारी टिकन न आवई लख चौरासी माहि ।
आवन जाना नाँ मिटै पया जमानै[५] राहि ॥
अस्थिति कबहुँ न पाईअहि निश दिन डोलत नीत ।
नानक पूरे गुरू बिन क्योँ थिर रहीअै मीत ॥ १८ ॥
हरि ते बेमुख ते फिरहि जिन अंत बनैगी भीड़ ।
लहहिँ सजाई अनगिणति ज्यौँ तेली तिलु पीड़ ॥
कोलू बिच गंडीर[६] ज्योँ एहु तन एवैँ होय ।
साक्त महल न पावई अंत लहै दुख रोय ॥
अब पछुताने होइ क्या तुम अउसर खोय अजान ।
नानक पूरे गुरू बिनु साक्त मूए निदान ॥ १९ ॥
साक्त नामु बिसारिआ दूजे लगी तारु ।
जब जम कंकर मारसी तब कै पहि करऊ पुकारु ॥

(१) बिषय रूपी कड़वी विष। (२) "माई" पाठ भी है। (३) जम की फासी (जब) पड़ेगी तो फंसे हुए का कैसे छूटना होगा। (४) सिर से लेकर पांव प्रयंत तिनकी पति (प्रतिष्ठा, इज़्ज़त) उतारी जाती है। भाव बड़ी दुर्दशा होकर घुह धूड़ी में मिलाये जाते हैं। बार बार जन्म मरण द्वारे मरदन किये जाते हैं। (५) यम के मार्ग में पड़ा हुआ, यमदूतों का वशवर्ती हुआ। (६) कमाद का गन्ना।

कीआ सहँगा आपना को न छुडावै आय ।
आगै हटक न को करै गहि जमकंकर लै जाय ॥
मित्त न कोई कर सकिआ पारब्रह्म का संत ।
नानक साक्त मूढ कोइ जम ते पकड़ि न रखंत ॥ २० ॥
इसु मनु को जम ते रखै तिस कउ इहु मनु देहु ।
इत उत तिनका अमर है तिन जन दिक्षा लेहु ॥
तिना चरनाँ ऊपरि सीस धरि अठसठ तिन संग आहि ।
तिन चरनन का दास होहु जो पूरे कल माहि ॥
तिन आगै आप बिचाय तू जन्म सुफलु तिना होइ ।
नानक साक्त तउ छुटै जब जन का सेवक होइ ॥ २१ ॥
जमपुर बाँधा मारीअै मनहु कुशुद्ध सिर मार ।
बिन गुर नरक पचाईअहि मुक्ति नाहि कूड़िआर ॥
चशमे[1] कढे अवगुणी निंदा की सिर पोट ।
लब लोभ बुरिआईआँ सिर मारे जम चोट ॥
नित निंदा झूठी करै मुँह कूड़ बोल पत जाय ।
सतिगुर की सेव न कर सके ना हरि भगति सुभाय ॥
से जाहि रसातल नरक कुंडि जम बाँधा काल बिहालु ।
साक्त भरमु हराया कौडी बदलै लालु ॥ २२ ॥
जीवन धन संतति की आस मन कीनी, हरि गुण मनहु विसार ॥
रस भोग करै सुख चीतवै भर जोबन[2] बहि नार ॥
सेज सुखाली मोहिआ कामण हेत पिआर ॥
इह द्रिढ़ निहचै करि मानिआ संचै माया दानु[3] ।
मिटै न पुर्ब कमाया मिटै न आवन जानु ॥
पंच चोर तिस घर मुसहिँ हऊमैँ मनु अपमानु ।
काल दिसै जिस सिर खड़ा जिस बशि जीउ परांनु ॥

---

(१) आंखें। (२) पूर्ण यौबना स्त्री के साथ बैठकरि। (३) दान ले ले कर माया को संग्रह करता है निश्चय करि यही सत्य मान रखी है। दाम–पाठ हो तो माया अर्थात मिथ्या धनको ही संचे करना द्रिढ़ निश्चे कर रखा है (अैसे भाव समझना)।

जर जरूआ जम सिर रखिआ एव[1] घटै सुख केव ।
नानक इत रस छुटीअै जाँ पाईअै सतिगुर सेव ॥ २३ ॥
मन्मुख मोहु व्यापिआ उठसि नाहि बैराग ।
मोह माया की प्रीति अति सभा कालुष दाग ॥
दाग दोष मुख लायकै अवसर चलिआ रोय ।
जम मारग पंथु डरायणा संग न साथी कोय ॥
सागर गहरा अति घना-सूर तपे सिरभालु[2] ॥
मन्मुख दभै बोड़ीअै काम क्रोध बिक्रालु ॥ २४ ॥
बिष अगनी तन पीड़ीअै परत्रिया परधन मोहि ।
पर निंदा जीउ चितवै माया लावै धोहि ॥
जन्म पदार्थु खोया दूजे हेत पिआरु ।
काले हूँ धवले भए कायाँ डोली भारु ॥
आवत क्या ले आया जावत क्या लै जाय ।
बिन हरि भगति न छुट्टसी समभ देखु मन माहि ॥ २५ ॥
बिरध भया तन कंपिआ हीनी देहि सिर रोगु ।
खड़ पक्की झुरि-झरि जायसी सहसा सोग विजोगु ॥
चरन गिरे कर कंपिआ बिनु हरि नामु न धीरु ।
सिधा[3] वैणु न निकलै नेत्र धुंदले नीरु ॥
कंन्नीं बैन न सुणीदा रहै पराकउताण[4] ।
हथ डंगोरी पग खिसहि डोली देहि नीमाणु ॥ २६ ॥
जनका सेवक तब होवै जब पूर्ब पवै लिलार ।
लिलाट लिखे बिन क्यौं मिलै जो करै उपाउ हजार ॥
जिनके मस्तकि लिखिआ लेख तेई सहजि मिले ।
तिन आवन जाना सभ मिटै फिर मात न गर्भ गले ॥

---

(१) इसी प्रकार ही क्षीण होता रहता है। अथ्वा आयू घटती रहती है सुख किस प्रकार से होवे। (२) प्रातःकाल, स्वेर, धूप। सिर पर सूर्ज तप रहा है (दिन चढ़ आया है) भाव म्रित्यू निकट आगई है। (३) सपष्ट, सीधा बचन। (४) दूसरे के ताण (सहारे) पर रहे। अत्यंत असमर्थ वृद्ध, जिसकी क्रिया आप कर निर्बाह ना हो सके।

तिन रखवाला आप होत जो सिमरहि नामु पिआरु ।
नानक तिनकी धूर बाँछ उतरै भउजल पार ॥ २७ ॥
भउजल ते जो परे पार हरि रसु मन क्रम पीउ ।
मन शितलाई सुख घना शांति परी हम जीउ ॥
दुख के फाहे सकल काटि सुख की साखी चीन ।
संतां पहि आपु बिचायकै अनत सूख मनु लीन ॥
जो जन हरि के हो रहे हरि तिनही के नालि ॥
नानक पसरी ब्रह्म जोति बिनसी भ्रम की पालि[१] ॥ २८ ॥
बिनस गई जिस भरम भीति ब्रह्म प्रगास भया ।
दुबिधा दुर्मति छुट गई अंम्रित सहज पीआ ॥
अंम्रित त्रिप्त अघाया बिष्या त्यागी दूर ।
जीवत मुए हरि सिऊँ मिले रहते सदा हजूर ॥
साक्त मनि हरि सिमरनु नही माया व्यापक कोन ।
नानक साक्त जम दुआर सहहिँ सजाय अधीन ॥ २९ ॥
साक्त कै मनि नही बिगास मन के सदा गुबार ।
तिन हरि सिमरन नहीं भावई नाँ सत्संग पिआर ॥
आठ पहर निंदा रचहि उस्तति त्यागी दूर ।
साक्त निंदा संत की अंत मरहिँगे क्रूर ॥
साक्त कै मुख लागिआँ चढ़ै अतोलवाँ भार ।
नानक निंदक साध कै जलै अगनि की धार ॥ ३० ॥
साक्त जलबल होइ सुआह टिकन न पावैं ठउर ।
चउरासीआ ही भरमता अहिनिश उडत उडार ॥
ज्योँ फंभट[२] दीपक महि पचै इऊँ निंदक निंदा माँहि ।
नानक साक्त न बुझहिँ भूले मार्ग जाँहि ॥ ३१ ॥
ज्ञानु ध्यानु जप तप नही सत्संगति नाहिँ परतीति ।
नामु दानु हरि हरि नही सुकी सड़ी मसीति ॥

(१) पंक्ति, जंजीर, बंधन, बेड़ी । (२) मच्छर, पतंगा, परवाना ।

कागद ज्यों बूँदा परी काचो गागर भीत ।
पूत[१] मात सुत[२] बंधपा जग सिऊँ झूठी प्रीत ॥
अल्प जीवन डोसी[३] भया आसा मनसा चीत ।
आसा मनसा बेधिआ इहु मन चंचल चीत ॥
पर दर्ब हिरहि परघर बसै शब्द न साखी मीत ॥
अजगर भार उठायो जल सागर असरालु ।
बिनु गुर पार न पाईअै जम मारै बेहालु ॥
कऊए मारहि सीस चढ़ि बर्षहि अगनि अंगिआर ।
नानक नदरी छुटीअै सच्चु सवारनहार ॥ ३२ ॥
जम जंदारा[४] सीस तिस जिस मन ते बिसरै राम ।
ज्यौं आया त्यौं जायसी जम सहहि तिआस[५] सहाम ॥
डीगै[६] डोलै मनु चलै दहदिश तिश्ना धाय ।
किसै न भावै घर रखिआ कूड़ बोलि पति जाय ॥
पापीआं सच्चु न भाया कूड़ै धरै पिआर ।
नानक बंध चलाईअै लख चौरासी भार ॥ ३३ ॥
चरन गिरहिँ कर कंपमान जाजर[७] देह गिरंत ।
सिर कंपहि थरथर करै जिह्वा रसु नही रंचु ॥
भई पुरानी देहुरी जर जरु[८] आया अंत ॥
कफ मिलि कंठु बिरोधिआ छाती ऊभा सास ।
नैनी नीर बहै सदा बहु तिश्ना भूख पिआस ॥ ३४ ॥
अति क्रोध तिश्ना घणी भूख पिआसा रोय ।
कहिआ कोय न मानई अंत न साथी कोय ॥

---

(१) अपना पुत्र । (२ भ्राता । (३) दोषी, दूषित । (४) जम की फौज को आरास्ता (प्रबंधित) करने वाला अथ्वा जिंद (जान) को आरे वत चीरकर शरीर से न्यारा करने हारा यम=काल । जंदार नाम चोर का भी है सो जान को चुरा ले जाने वाला यम चोर– जम-जंदार=यम के डंडे का नाम भी है । (५) यम मार्ग की दुःसह (कठिनता से सहारी जाने वाली) तृषा को सहारता है । (६) गिरे पड़े, कंपायमान होवे । (७) जरजरी (क्षीण) । (८) जोरावर बुढेपा ।

जोबन गया न बाहुड़ै फुनि एहु देहि न होय ।
नानक नामु बिसारिआ जन्म अकार्थ खोय ॥
बिन हरि भगति न छूटई जे चतुर कहावे कोय ॥ ३५ ॥
मन्मुख भवहिँ बिबाण[१] महि कबहूँ न पावै राहु ।
अहि निश सदा दुखी फिरहि लेत न सिअला[२] साहु ॥
नष शिष ते दुःखी भरिआ कबहूँ सुखी न होत ।
सुख तजि जम के बशि परै मूढ़ धुने धुन[३] रोत ॥
साक्त सहै सजाय बहु जिस लिखिआ लेखु लिलाट ।
नानक साक्त पार[४] न पावई रहै निमाणै[५] घाट ॥ ३६ ॥
साख्त मुठे बाट महि जानि न मिलहि हजूर ।
संत सहाई साथ बिनु मरहि बिसूर बिसूर ॥
ओट न पकड़ी साध की फिरिआ छानत छार ।
जब मन कउ मुशकल बनै तब कउन छुड़ावनहार ॥
साख्त बेला अंत की गया बहुत पछुताय ।
नानक कोई साध न पकरिआ जो लेवै अंत छड़ाय ॥ ३७ ॥
अंत सखाई साध हैं इत उत के रखवालु ।
संत बिनाँ नाँ छूटीअै जब जम झोटै[६] बालु ॥
संत उबारहिँ भीड़ ते संत रखहिँ जम ठाकि ।
संतां की आज्ञा अमर जम कंकर ताकै हाकि[७] ॥
पर उपकारी संत कलि देइ नामु उपदेश ।
नानक इत उत आदि अंति संतन कउ आदेश ॥ ३८ ॥
हरि हरिजन हहिँ सदा एक दुतीआ कबहूँ न होय ।
ज्यौँ जल जलहि समाया पारस मिल कंचन होय ॥

---

(१) बीआबान (संसार जंगल) । (२) सिअरा साहु, शीतल श्वास, चैन का दम । (३) हाय हाय करता हुआ, सिर पटकता हुआ । (४) पारला किनार ब्रह्मांड का पार पद, अभय पद । (५) जहां सत्कार मान नहीं होता अैसा पिंड वा ब्रह्मंड का घाट काल मंडल । (६) जब केशों से पकड़ कर यम झंभूणेगा, (जब केशों को खसोटेगा) । (७) यम दूत संतों की अटल आज्ञा वा हाक (ललकार) को ताकता है भाव ध्यान में रखता है।

ज्यौं चंदन काष्ट मोहिआ दुतीआ कह्या न जाय ।
ज्यौं सुरसरि[१] महि सर मिलै होय उदक सभ जाय ॥
ज्यों हीरे[२] हीरा बेध्यो त्यौं संत मिले हरि जाय ।
नानक हरि जन एक हरि दुतीआ कह्या न जाय ॥ ३९ ॥
दुतीआ त्रितीआ कछु नही सभ एकोही प्रगास ।
एको रूप बरन[३] एक एक रक्त इकु मास ॥
एक ब्रह्म इक बरन[४] इक एको बोलनिहार ।
एका जाति सनाति[५] इक एको ही उपचार[६] ॥
एको धातु[७] रहत एकु एकु ही साख[८] अरु सैन ।
बरन चिहनु सभ एकु इक एको ही बरतैन[९] ॥
तुमते परगट संत होहिं अरु संताँ ते तूँ जाप[१०] ।
नानक पूरन पारब्रह्म घटि घटि रहिआ व्याप ॥ ४० ॥
अंम्रित रस तसकर हरै अरु दुख की पोटं कपाल ।
घोर अंधेरी दुख घणा बिमल नदी भरनाल[११] ॥
मन्मुख मोह व्यापिआ वशगति कीता काल ।
बिनु हरि रस गत मत पत नही देखहु नदर निहाल ॥

---

(१) (ज्यौं सर सभ सुरसरि मिलै) पाठ भी है। (२) जैसे हीरा कणी से हीरा बेधन किया जाता है इसी प्रकार सत्पुरुष—की कणी अर्थात अंश रूप संत ; सतलोक रूप मंडल को बेधन करके हर एक में भरपूर, हरि में (वह) समाय जाते हैं। (३) रंग। (४) ब्राह्मण क्षत्री आदि बरन। (५) जाति से उत्तम जाति-भाव है, और सनाति से भाव नीच जाति का है। अथवा जाति नाम रचना का है उसको सनाति=कारीगरी, सभ एक ही है। (६) सेवा, उपासना, साधन। (७) वात पित्त कफ तीन। रस रक्त मांस मेद मज्जा अस्थि बीर्य सप्त यिह। अकाश वायू आदि पंच महांभूत। तथा इनके शब्द स्पर्श रूप रस गंध रूप पाँचौं गुन। इंद्रियाँ। इन प्रत्येक का नाम धातु है। सारार्थ यिह कि धारणे वाली वस्तु (सर्व शरीर आदि में एक ही है)। (८) साक और सैन। रिश्तेदार संबंधी। अंग साक। (९) वरतन (व्यवहार)। (१०) हे अंतर्यामी संत तुमते प्रगट होते हैं और तू संतों से प्रगट (साक्षात्कार को प्राप्त) होता है। इसी कारण "संत अनंतहि अंतर नाही" सर्व एक ही है। (११) विशेष करके मैल के साथ भरी हुई नदी बैतरणी। अथवा 'भर नाल' नाम गुरू संप्रदाय में समुंद्र का है सो इस प्रकार के होते समुंद्र समान पारावार से रहित वैतरणी नदी से पार होना पड़ेगा यिह अर्थ होंवे। वा भर नाल अर्थ भार साथ वैतरणी से पार होते हुए घोर अंधेरी रात में भारी दुःख होगा।

माया साथ न चलई जर रुप्पा[१] धन माल ।
जोबन धन मित्त न आखीए बदफैली[२] क्या हाल ॥
गुर किरपा ते छूटिये नानक नदरि निहाल ।
माया साथि न चलई अंत मारे जमकाल ॥ ४१ ॥
धुरहु[३] धुराहूँ विछुड़े तिन क्योँ होवै मेल ।
तिल ज्योँ घाणी पीड़ीए तावण[४] तत्ते तेल ॥
किथहुँ आया कहिँ गया मन्मुख लहै न मेल ।
भीत पुराणी गिर पड़ी काच गगरीआ फूट ॥
हंस रोय उठ खेलिया ढाह मड़ोली लूट ॥
जगत प्रीति खिन महिँ गई निमष घरी महि टूट ॥ ४२ ॥
जोबन काम संगि भरमिआ भरम भूले सुखकाहि ।
जन्म गयो तन धन गयो बंकी देह सु नाहि ॥
भोर भया उठि चलिआ हंस बटाऊ राहि ॥
बेमुख गत पत मत गई खोयो रत्न गवार ॥
ज्योँ छूछै घरि चोरटा[५] चलिआ जन्म बिगार ।
दुख संसा मनहुँ न चूकई सो दिन आयो नेड़ ।
तिसही दुःख सहाईए सहु साक्त अपने फेड़[६] ॥
जन्मु गवायो जमु ग्रस्यो भस्म भयो तन षाक ।
गुर[७] मिठा ज्योँ माखीआ कहा सु घर औ ताक ॥
जमपुर बद्धे मारीअन सिर जम कंकर काल ।
जम कंकर मारे सिर खड़ा जिस साखत अंध गवार ॥

(१) सोना रूपा चांदी ।(२) दुराचार वालों का । (३) धुर धाम से जो धुर के भागों से विछोड़े गए हुए हैं । (४) तावण नाम कड़ाहे का है । और उस मट्टी के बरतन (हंडिया) का भी; जो कि तेली लोग पिलते हूए तिलों के ऊपर खौलता हुआ तेल (ऊपर से) डालने के वास्ते औटाने के लिये अगनि पर चढ़ाए रखते हैं—सो जैसे तप्त तेल के कड़ाहे समान नरक में तिलों की घाणी समान पीड़त कीए जारहे, मन्मुख जीव को पकायो जावेगा तो जैसे तिलों के ऊपर कोलू में पीड़ते समय खौलते हुए तेल को तेली डालते हैं ऐसे ही मन्मुख जीव को नर्क में पीड़ २ ऊपर से महान् तप्त तेल को डाल डाल कर जीव को पकाते हैं भाव जीव को परलोक में असहि पीड़ा मिलती है । (५) चोर बच्चा, पिता पुरुषी चोर घराने का चोर । (६) कीए का फल । (७) गुड़ ।

सुखी हूँ दुःख उपजिआ बिनु हरि हेत पिआरु ।
संगत गुर साध न पाईअहि नाँ हरि भगति सनेहु ॥
नानक मूसै दुर्मती फिर नाहीं बंकी देहु ॥ ४४ ॥
साक्त खड़ीअहिँ जमपुरी सभ जम की सरकारु ।
बिन गुर बद्धे मारीअहिँ कहाँ सु कूक पुकारु ॥
शब्दु न साखी भै बसै जो अंत सहाई होय ।
हरि जस कन्नीँ[1] नाँ सुनै जो अंत छडावै सोय ॥
जहिँ कीरत संगति साध की उपजी प्रीति न चाउ ।
दया मया नही नामु मुखि नाँ हरि भगति न भाउ ॥ ४५ ॥
तितु जम पंथी सहम्म[2] तिस भगति नही गुर ज्ञान ।
निर्दया नही नामु दानु उजड़ मढ़ी मसान ॥
साध संगु नही पाया अंधु धंधु लपटान ॥
चुभहिँ पगीँ जम सूल तिस सूर तपै सिर भारु ।
घुँमणघेरी दुख घणा[3] पाप लहे सिर भारु ॥
तिथै अवगण ले चले अंध कूप गुबार ।
गुण नाही नाँ गुरशब्द मनु, क्योँ पाईऐ मुक्ति दुआर ॥ ४६ ॥
तहिँ अंध कूप गुबार महि तहाँ साक्त का अस्राउ[4] ।
तहिँ नरक घोर के कुंड महि तह साक्त जलबल पाउ ॥
तहाँ सु जम दल लंघणा अगन पाणी भड़वाउ[5] ।
भड़ भड़ दिसै अगनि रूप दभै मन्मुख ताउ[6] ॥
हावै[7] दोजक साड़ीऐ आपत्त[8] पशू बेताल ।
नानक आवै जाय भवाईऐ जिसु कितु पया सिरकाल ॥ ४७ ॥
जिसकी माया तिन लई नारी अवर भतारु ।
तन विणठा[9] जीउ खेलिआ छाडि चलिआ घर बारु ॥

(१) कानोँ से। (२) सहम, संशा, अंदेशा, डर। (३) बहुतंही=व्यंत। (४) आश्रा, ठिकाना। (५) अगनी पाणी तथा वाउ (वायू) जिस जम पंथ में भड़ भड़ रूप भयानक शब्द कर रहे हैं। (६) सेंक, उश्नता, ताप। (७) ऊभेश्वास लेते हुए को। (८) 'अपवित्त' पाठ भी है। (९) बिनसा, नाश हो गया।

जैसे कर्म कमाईअहि सहु जीआ तूँ नाल[१] ।
अंधुले नाम विसारिआ वशगति कीता काल ॥
अंत न साथी संगि को नाँ कुछ भोजन खानु ।
गल संगल तिस नानका ओहु दरगह कुपरवाणु ॥ ४८ ॥
साखत गरबि व्याप्या जन्म मरन दुख ताहि ।
आवा गवन न मेटीअहि जे जुग घ्रेरे[२] जाहि ॥
कुंभी नरकि पचाईअहि जिस साध संगति बुद्धि नाहि ।
जिनाँ नाम बिसारिआ से बाँधे दुःख सहाहि ॥
सतिगुर का शब्दु न चीनिओ ते नर नरकि पचाहि ।
सेवक भाय फलु पाया से दरगह पैधे[३] जाहि ॥
भगत सोहन दर गाँवदे नानक शब्द सलाहि ॥ ४९ ॥
दरगह पैभन[३] सच्चिआर जिन सच्चे नालि पिआरु ।
कर्म धर्म दुइ साखीआ तिस सच्चै कै दरबारु ॥
दर सच्चे लेख निबड़ै[४] बहि धर्म करै बीचारु ॥
जिनाँ नामु अराधिआ पूरे गुर की ओट ।
से मुक्त भये जन नानका तिन जम बाधे[५] दिल खोट ॥ ५० ॥
सिर नउतन[६] काल न छोडई थाकी कर्म कमाइ ।
जंत्र जीउ तिस संगमै अनत न काहूँ जाय ॥
सच्चा साहिब सो धनी सिर सिर हुकम सबाइ ।
आसा मनसा मोहनी गल बंधन पाए पाइ[७] ॥
पूर्ब लिखिआ नां टलै जो लिखिआ लेख रजाय ॥
मोह सदा अपमान मनु हउमैं गारबि देहु ।
कामु क्रोधु मनि बसि रहै अंतकालि तनु खेहु ॥ ५१ ॥
साखत जन्मै भरमि भरम अगनत सहै सजाय ।
तरवर टूटे पात ज्योँ नाहिँ कहीँ ठहिराय ॥

(१) साथ । (२) व्यंत । (३) सेवक भाव से प्रेम प्रीति का पहिरावा पहिन करि मान प्रतिष्ठा पूर्वक भगवंत की दरगह (सच्चखंड) में जाते हैं । (४) बस्स हो जाते हैं । (५) तिनोंने खोटे मन वाले छलवंत (दुष्ट) जम काल को बाँध लिया, अथवा नाश कर दिया है । (६) नित्य नवीन रहने वाला (एक रस बलिष्ठ) । (७) पाँऊं में ।

बाउ बघूले ज्यों फिरै साखत सिरि एहु लेख ।
मनहठ कर्म कमाँवदे बलबंच करै बहु भेख ॥
मति फिट्टी बिलखी जुगति संजम रहत न भाय ॥
नानक निमष न काटीऐ साक्त कउ लिखी सजाय ॥ ५२ ॥
सहै सजाईं बहु घणी लहै दुःख पर दुःख ।
साखत कबहूँ न त्रिप्तीए तिस ब्यापै माया भुःख ॥
माया ममता मोहिआ नामु न धरै पिआरु ।
जमदरि बद्धा मारीए साखत होय पुआरु ॥
साखत जम कारणि पती[१] लेखै कबहूँ न शुद्ध ।
नानक साखत मारीए मन हठ मनही बुद्ध ॥ ५३ ॥
मन्मुख मनु की मति चलै सुनै न कब उपदेश ।
नहि[२] सिर अंकुश सतिगुरू नहि मन ब्रह्म बिबेक ॥
नहि भाउ भगति सेवा नही नही जप तप इस्नानु ।
मन्मुख खोटी रासि है अंतरि गर्ब गुमानु ॥
हउमैं ममता मद भरिआ फिरै अहं अभिमानु ।
नानक जिन कीआ तिसहि न जानही साक्त गलहि निदान ॥५४
ज्यों मीना फाथा जाल महि त्यौं साखत फाथा आय ।
ज्यौं माखी गुड़ स्यौं मुई तिन आप न सकिओ छुड़ाय ॥
ज्यौं दीपक देख प्तंग खपिओ त्यौं साखत निंदा जाल ।
भारु पराया सिर करहि से जम के राहै चाल ॥
बंधी निंदा पोटली[३] निंदक लई उठाय ।
नानक आपे नरक जाहि तिनाँ लेत न कोइ छडाय ॥ ५५ ॥

---

(१) साक्त जम के वास्ते (जम के नाम) पत्रका लिखता है भाव वासना को लेकर कर्म करता है। (२) नां तो सिरपर सतिगुरों का अंकुश ही धारता है और नां उसके मन में ब्रह्मज्ञान का ही प्रादुरभाव है। इस बचन में एक ध्वनि निकलती है कि जब तक पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक गुरू का अंकुश सिर पर धारे रखना चाहिए, जो ऐसा नां करेगा और ब्रह्मज्ञान प्राप्ती से शून्य ही स्वतंत्र हो फिरेगा वुह मन्मुख है। उस मन की मति में चलने वाले की दशा आगे कही है। (३) गांठ (बोझा)।

निंदक खोटी रासि है नाँ तिस लाहा न मूल ।
निंदक सिर बहु करज है पाया व्याज अतूल ॥
साख्त की सभ पूँजी गई लाहा निमष न पाय ।
साख्त अंधे मूढ मन खोई, खेप अजाय[1] ॥
ज्यौं आया त्यौं चलिआ हथ पछोड़े अंत ।
नानक साख्त दुखी भये चले न साधू मंत ॥ ५६ ॥
दहि दिश धावै भूख मनि त्रिप्र नही दुख एउ ॥
गर्ब गुमान न चुकई दुर्मति छुटहि केउ ॥
तिश्ना तामस लोभ मोह साख्त मनु लाया ।
बिनु हरि भगति न छुटई सहु कीआ कमाया ॥
सुत्ता अंध न जानई सभ रैण[2] विहाणी ।
नानक शरन अपार की गुरमति बुधि जाणी ॥ ५७ ॥
उत्तम जन संगति परधान । सुन्न समाय रहै मनु मानु ॥
इहु मनु समझै लहहि निधानु ।
इहु मनु समझै अपनै घर निधि पावै ।
अपने घर महि घर नदरी आवै ॥
अकथ कथै अवगत कउ पावै ।
नानक सुन्न समाधि समावै ॥ ५८ ॥
साधू की मनु ओट गहु मन हठ कर्म त्यागि ।
आपु तजहु गोबिंद भजहु संतन चरनी लागि ॥
पानी पक्खा पीस जन अपना आपु गवाउ ॥
गुर की आज्ञा द्रिढ़ गहि रहौ संतन पाँहि[3] बिचाउ ॥
होय संतन की रेण रहु नीचहुँ नीच कहाइ ।
नानक मार्ग संत कै हउमैं ममता जाइ ॥ ५९ ॥

---

(१) अपनी रास पूंजी साक्त (मन्मुख) ने व्यर्थ ही गंवादी । रास पूंजी से भाव श्वास का खोना ही खेप खोना है । (२) आयू रूपी सगली रात्रि व्यतीत हो गई । (३) संतों के पास, संतों के आगे अपने आप को बेच डालो और उनके मोल लिये हुए सेवकों वत सेवक होकर उन की आज्ञा को द्रिढ़ता से पालन करो ।

साधू का अंचल द्रिढ़ गहै तिस जमु नाँ सुप्नै दीस ।
सोवत जागत मिलै संत मनु कर्म राच जगदीस ॥
अठसठ मंजन नित करै साधू के दर्शन माहि ।
ग्रिह महि साध न जानई अठसठ भरम फिराहि ॥
अठसठ लागैं चरन आय जो लै साधू उपदेश ।
नऊँ छिअषट अरु बेद चारु[1] तिस आगै आदेश ॥ ६० ॥
साध बचन जिन मानिआ से ऊचे ते ऊच ।
तिन त्रैकुल[2] तारे आपने अवर स्रिष्टि बहु मूच[3] ॥
पर उपकारी संतसंग जिस किस लेह उबारु ।
लागे किसहि न छाडई तारे भउजल पारु ।
अनलागे रोवैं घाटि (पर) जो लागे से पारु ॥ ६१ ॥
तिन आवन जाना नाहि तिल[4] जो साधू शरनि परे ।
प्रेम भगति से रच रहे भवजल बिषम तरे ॥
लगे पर[5] तिन प्रेम के चढ़ै गगन सिर जाय ।
मान सरोवर हंस ज्योँ चुन मुक्ताहल खाय ॥

---

(१) नौं व्याकर्ण, छः शास्त्र, षट बेदांग तथा चारों बेद उसके आगे नमसकार करते हैं। भाव संतों के दीक्षत गुरमुख का अनुभव इन सभ के सिद्धांत के ऊपर बढ़ जाता है। (२) नानकी, दादकी और श्वाशुरी यिह तीन कुल तार लेता है। माता का अंश नाना के घर का है और पिता का अंश दादा के घर का—माता पिता के संयोग से ही उपासक का शरीर बना है। और बिवाहितहोकर श्वशुर के घर के अंश को अपना अंग बनाता है। इस कारण एक उपासक के उद्धार से तीन कुलों का उद्धार इस जगह कहा गयाहै। क्योंकि संतान के हर्ष विषाद की प्राप्ती पर इन तीनों सम्बन्धियों को बराबर एक सा हर्ष विषाद प्राप्त होता (संसार में) सभ के देखने में आता है। सो जैसे हर्ष विषाद का एक सारखा हिस्सा मिलता है तो उद्धार का भी अवश्य ही मिलेगा। सो जो उत्तम संतान अपने परवार का हित चाहती है उसे करतार का याद में लग जाना चाहिये आप ही निरसंदेह सभ का भला हो जावेगा। जैसे जो खाएगा उसी को तृप्ति होगी दूसरे को नहीं ऐसे ही जो भजन करेगा वही उद्धार पाएगा दूसरा नहीं ? ऐसी संभावना नहीं करनी चाहीए क्योंकि जिस प्रकार माता की त्रिप्ती से पुत्र की त्रिप्ती होती है और प्रिय वस्तु पुत्र को खिलाकर माता पिता संतुष्ट होते हैं जिससे प्रीति पात्रों की एक दूसरे की संतुष्टी से एक दूसरे की संतुष्टता निश्चित है। इसी प्रकार पुत्र के उद्धार सेप्रीति पात्र तीन कुलों का उद्धार भी अवश्य ही होता है। तांते हितकारी माता पिता आदि को अपनी संतान को भगवंत भजन में अवश्य लगाना चाहिये। (३) उसके पीछे मुक्त होवेगी। (४) जो एक बार भी सत्संग में प्रवृत्त हो गए हैं उनको तिलभर भी आवागवन (का संशय न होगा) (५) पंख, खंभ।

अपना आप[1] गवाय कै मिलै निरंजन जाय ।
नानक तिन मित नाँ पवै जो रहै चरन लपटाय ॥ ६२ ॥
जिनाँ प्राप्त चरन ओट से पूर्ण ब्रह्म रले ।
तिन सभ महि एक पछानिआ से आपु निवारि चले ॥
नीचा ही ते नीच होय पाई पदवी नीच[2] ।
तिनकी महमा क्या गनौं जिन मति पाई ऊच[3] ॥
अपरंपर[4] सौं मिल रहे तिनाँ मित लखी न जाय ।
नानक सेवा साध की सेवा का फलु पाय ॥ ६३ ॥
जो तिन कीआ भला परवानु । अपने घर महि लहै निधानु ॥
अमर अतीत कैवल गुर ज्ञानु । आदि अंत सदा सचु ध्यानु ॥
निज घरि पाया परम निधानु । नानक बुझ लेहु तत पद निरबानु६४
शब्द सुरत पत गत रहै जब पाये गुरू दैआलु ।
संसा तजि अनहद रचै मन चूकै आल[5] जंजालु ॥
कवल बिगसै सचु मनु गुर कै शब्द निहालु ॥
इस काची महि सचु जमायलेहु बूझहु गुरज्ञान बीचारु ।
इहु अकथ कथा गुरज्ञानु मति प्रभु दीजै किरपा धारि ॥
इहु मनु राता सचु सिऊँ हउमैं भार चुकाय ।
नानक सचे रवि रहे नाँ विछुड़ि दुख पाय ॥ ६५ ॥

॥ इति श्री प्राणसंगली गुर ग्रंथे ध्याउ सतारवां संपूर्ण ॥ १७ ॥

---

(१) आपाभाव, देह अध्यास, हऊंमैं । (२) दीनता अंग को लेकरि भजन प्रायण होकर सर्ब की आधार भूत नीच पदवी जो धुरपद है सो प्राप्त हो जाता है। जैसे मकान की नींव पर ही मकान की सर्व मंजिलों की स्थिरता होती है यदि नींव खैंच लें तो मकान स्थिर नहीं रहि सक्ता ऐसे ही सर्व नीचे ऊपर के मंडलों तथा मंडलेश्वरों की अवधीभूत आधार स्वरूप जो चैतन्यता की निधि है सो चिन्मात्रता नीच पदवी धुर पदवी है। (३) जो इस प्रकार के ज्ञान से सभ के नीचे हो जाता है वोह एक प्रकार से सभ को अपने में ही ले लेता है जैसे समुंद्र सब को अपने में लेकर अत्यंत ऊंचे परबत आदि को भी अपने में डुबाय लेने वाला होने से सर्व से बड़ा तथा ऊंचा कहने में आता है ऐसे ही सर्व को अपने में प्रविष्ट कर लेने वाली चिन्मात्रता के यथार्थ ज्ञान से ब्रह्मज्ञानी इस ऊची मति को प्राप्त हुआ अपार महमावान हो जाता है । (४) सभ के परे और जिसके परे और कोई नहीं ऐसा अपरंपर जो अवाच पद सर्व का अवधी भूत धुरपद है तिसके साथ जो अभेद हो रहैं । (५) ग्रह संबंधी जंजाल संसारिक धंधे ॥

॥ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १८ ॥

तां ओनां गुप्त सिद्धां आखिआ जी ! तपाजी !! तुमारे बचन सुणकर मोम की न्याईं पंघर१ गए हां जी ! तेरे बचन रसायण हैं। जैसे परम औषधी पारद२ को जमाय देती है–चंचलता उसकी लीनता को प्राप्त होती है तैसे ही मन हमारे चंचल थे। सो तुमारे अंम्रित रूप बचन औषधी कर इस्थिर भए हैं। हे गुरू जी रत्न जटित सिंहासन पर बिराजमान हो अरु पद्मासन कर इस्थित हो। अरु नाना प्रकार के रंगों सहत जो गोदड़ी है तिसको अंग पर धारे हुए शीश पर दलष संजुगत हो। अरु महाराज जी ! श्री नाथ जी आपके दक्षण ओर बिराजमान हैं अरु मंडलेश्वरों की पंक्तां अरु गुप्त प्रगट सिद्धों कर वेष्टित३ हो। अरु महां योगी-राज तथा पंडितों कर शुभायमान हो। अरु नाना रत्न मुक्ता मणी हार तुमारे अंग पर शोभायमान हैं। अरु शमस्रु जो दाढ़ी है सो चांदी वत चमत्कार करती है। अरु मुख ते चौतरफी सूर्ज वत प्रभा प्रकाशमान है। अरु फूलों तथा नाना प्रकार के सुगंधों पर भ्रमरे गुंजारते हैं। अरु हे महाराज ! मंदर विषे बिराजमान हो अरु सिद्ध फूलों की बर्षा करते हैं। अरु महा दिब्य अंगनां आरती करती हैं अरु सर्व सिद्ध मंडल जै जै कार शब्द करते हैं। जो तुम्हारा इह ध्यान हृदै विषे धारे सो मन वांछत धर्म अर्थ काम मोष को पावते हैं। तुम ऐसे (स्वरूपवान) परब्रह्म हो। हे प्रभु जी ! कृपा करि अंम्रित रूप महांवाक होर भी सुणावोजी। इह सर्व ही मंडल जो है सो मानो कमल है। अरु हे प्रभ ! तुम सूर्ज समान प्रकाशमान हो। सर्व को प्रकाश करते हो। जब गुप्त सिद्धां बहुत बेनती कीती। अरु पंडित जो राजा जी का सुषैन नामां था सो तिसने भी बेनती कीती जो जी हमारा भी उद्धार करो जी। तां श्री जगत गुरू जी प्रसन्न होय करि अठारवां ध्याउ श्री प्राण संगली जी का गुहज बाणी निर्जोग भगत सचे खंड के प्रभाव प्रभ गुण निधान सुखवेद बरनन करते भए—

॥ रागु मारू महला १ ॥

केवल राम रत मन भाया।
जाँकी शरनि तरे शुक नारद ध्रू प्रह्लाद अंब्रीक जसु गाया ॥१॥ रहाउ॥
ऊधो दास बिदर जन सेवक हरि भगती लिव लाया।
दास सुदामा अक्रूर भगत जनु हरि चरनी चित लाया ॥

(१) पिघल, द्रव। (२) पारे। (३) घिरे हुए।

नामदेव त्रिलोचन कबीर दासरो हरि भगत भाय गुन गाया॥
आदि जुगादि करै तिस भावै करि करि वेखै करै करावै।
तुंग[1] फकीर शाह सुल्तानै सिर सिर हुकम चलावै॥
भगतजना मैं भगति षजानै हरि नाम रत्न सुख सारे।
नानक मेलि लेहु जन अपने हरि संगति साध पिआरे॥
हरि संत जनाँ भगत जसु गायो। उस्तति संत हरि नाम तरायो॥
अनेक भगत बंदन नित करहि। चरन कवल हिरदै सिमरहि॥
हरि संत जनाँ उस्तति जैकारु। संत सभा संगति परवारु॥१॥
पुरीआँ[2] सप्त ऊपरि कवलासन। तहाँ पारब्रह्म निरंजन का आसन॥
संत सभा संगत परवारु। तहाँ जाति वरन कुल नाहि अकारु॥
तहँ देह न जाति न जोबन माया। तहँ जोति अनूप एक लिव लाया॥२
तहां रतां लाली मालु परोई। तहाँ आदि सिंहासन साचा सोई॥
तहँ बाजै शब्द अनहद धुनि तूरा। तहाँ त्रिभवण जोति रहै भरपूरा॥
जोवन्मुक्त सुशब्द लखाईअै। नानक जुगति गुर की मति पाईअै॥३
तहँ आदि सिंहासन सचा थान। तहँ भरपुर[3] लीणा गुणी निधानु॥
तहँ हरि का मंदर सचु महाल[4]। तिस मैं हीरा माणक लाल॥
सच पउड़ी गढ़ चढ़े निहाल। दर्शन परसि सु लाल गुलाल[5]॥४॥
तहँ आदि निरंजन निर्मल निर्मालु। तहँ सचु सरोवर आदि अतोल॥
तहँ नाम निधान अंम्रित प्रकार। तहँ घर मंदर षुशी नाम परवार॥
तहँ पैनणु पति पूरा परधानु। तहँ आदि जुगादी भगत नीशानु॥५॥
तहँ उस्तति भगत अनेक अनंत। तहँ भगत जोध सूरा बलवंत॥
तहँ अनंत पात्र[6] निरलंत॥
तहँ सीती सीता[7] सचरूप अपार। वैन मरहि तूठगीए सचु[8] करनी सार॥
तिथहि[9] भगत वसहि कई लोआ। नानक सचे सचु चंदोआ॥ ६॥

(१) बढ़ा आदमी (अमीर)। (२) प्रथम भाग पृष्ठ १०० पर का टिप्पण ८ देखो। (३) परिपूर्ण परमातमा ही भीतर बाहर समाया हुआ है। (४) सच्च खंड रूप महल्ल। (५) गूढ़ा रंग। (६) वहां पर बेशुमार अधिकारी। (७) तहाँ पर पारावार से रहित सत्य स्वरूप सीत (शांत मई चिन्मात्र) तेज में जो सीता (परोये) अर्थात् गुँथन कीए गए हैं। (८) क्योंकि यही सार रूप सच्ची करणी है। (९) तहाँ पर।

तहँ संत जनाँ उस्तति हरि नाऊँ। उस्तति सच्च सचु असराउ[१] ॥
उस्तति सचु शब्दु परवाणु। उस्तति सचु सचा परवाणु ॥
उस्तति आथ[२] कर्म गुर भाउ। उस्तति जुग जुग सचु पसाउ[३] ॥७॥
उस्तति नामु सची गुर बाणी। उस्तति भगत सच पद निरबाणी
उस्तति अनभउ गुरमुखि आदि। सच्ची उस्तति आदि जुगादि ॥
स्वस्त[४] आथ सच उस्तति होई। नानक गुरमुखि चीनै कोई ॥८॥
सुनहो पंडित कर्माँ कारी[५]। ज्ञान पदार्थ तत्तु वीचारी ॥
देह बिलोईअै निकलै तथु[६]। जल मथीअै जल देखु निरथु[७] ॥
अैसा ज्ञान सुनो अभ[८] मोरे। भरपुर लीणा सर्वे ठउरे ॥ ९ ॥
आत्म चीनै सो घर[९] दर पाए। आतम राम सुमत्ति समाए ॥
तहँ जोति अनूप प्रगट दिखलाए। निर्मल महल गुर शब्द लिव लाए॥
पति परवाना पैधा गुर भाए। ओअंकार[१०] धुनि अलष लषाए ॥१०॥
मिल सत्संगति भगत आनंद। नानक सो चीनै परमानंद ॥११॥

---

(१) आश्रय दाता, अोसा, ताण। (२) उस्तति कहने का क्रम जो है सोई गुरों विषे भाव है। (३) प्रसन्नता। (४) कल्यान रूप कहणी अर्थात् निर्बाण बानी ही सच्ची उस्तति भगवंत की होती है। अथ्वा अपने आप में स्थित करने वाली बाणी ही ···। (५) कर्म कर्त्ता। (६) सार बस्तु=माखन। (७) असारही असार (व्यर्थ)। (८) हे मेरे प्यारे। (९) तीसरा तिल। (१०) ओअंकार की धुनी त्रिकुटी के स्थान पर की मानी गई है प्रंतु त्रिकुटी में जब पूर्णतः इस धुनी का सादयात होता है तो अवश्य यिह शब्द धुनि सुरति को सुन्नमंडल में ले जाती है-और जो सुन्न में पहुंचता है मोक्ष सुख जीते जी ही अनुभव करता है। मोक्ष और कुछ चीज नहीं है बस "मुक्ति महा सुख गुर शब्दि विचार" महांन सुख की प्राप्ती वत प्राप्ती का नाम है-जब रंचक भर संसारी सुख अनुभव होता है तो जीव उस काल में अपने पराये की सुध भूल जाता है भला जब सुन्न में जाकर इसे परमानंद का झलका हुआ तो कैसे संभव हो सक्ता है कि इसे अपनी बेगानी कुछ सुरति रहे-किंतु नहीं रहती। जब इस प्रकार आपा पर के ज्ञान रहित अनुभव गंम्य परम सुख में सुरति लीन होगई तो सुरति का आपा भाव उसी (परमानंद सरूप परम तत्त) का आपा भाव हो जाता है। और वोही आपा भाव रहित आपभाव मात्र परम सुख को अनुभव करता है जिसका नाम 'अलष लषना' है। अब इस अलष लषाने में और अनुभव कराने में कौन कारण माना जावेगा। केवल वोही ॐकार की ध्वनी जिसने हमें वहां पहुंचा कर इस का अधिकारी बनाया-सो इसी बात को सन्मुख रखकर "ॐकार धुनि अलष लषाय" कहा है। (यिह जो अलष लषना का किंचित निरणा किया है सो वास्तिक अलष लषने की झलक है-जिस प्रकार दर्पन सन्मुख रखकर बैठे हुए पुरुष को अकस्मात् कोई दिव्य स्वरूप पीछे से झाकी देवै तो उसको दर्पन में पूर्ण दर्श उस का

सो बूझै जिसु आप बुझावै । जिसु मेलै तिसु भरमु चुकावै ॥
सो चीनै जो आपु गवावै । सो सेवक[११] गुर दर्शन पावै ॥
गुरमुखि नेड़े मन्मुख दूर । बिन ही प्रीतम मरीए झूर[१२] ।
मन्मुख मरीए गुरमुखि तरीऐ । गुरमुखि बचनी बिष परहरीऐ ॥
गुरमुखि निर्भउ जमहुँ न डरीऐ । गुरमुखि निर्मल मैलु न भरीऐ ॥
नानक गुरमुखि अजरु जरीऐ ॥ १२ ॥
ऊँधे[१३] खोरे काचे भाँडे । इन महि अंम्रित टिकै न पाँडे ॥
उइ भागहि[१४] फूटहि काम न आए । उइ आवहि जावहि षाक सबाए[१५]
काची गगरी टिकै न पानी । नानक बूझीअले इहु पद निरबानी ॥१३
पवै ऊँधे खोरे बहि जाय । काचा काँम न आवै ताय ॥
हउमैं बंधन रोग शरीरा । आसा मनसा कठनु मनु पीरा ॥
लोभ मोह क्रोध चंडारा । त्रिश्ना तामस बली हंकारा ॥ १४ ॥
जिसु सतिगुर मिलै मनु अनत[१६] न जाय । सो अबिनाशी करै रजाय ॥
नहिं को ऊतम नाँही को हीना[१७] । सभ मैं एक जोति प्रभ कीना ॥
किसते दूर कहु किसते नेरे । इह झगरा सतिगुरू निबेरे ॥ १५ ॥
ते बेमुख उरवार न पारु । तिन दर दर्शन नाहि दुआर ॥
उइ जन्महि मरहिं कर्म के बांधे । किरम जोनि जाहि ते दुखी अप्राधे ॥
नरक पचहि भवजल पच जाहि । दुख संतापु न चूकै ताँहि ॥
मनु कुशुद्ध हिरदै नही नाम । नानक ते जमपुर सहहि सहाँम[१८] ॥
अहिनिस निंद्या करहि बुरियाई । चोरी चंचल मति शांति न पाई ॥
सतिगुर ते बेमुख भगति नहि भाउ । अंध मुग्ध आवउ फुनि जाउ ॥
पशू प्रेत नीच घरि वासा । नानक जिहँ घटि गुर ज्ञान न अभ्यासा ॥१६

होता है-परंतु है वोह आभास मात्र-इसी प्रकार सुन्न में पहुंची सुरति के सामने पूर्ण निर्मलताई रूप दर्पण पड़ा होता है तो उसमें अलष स्वरूप की झलक पड़ती है जिसे देखते सार सुरति मगन हुई उस परम अंम्रित सुख को अनुभव करती है । (११) "दर दर्शन" पाठ भी है अर्थ यिह कि सेवक सचा वोह है जो मालक के दरबार का दर्शन पावे । (१२) संश्य विषे; पश्चाताप करते हुये । (१३) उलटे हुए (बेमुख) तथा कच्चे (साधन संपति से रहित) खोटे (बिषय बासना कर ग्रस्त) अंतः कर्ण भांडे (बरतन) विषे । (१४) वुह तो टूट फूट जावेगा । (१५) सभी ही । (१६) और तरफ़ नहीं भटक सक्ता । (१७) नीच । (१८) सिरोसिर दुःख (व्यंत कष्ट) ।

गुर मति निर्मल भांडाभाउ। उह फूटि न बिनसै मैलु न ताउ ॥
उह तत्तु प्रायण सचु पसाउ। जुग जुग अस्थिरु साचा नाउ ॥
अवधू गगन मंडल कांम धेनु जिन चोई। नानक सर्ब जीआँ का दाता सोई ॥ १७॥
अहि निस भाँडा प्रेम करि दुद्ध। पाईऐ सुरति समायण[१] शुद्ध ॥
जोग जुगत[२] निरंकार समाउ। जुगति बिहूना ततु न पाउ।
गुर ज्ञान मधानी नेत्रा[३] भाउ। तत्तु बिलोय नानक रस खाउ॥१८
लेवै तत्तु गगन सर भरै। सिउ[४] आतम राम स्यों गोष्ट करै ॥
आत्म कउ चीनै गुर सुआमी। सभ घट भोगै अंतरजामी ॥
सहज बैरागु सुमत्ति समावै। नानक गंग समुंद्र मिलावै ॥ १९ ॥
गंग बनारसि सिफति तुमारी। सिफती राता सहजि बिचारी ॥
छत्तीह अंम्रित भोजन भाउ। नदरी करमी सचु पसाउ ॥
सत[५] सर न्हावन गुरमुखि भाउ। नामु दानु नानक मनि चाउ॥२०॥
अपिउ[६] पीए मनु सुन्न समावै। निज घरि बसै फिर कालु न खावै॥
अकथ कथै गुर मुखि निज ध्यानु। लहै पदार्थ नामु निधानु ॥
दे प्रदक्षणा चढ़ै अपवाड़[७]। रस संग्रै तजि बंको नाड़ि ॥
पंच दूत बटवाड़ै[८] पाड़ि[९] ॥
ज्ञान खड़ग लै मनु[१०] स्यों लूझै। मार्ग दश[११] पंचां का बूझै ॥
जिह्वा इंद्री त्यागै बांक[१२]। प्रणवत नानक दर नहि ठाक ॥ २१ ॥
इह भोगै सो पारग्रामी। अंतर गति बूझीअले सुरत समानी ॥
सर्बे इंद्री द्रिढ़ करि राखै। मन तन जीअ असत्त न भाखै ॥
कोट कुटंतरि महि इस तत्त शब्द का बेता। अखंड[१३] मंडल नानक सचु चेता ॥ २२ ॥

---

(१) जाग (लाग)। (२) जुड़ते हुए। (३) जो रस्सी दही मथते समय मथनी के साथ बाँधी जाती है। (४) कल्याण स्वरूप। (५) मानसरोवर अंतरीव अमृतसर अथवा सत्य संतोष दया धर्म धीर्य बैराग ज्ञान इन सरोवर रूप सात विषे। (६) अंम्रित। (७) पिछवाड़, पश्चिम की ओर। (८) बाट मारने वाले, राह मार (लुटेरे)। (९) उनको फाड़ देवे, पृथक पृथक कर देवे (टुकड़े टुकड़े कर डाले)। (१०) मन के साथ लड़े। (११) दश इंद्रियां चार अंतःकरण तथा एक जीव इन पंच दशों १५ के आने जाने का मार्ग। (१२) व्यंगता (मिथ्या भाषण तथा स्वाद की चाट की)। (१३) सच्चखंड।

पर विरति[१] समाय निरबृति घरि रहही। तैसे मरै जि बहुरि न मरही॥
अंजन माहि निरंजनु पाए। गुर चेले[२] की संधि मिलाए ॥
त्रिभवन तिसु बूझै गुर शब्द लखाए। नानक सुन्न समाध लगाए ॥ २३ ॥
आपे आपु पछानै सोइ । आपे करि देखै त्रिभवन लोइ ॥
आपु उपाय देइ अधारु । आपे सिृष्टि कीओ आकारु ॥
चहुँ छत्तीसाँ[३] का जो जाणै भेव। नानक अलष लखाए गुरदेव॥२४
सो अबिनाशी तिसु रूप न रेखिआ। गुप्त प्रगट गुरमत्ती देखिआ ॥
वरन अवरन कुल जाति न जाया[४]। आस्तनास्त[५] अलष सबाया॥
अनंद रूप नानक लिव लाया ॥ २५ ॥
अनभउ घरि रहै उज्यारा लोइ। तिह अकुल निरंजन साचा सोइ ॥
पार न दीसै भउजल संसारु । गुरमुखि सेवक मुक्ति दुआरु ॥
आदि अंत अवर नही दूआ। नानक सो चीनै जो जीवत मूआ ॥२६॥
सनक सनँदन तपसी मुनि केते । ब्रह्मादिक इन्द्रादिक तेते ।
देव मनुष्य पशू अरु देवी । ताके अंतु न पावहि केई ।
जन्म मरहि फुनि सोझी नाहि। नानक गुरमति ले सहजि समाहि ॥२७
जोगी जंगम बिकट[६] जटा धारी । नानक भेष करे भेषारी ॥
खेचर[७] भूचर अरु पवनाधारी । षट कर्म अभ्यासी डंडा[८] धारी ॥
चरपट गोरख अरु कानीपे[९] । नानक सुरनर सेवहि दरदीपे[१०] ॥२८॥
देव दानव गण गंध्रप सारे । बिन प्रेम भगति नही मुक्ति दुआरे ॥
सुखदेव महातम नारद मुनि ब्यासा। सुरनर मुनिजन जोग अभ्यासा॥
सप्त ऋिषि चित मुक्त दुआरै। नानक दरि सेवहि अलष अपारै ॥२९॥

---

(१) पराई बरतन (मायक प्रबृति) को लय अर्थात दूर कर के। (२) शब्द सुरत की संधि। (३) चार बेद, षट शास्त्र, सताई स्मृतियाँ, तीन प्रस्थान इन सभ का जो सार गर्भित तत्व है "चहुँ महि पेख्यो षट महि पेख्यो दस अष्टी स्मृताए। सभ मिलि एको एकु बखाणै" इस सिद्धांत को जो बिबेक के प्रभाव से जाणो। (४) स्त्री। (५) सत् असत् (प्रगट गुप्त)। (६) जो कभी भी काटी नां गई हो, एक रस बढ़ी हुई (बड़ी बड़ी लंबी)। (७) खेचरी भूचरी साधन के अभ्यास की सिद्धी से सिद्ध हो कर आकाश तथा प्रिथ्वी में गुप्त प्रगट हो बिचरने वाले सिद्ध। (८) दंडी। (९) कान फटे। (१०) परकाश सरूप दरगाह में अथवा जहां अखंड दीपक रूप परम ज्योति प्रकाश करती है उस दरवाज़े को सेवते रहते हैं।

उश्न शीत नाँही तहिँ घामा। सूर्ज जपत[१] नही तहि कामा[२] ॥
अगनि बिंब नाही तहि राति । तहँ पाप पुन्न नाही कुल जाति ॥
हउमैं गर्भ नहीं तहूँ सोइ । नानक साचा अवरु न कोइ ॥३०॥
नाले[३] अलष गुर दीआ लखाय। सर्ब कला जानै रंग लाय ॥
जिन बाँधे कालु जालु अनहदु पत्याइ ॥
सत्त सताई चौदह चारु । ताँके सेवक अहि निश दर दरवारु[४] ॥
देखि विचार समझै मनु मानिआ।नानक घटि घटि ब्रह्म पछान्या ३१
आपे आप निरंजनु सोइ । नानक बूझै बिरला कोइ ॥
प्रेम पदार्थ करनी[५] सारी । सहजि भाय मिलिआ बनवारी ॥
साचा साहिबु सर्ब सुजानु । आपे भगत आपे नीशानु ॥
आपे सतगुर पूरा गुर ज्ञानु । नानक मनु मानिआ जिन जानु ॥३२॥
अठ अठाराँ बाराँ बीसा । जुग जुग सेवक पंच इकीसा ॥
तीन चार एक महि रंचहि । धरनि अकाश कला घर संचहि ॥
अंतर जामी घटि घटि जाणु । गुर मति चीनै पद निरबाण ॥
उन्मनी कला काल कउ मारै चापु[६]। नानक सो देख्यो थापि उथाप ॥३३॥
बिन आँखी देखै त्रैलोइ । बिन करनाँ सुनीऐ सभ[७] सोइ ॥
बिन जिभ्या जपि कैवल[८] नाऊँ । बिन चरनाँ अचर्ज घरि जाउ ॥
बिन हस्ताँ सभ सेव कमावउ। नानक निज घरि सहज समावउ ॥३४॥
दूख बिनाशन अघ हरन किलविष काटण हारु ।
संतोष सरोवर पर्बतै वर्षै अम्रित धारु ॥
मित कीमति किनै न पाया अलष निरंजन सोइ ।
नानक इहु मनु मानिआ सहजै होय सो होइ ॥ ३५ ॥

॥ इति श्री ध्याउ अठारवाँ प्राणसंगली का गुर ग्रंथ संपूर्ण ॥

(१-२) दिखाई नहीं देता। कर्मचारी, सेवक (सूर्य प्रस्त)। अथ्वा वहां पर कोई काम ही नहीं है कि जिसमें प्रवृत कराने के वास्ते सूर्य की आवश्यक्ता पड़े। (३) साथ ही। (४) सच्चखंड दरबार के दरवाज़े पर। (५) यही श्रेष्ठ करणी है। (६) उन्मनी कला (बाज़ी) में सुरत को चाप अर्थात् खैंच कर (चढ़ाकर) काल को मारडाले। (७) सभ प्रकार का अंतरीव समाचार (भगवंत के दरबार षास का रागरंग)। (८) जिस में और प्रकार की बनावट नां होवे भाव अनाम स्वरूपी सहज नाऊँ (अशब्द रूप शब्द)।

॥ ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय १९ ॥

तां ओनां गुप्त सिद्धां ते श्री गोरखनाथ भरथरी नाथ जी कह्या हे गुरू जी तेरे बचन रत्न अमोलक हैं। ते जोग की निधि हैं। जितने शास्त्र हैं सो कथा राज्यां दी ते बर्तण संसार दी कहदे हैं। ते तपा जी असीं[1] तां सिद्ध होए अरु संसार तों बिहंगम होए तांते तुमारे बचन सुणकर मन में भूष्ण कर राखे हैं। योग भूष्ण एही हैं। योग[2] रत्नाकर तुमारे बचन हैं तांते तपा जी कृपा करि कै होर भी अंम्रित पिवावोजी। जां नाथ जी फेर (ऐसे) आखिआ तां श्री सतिगुरू जी प्राणसंगली जी का उन्नीहवां ध्याउ आरंभ कीता—

सुसंबेद रत्नमाला छोटी।

॥ रागु रामकली महला १ ॥

त्रिहुँ का मारि मिलावै मानु। पंचां[3] माहि रहै परधानु ॥
इन पंचाँ का जो जाणै भेउ। सोई कर्ता सोई देउ ॥
अगम[4] निगम जो वाचै जाणि। नव ग्रहि बाँधै इकतु घरि आणि॥
सत्ति सताई चउदह चारि। ताँके आगै खड़े दुआरि ॥
अठ अठारह बारह बीस। आगे काढहिँ खड़े हदीस ॥
ऊची नदरि सराफी होय। नानक कहै उदासी सोय ॥ १ ॥
उदासी सो जो रहै उदास। रूख बिरख ग्रिह भीतरि[5] वास ॥
अहिनिशि रहिबो जोग अभ्यास। पर त्रिय अंगु न लावै पास ॥
जितु तनि दुतीआ मैलु न होई। नानक कहै उदासी सोई ॥२॥
ज्ञान खड़ग ले मनु सिउँ लूझै[6]। मरम दशाँ पंचाँ का बूझै ॥
मनु मिरतक की पावै गंठि। तीरथ परसै त्रैसे संठि ॥
जिनि इहु मैलु मनहिँ की खोई। नानक कहै उदासी सोई ॥३
देही अंदरि अठसठि हाट। ताँके बजर जराए कपाट ॥

---

(१) हम तो। (२) योगरूपी रत्नों की खाणि। (३) पांच शब्दों में आरूढ़ रहे (इस जगह पांच दूतों को स्वाधीन रखने का अभिप्राय नहीं है। क्योंकि अगली सभ पंक्तियो में शब्द का ही प्रसंग है)। (४) अगंम का बेद जो पढ़ जाणे। (५) "कर कंदर बास"। (६) लड़े।

अवघट घाट त्रिषमु है बाट ॥

ऐसा मारगु (सति) गुरू दिखाया । दहदिशि ढूढि सहजि घरि आया ॥
अठसठि गंठी खोले कोई । नानक कहे उदासी सोई ॥ ४ ॥
प्रथमे पूर्ब कउ दृष्टि धरै । दुतीआ दक्षण कउ गवनु करै ॥
दक्षण ते जो पछिम जाय । तउ हाट पटन की सोझी पाय ॥
पछम ते जो चढै सुमेर । आवै परदक्षणा कै फेरि ॥
पुरीआँ[1] सप्त ऊपरि कउलासनु । तिथै पारब्रह्म का आसनु ॥
जिन हीरै रत्नो माल परोई । नानक कहै उदासी सोई ॥ ५ ॥
कहाँ सु गगन देव का भउणु । अहिनिशि सदा मनावै[2] सउणु ॥
महाँ सूरा पूरा कौन । अहिनिशि जूझै[3] (जागै) दुरजन दौन[4] ॥
बाँधै वैसंतर[5] पानी पौन ॥
गगन मंडल जिनि गऊआ चोई । नानक कहै उदासी सोई ॥६॥
गुर का भगतु इंद्री का जती । हिरदे का मुक्ता मुख का सती ॥
द्रिष्टि का दैयाल दया करि दानु । जे घट निविआँ ताँ निविआँ जानु
बचनु शब्दु का सफलिउ होता । नानक कहै सोई अवधूता ॥७॥
चंचल चाय न जाय तमाशे । जूऐ जाय न खेलै पासे ॥
अंगे चंगे चित्तु न लाये । गुर का दीआ[6] अंकि हँढाए[7] ।
पर घरि जाय न कीजै कथा[8] । सतिगुर केरी एहा नथा[9] ॥
गुर की सीख सुणहु रे पूता । नानक कहे सोई अवधूता ॥ ८ ॥

---

(१) यमपुरी, इंद्रपुरी, ब्रह्मपुरी, हरीचंदउरी, अमरापुरी आदि सप्त पुरीआं ब्रह्मांड की न्याईं पिंड में भी हैं, उनके ऊपर कवलासन (पद्म सिंहासन) है । तहां पारब्रह्म की इस्थिति है (सप्त पुरियों का बृत्तांत आत्मा परमात्मा की गोष्टि प्रसंग में गुरू महाराज जी ने आगे सविस्तर कहा है इस कारण यहां नहीं कहा) । (२) "जिनकै मन महि हरि हरि गवणु" (पाठ भी है) । (३) जंग करता रहे । (४) दुर्जन (कामादि) दमन करता । (५) इड़ा, पिंगला, सुष्मना यिह तीनों अगनी-पानी-पौन हैं सुषमना घाट पर तीनों का जहां संगम होता है वहां सुरत का स्थिर करना इनका (उलाट करि) यही बांधन है । (६) कहिआ पाठ भी है । (७) पहिने । (८) लोगों से मिलकर लंबी चौड़ी बातें बनाना, या लोगों को जा २ कर व्याख्यान नां सुनाता फिरे । (९) अंकुश, कुंडा, स्त्रियों के नाक में जैसे नाथ होती है वोह मानों पती का अंकुश है कि वोह हरदम याद रखे कि मेरे सुहाग का अंकुश है । जिससे मुझे व्यभिचार में प्रबृत्त नहीं होना चाहिए ऐसे ही नंबर आठ की पौड़ी में सचे गुरमुख के लिये गुरू साहब ने नाथ रची है । जो इसे पहिरेगा कदाचित उसे दाग

असुरा नदी अपुठी तरे । अहि निशि सदा सिधीरै सरै ॥
कउल उलटै पलटै पउना । इऊँ निवारे आवा गउना ।
मन पवणे कउ राखै बंध । लहै त्रिबेणी त्रिकुटी संध ॥
अपणै वशि करि राखै दूता । नानक कहे सोई अवधूता ॥ ९ ॥
गगनंतर कउ भउर उडावै । अहि निशि डोरी गुडी लावै ॥
परचा होवैं ताँ फिरि घरि आवैं ॥
इन बिधि जुगित कमावै जोगु । आयाँ हर्षु न गयाँ सोगु ॥
संजम रहै न बिनसै सूता[10] । नानक कहे सोई अउधूता ॥ १० ॥
आसनु साधि निरालमु रहै । पंच[11] तत्तु निग्रहु करि गहै ॥
थोड़ी निद्रा अलप अहारी । साध का पिंड सदा बीचारी ॥
जप तप सँजम सुरति बिचक्षण । नानक कहै जोग के लक्षण ॥११
जाँ बोलै ताँ ब्रह्म ज्ञान । अहि निशि जागे सहजि ध्यानु ॥
सुन्न मंडल महि डोरी धरै । गुर प्रसादी कदे न मरै ॥
इन बिधि कीजै गुर की सेवा । ताँको बंदहिँ सगले देवा ॥
जिह्वा भेद न देई चक्खण[12] । नानक कहे जोग के लक्खण ॥ १२ ॥
ताँमस तिष्णा लोभ निवारे । पंच[13] अग्नि घटि भीतरि जारे ॥
अहि निशि रहै गँडीर चढ़ाय । सहजु उपजै दुर्मति जाय ॥
साध निवाजे बँधे चोरा । जम जगाति[14] न लागै तोरा ॥
उत्तम भले जिनाँदे जक्षण । नानक कहे जोग के लक्षण ॥ १३ ॥
पाँचउ इंद्री दृढ़ करि राखे । जिह्वा मुखोँ असत्तु न भाखे ॥
कोट कुटंतरि तत्त का बेत्ता । गगन मँडल महि राखे चेता ॥
सिँच[15] पइआलु गगन सरि भरै । जाय त्रिबेणी मजनु करै ॥
सत्त पंजि नउँ लगा रक्षण । नानक कहै जोग के लक्षण ॥ १४ ॥

नहीं लगने पावेगा और पुरुष शरीर धारने का जो असली उद्देश्य रूपी नाक अर्थात पत (इज्जत) आबरू है वोह गुरमुखताई की नथसे अंत प्रयंत निभ आवेगी । (१०) तार । (११) पांच तत्व के स्थान में ध्यान लगावे–यिह भाव है । (१२) स्वाद न लेने देवे (परचने नां देवे) । (१३) पांच प्रकार की ज्योति (रौशनी) । (१४) महसूल (हाला) । (गुरबिन मंत्र न जपीए होरा) पाठ भी एक प्रती में है । (१५) पाताल का रस (सुरति) उलटि करि बारंबार निरोध करन रूप सिंचता २ गगन सर को पूर्ण कर देवे भाव पूर्णतः सुरति वहां स्थिर हो जावे ।

पूर्बि चड़ै पछम कउ आवै । रवि शशि दोय इकत्र मिलावै ॥
अउहट[1] पटण की चीने बाट । ताँ परि बूझै अवघट घाट ॥
नउँ खंड देखै पूर्ब पछिम उत्तर दक्षण । नानक कहे जोग के लक्षण ॥१५
एहु तनु भाँडा सुरति करि दूधा । पाईऐ सचु समाइणु सूधा ॥
जुगति जत्न करि सहजि जमाया । जुगति विहूणा विकउ[2] जाया ॥
ज्ञान मधाणा नेत्रा भाउ । इन बिधि जपीऐ केवल नाऊँ ॥
रोल विरोल लीआ है मक्खण । नानक कहे जोगके लक्खण ॥१६

जिन माया जगु मोहिआ ब्रह्मा बिश्नु महेश ।
ब्रह्मादिक इंद्रादिका सिद्ध साधिक मुनि-एस ॥
जती सती भवि भीषक रसी मोही मोहनहार ।
इंद्र इंद्रादि जुगु जुगु हैंमैं चिंताधार ॥
देवी देव सबाया सिध साधिक मुनि ध्यान ।
नानक कालु जालु बशि याहते हुकम सचै नीशानु ॥ १७ ॥
शास्त्र बेद कतेब सुनि नरक सुरग ते जाहि ॥
माया मोहै गुर शब्दु बिनु मन्मुखि भरमि भुलाँहि ॥
सुर्ग मिरत तन मोहिआ सप्त लोक पाताल ॥
आकाशी वैकुंठ लोक से मोहे माया जाल ॥
जो शरनि परै जगदीश की संत जनाँ पगरेन[3] ।
नानक सो दर्शनु पाइसी अबिनाशी सुख सेन[4] ॥ १८ ॥

गुर जत सत सिवरउ[5]. मुक्ति सरोवर जपु तपु सहजि ध्याना ।
सूख[6] सरोवर मुक्ति वर दाता घटि घटि सो पिरु[7] दाना ॥
यिह सुच संजमु गुरज्ञान पदार्थु हरि अंतरि भगति षजाना ॥
मिथ्या लोभ भये मनु सूचा सहजि भाय मनु माना ॥

---

(१) ऊपर के हाट तथा पटण (नगर-शहर) आदि जो टिकने के स्थान हैं उनकी बाट (मार्ग) को पहिचाने। (२) बरबाद। (३) धूली-भाव उनके चरणों में धूली के समान परम दीनता को धारे। (४) सुख की सैना-भाव अबिनाशी सुख संबूह। (५) सिमरण करो। (६) सुभ्र सरोवर। (७) उसी प्रीतम (परम पुरुष) को घट घट में पूर्ण सभ का प्रकाश करता दाना (जाना)।

मुक्ति सरोवर भाय सुमुक्ता नाऊँ सुनि षसम निकाला ।
नाऊँ सुनि दाता गरभु अगनि प्रभु पाया दीन दैयाला ॥ १९ ॥
त्रिभवणमहि घूलै अमरुपदु इंडा। अलष घरि आसनु त्रिष्णा भउ खंडा
सु आकुलु पावहिँ सतिगुर की सेवा । जाँ कउ बंदहिँ देवी देवा॥
जिह्वा अनरस स्वाद बिचक्षण। नानक सहज बैराग के लक्षण ॥२०॥
बिमला नदी उलटी तरै । उलटी पलटि सिधीरी करै ॥
सीधा कमलु पूरण तिहँ पवणु । इऊँ निवारै आवा गवणु ॥
मनु[1] पवनै कै शब्दि ले बंध । नानक इऊँ टूटै जम का फंध ॥२१
सो अबिनाशी आपे आपि । कालु बिकालु कउ मारे चाँपि ॥
परघर जाय न सुने अनकथ । यिह आदि पुरुष सतिगुर की नथ ॥
सतिगुर की सीख्या सुन रे पूत । नानक जुग जुग सतिगुर अवधूत॥
अंतरजामी मिलै सुहेला । जागत अवस्था मन मारि इकेला ॥
क्षमा सरि भरिआ माणकु मोती। अमरापुर चढ़ि किन माल परोती॥
रोगु बिजोगु सोग परजालै । आपु पछाता गति मति नालै ॥
अैसा अलष अपार निराला। नानक दीनाँ प्रतिपाल समालै ॥२३॥
अरचै कै घरि रहे उदास । परचै कै घरि करै निवास ॥
परचा छोड़ि अरचे दरि खोलै । तीन चार दुइ सम करि टोलै ॥
नऊं दरि मूंद इकतु घरि जाय । सुन्न गुफा की सोझी पाय ॥
उस दर का खूलै दरवाजा । तां सुणि देखै अनहदि बाजा ॥
ऊहां सर सुभर अंम्रित स्यों भरिआ। एक बूंद रसु काजे सरिआ ॥
ऊँदरि[2] कै शब्दि बिलाई भागी । नानक कहै सोई बैरागी ॥२४॥

(१) पीछे कहा गया । (२) ॐ+दरि=ॐ से भाव ॐकार शब्द का है प्रंतु यहां गुरू साहब को ॐकार पद का कहिना अभीष्ट है-सो ॐकार पद के दरि=दरवाजे अथवा दरबार का जो शब्द है (ॐकार की धुनी) उससे अहंता रूपी बिल्ली जो सदैव मैं मैं करती रहती है भाग जाती है तात्पर्य त्रिकुटी के स्थान पर अहंता का पटल इस के (सुरति) सामने से भाग जाता है । अभी नाश नहीं होता इस लिये उत्थान में फिर स्फुरण हो आता है तभी ही हठ योग को खंडन किया गया है क्योंकि इस से आगे की वोह ख़बर नहीं देता और नां पहुंचाने को सामर्थ्य ही है ॥ (जो गुरबाणी के वक्ता ॐदरि शब्द को चूहा या उदर का शब्द कहते हैं धोखे में हैं) सुरति शब्द योग की रीती से ॐकार की धुनी ऊपर तक पहुंचाती है इस वास्ते गुरू साहब प्रायः इसका आम तौर पर उपदेश करते भी रहे हैं ॐ दर उपरले दर का शब्द (सहसदल का) भी हो सक्ता है परंतु ॐकार शब्द समीचीन है ।

सीस मुंडावै टोपी पावै । खिंथा पहिरै बन खंड जावै ॥
कंन्नीं तुलसी कंठी माला । हाथ फहौड़ी कांधै म्रिग छाला ॥
कर पखंड लोकां पत्यावै । अंतर की दुबिधा कबहूं न जावै ॥
पहरि भेष ग्रिह तिरिआ त्यागी । सो नांही पुरुषा बैरागी ॥
मिलि सतिगुर हउ मैं नही त्यागी। नानक सो नाही बैरागी ॥२५॥
जत दीपक तत्त का तेला । सुरत कर बाती सहज सैं मेला ॥
पंचहुं मेल चांदनां करै । तित चांदनै गढ़ ऊपर चढ़ै ॥
उत गढ़ बैसि होवै बड़ भागी । नानक कहै सोई बैरागी ॥२६॥
बिन संजम बैराग न पाया । भरमतु फिरिआ जन्म गवाया ॥
क्या होया जो औध बधाई । क्या होया जु बिभूति चढ़ाई ॥
क्या होया जु सिंगी बजाई । क्या होया जु नाद बजाई ॥
क्या होया जु कनूआ फूटा । क्या होया जु ग्रहिते छूटा ॥
क्या होया जु उश्न शीत सहै । क्या होया जु बन खंड रहै ॥
क्या होया जो मोनी होता । क्या होया जो बक बक करता ॥
सोहं जाप जपै दिन राता । मन ते त्यागै दुबिधा भ्रांता ॥
आवत सोधै जावत बिचारै । नींद्र मूंदै तषते मारै ॥
दे प्रदक्खणां दस्वें चढ़ै । उस नगरी सभ सोझी पड़ै ॥
त्रैगुण त्याग चौथै अनुरागी । नानक कहै सोई बैरागी ॥ २७ ॥
सो बैरागी बै महि[1] आवै । शिव कै आगे शक्ति निवावै ॥
शिव शक्ती के कर्म जु करै । अजर वस्तु अगोचर जरै ॥
ऐसा अउषतु[2] खाह गवारा । जितु खाधे तेरे जाँहि बिकारा ॥
तामसु तिष्णा सगल त्यागी । नानक कहे सोई बैरागी ॥ २८ ॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुर ग्रंथे रत्नयोग निधि (रत्नमाला) उन्नीस्वों ध्याउ संपूर्ण ॥१९॥

---

(१) बै नाम मोल पर किसी वस्तु के बेचने का है सो जो बै-मोल में आजावे भाव बिक जावे सो बैरागी है (शिव के आगे शक्ति सुरति को निवा देना भेटा कर देना ही व्यय करना है)। (२) औषदि।

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

अध्याय २०

सभेही सिद्ध बहुत प्रसन्न होए ते आखण लगे जो वाह वाह जी! तपाजी !! तुसीं सर्वज्ञ हो ईश्वर महां शक्त हो। सभ योगी सुणकर अचर्जमान अते लोभायमान होए हैं। ते सभनां की एही इच्छा है जो तुमारे बचन सुणतेही रहीए॥ जां सिद्धां बड़ा प्रेम प्रकाश्या तां श्रीगुरू परमेश्वर जगतगुरू जी बहुत प्रसन्न होयकै बोले ; जो नाथो सिद्धो जी !! तुसीं जद लग बस्स न करोगे तद लग असीं भी बस्स नही करना। क्योंजु-गुर द्रयाउ हैं। अनंत ही लहरां हैं। बेशुमार हैं तां सभनां आदेस आदेसकीता। तां श्रीगुरू जी योग समुद्र रतनमाला योग कर्मयोग यत्न ज्ञान, प्रचंड बिबेक सार ध्याउ बीस्वां बड़ी रत्न माला सुसंबेद प्रकाश कीता।

॥ जोग रतनमाला ॥

(जोग जुगुति का यत्न—अगनि प्रचंड—बाबे का ज्ञान)

॥ रागु रामकली महला १ ॥

साचा शब्द अनाहद गाया। अनहद राता सचिसमाया॥
आसणु साधि निरालम ताड़ी। भिक्षा खाय सहजि बीचारी॥
सिङी शब्दु वजाए नादं। पत्र[1] बीचारी आदि जुगादं॥
डंडा ज्ञानु ध्यानु वेष धारी। नानक जोगी जुगति बीचारी॥१॥
शर्म कीआँ मुद्रा माया त्यागी। सिफती रत्ता सदा बैरागी॥
जूए जन्मु न हारै जोगी। आइआँ हर्षु न गइआँ सोगी॥
कर्ण न सुनै काहूँ की निंदा। धन्य नानक ऐसे जोगिंद्रा॥२॥
अकल्प मड़ी महि बहे निराला। अम्रित सचुका पीए पिआला॥
क्षीवा[2] जोगी अम्रित धारे। सचि रसि माता सचु बीचारे॥
निरंजनु प्राणी पारगिरामी। ऐसी जोगी जुगति पछानी॥
सचु बिभूति लाय बैठा ताड़ी। नानक जुगु जुग भगति निरारी॥३॥
आसणु सचु जपु तपु सतु संजम। आसा माहि निरास निरंजनु॥
दे परदक्षिणा गगनंतरि (ताड़ी) चढ़े। अस्थिर जोगी पिंड न पड़े॥
जन्म मरन की चूकी धाई। नानक जोग जुगति की कीमति पाई॥४॥

(१) झोली। (२) अलमस्त।

सुन्न निरंतरि दीजै बंध। उडै न हंसा छिजै न कंध ॥
सहजि गुफा घरि करे निवासु । गुर का शब्दु अतीतु उदासु ॥
गुर का भगतु इंद्री का जती । प्रणवै नानक मुख का सती ॥५॥
गुर का भगतु हिरदे का मुक्ता । हिरदे धर्मु नामु दानु जुगता ॥
ऐसी जुगति जोग कउ पालै । दर्शन पावै सहजि महलै ॥
दर्शनु परसै होय निहालु । अस्थिर भया नाही सिर कालु ॥
कायाँ नगरी भुगति (नामु) पलै पाय । नानक सचु भोजनु तिप्ते अघाय ॥६॥
पंचे इंद्री दृढ़ करि बन्नै[१] । ज्ञानु बानु ले सतसरि सन्नै[२] ।
अहिनिशि ध्यानु निहचलु घरि बहै। सहजि गुफा महि बाहनु[३] अवहै॥
मनु अडोलु गुर शब्दि न डोलै । पीवै अम्रित हरि तत्तु विरोलै ॥
तिहुँका[४] मारि मलावै मानु । नानक जोगी जुगति परधानु ॥७॥
चंचल चाय न खेलै सारी । गुरमुखि त्यागे पर ग्रिह नारी ॥
शब्दु सुरति का करे बषानु । घर ही लाय बहै दीबानु ॥
बिषम जोगु अपरंपर थानु । नानक कथना करड़ा[५] मानु ॥८॥
पूर्ब पछम उत्तर दक्षण । चौंपड़ खेलै गुर कै लक्षण ॥
त्रिकुटी संधि मिलाए बीणा । गुर प्रसादी सहजे लीणा ॥
उतरि अवघट[६] करे निवासु । प्रणवत नानक ताँ का दासु ॥९॥
दक्षण ते पछिम को फिरे । पूर्ब ते दक्षण गउण करे ॥
मान सरोवर करे इस्नानु । गगन मंडलि महि धरे ध्यानु ॥
नउँ घर ढूँढै फिरि घरि आवै । नानक दशवैं सहजि समावै ॥१०॥
ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म का बेता । गगन मंडिल महि राखै चेता[७] ॥
पंच इंद्री करि राखै दृढु । ज्ञान खड़ग जिनै[८] कायाँ गढु ॥

---

(१) बांधे, रोके । (२) संधान करे । (३) गगन मंडल में चढ़ाई योग्य अस्वारी अर्थ नाम स्मर्ण रूपी मंत्र का आवाहन करे । (४) तीन प्रकार की इच्छा है=प्रथमः— किसी वस्तु की प्राप्ति के वास्ते उद्योग करने की । दूसरी—: दुःख और आपति के दूर होने की इच्छा । तीसरीः— किये का फल चाहना-किंतु जब इच्छा अनुसार फल ना होवे तो उस के वास्ते चिंता फिकर करना । सो इन तीन इच्छाओं को मार करि मान (अभिमान) को मर्दन कर डाले ॥ (५) कठिन, मुशकिल । (६) उलटे घाट उतर करि अर्थात् पूरवोक्त प्रकार से परिक्रमा क्रम द्वारा चढ़ कर पिछवाड़ की ओर लौटकर । (७) सम्रृति, याददाश्त । (८) जीतै ।

उलटे पवनु करे अहारु । त्रैगुण मेटे पावै सारु ॥
नानक अगम कथा का अगम बीचारु ॥ ११ ॥
आसा मनसा हउमैं मारी । चउपड़ खेले पकी सारी ॥
गुरमुखि सहजि करे वापार । अनहद वाजै रुणझुणकारु ॥
त्रैगुण मेटि त्रिवेणी मिणै[1] । गुर मुखि नानक त्रिभवणु जिणै ॥
पंज सत्त नौं तेरह साधे । गुर प्रसादी दूता बांधे ॥ १२ ॥
सुरति बिचक्षण सूरा पूरा । गुरकै शब्दि महा बलसूरा[2] ॥
सहजे रहे गंडीर चढ़ाय । दूताँ दुष्टाँ मारे घाय ॥
बंकनाड़ि रसु त्यागि रसाइण । त्रिकुटी फूटी मुक्ति पराइण ॥
त्रिकुटी छूटी शशीअरु फूटा । दुबिधा की मटुकी फूटी भउ छूटा ॥
सुन्न समाय गगनंतरि ताड़ी । बैठा तषति राजा पंचकारी[3]
अदली तषति बहै सचु निआईं । सचु अैसी जोग जुगति की पाई ॥१४
प्रथमै त्यागी हउँमैं शक्ति । तषति निवासी बैठा तषति ॥
सतसर सुभर भरि लीलाणा[4] । अमिउ महाँ रसु पीइ अघाणा ॥
अनहद राता लाल गुलालु । अमर अजोनी सदा निहालु ॥
कायाँ नगरी महि अस्थिर होवै । गुरमुखि जागै सहजे सोवै ॥
चंद सुरज की पाए धुनीआ[5] । हरि कै अँकि समावै गुणीआ ॥
हर्ष न शोक सदा आनंदु । ज्ञान बिबेकी परमानंदु ॥ १६ ॥
परग्रिह जाय न भिक्षा करै । पर रूप न देखै पर द्रब्रु न हिरै ॥
निंद चिंद किसकी करै न ताति । कायाँ अगनि करै निभराँति ॥
सतिगुर पुरुष बोले सत वादी । नानक अस्थिर आदि जुगादी ॥१७॥
चंचल चाय न देखै रंगु । पर नारी नालि न करई संगु ॥
निम्रताभूत[6] उदासी पुरुषा । निझर धार उन्मनि की बर्षा ॥
ब्रह्मज्ञान का देवै बंधु । प्रणवत नानक अस्थिर कंधु ॥ १८ ॥

---

(१) नापे । (२) महान बली, सूरमा । (३) पंच=संत जन, उन की कारी करने वाला, पंच नाम-प्रधानों की सभा का; उस के इक्त्र करने वाला, सचे पारलीमैंट (सत्संग। का पात्शाह न्यायकारी । (४) पूर्ण, समाया हुआ । (५) धूनी यिह तापे कि चांद सूर्ज को एकत्र मिलाकर स्थित रहे भाव चांद सूर्ज की ईंधन ज्योती के कुंड में डाल करि अगनी तपता रहे । (६) दीनता अंगवान ।

ज्ञान खड़ग ले मनु सिऊँ लूझै । मरम दशाँ पंचा का बूझै ॥
पंच मारि घर बहै संतोषि । हउँमैं दुबिधा मेटै दोष ॥
पंच अगनि नहिँ कायाँ जाले । सतवंता सती बहै धर्मशाले ॥
सहजि संतोष की भिक्षा लेइ । नानक जोगी सहजि मिलेइ ॥१९॥
सहजि मिले जोगी परवाणु । सचु जोगु गुर शब्दु नीशाणु ॥
जोग जुगति गुर शब्दी राता । अमरु भया फिरि कालु न खाता ॥
सचु जोगु प्रान पति पूरा । नानक जोगी भया हजूरी ॥ २० ॥
देहि नगर महि खोजै देखै । गुर शब्दी महलु घरु पेखै ॥
दशवैं दुआरै लावै डोरी । गुर का शब्दु अनाहद लोरी[1] ॥
पारसु परसि परम पदु पावै । नानक सुन्न समाधि लगावै ॥२१
नउँ सत चउदह अठ अठारह । तीन चार पंज सत्त बारह ॥
सत्त सताई चौदह हट नाले । गुर पूरे अंतरि देखाले ॥
गुरमुखि खोजि पवित्र शरीरु । नानक पाया गहिर गँभीरु ॥२२
बोलै सत्ति सत्ति सत्ति वादी । दुबिधा दुर्मति गुरमति त्यागी ॥
पंजि दूत करि रखे बंनणु[2] । गगन मंडिल महि रखे थंमणु[3] ॥
गगन मंडल महि अंम्रित कूआ । नानक झोलि महाँ रसु पीआ ॥२३
सुन्न समाधि अनाहदु ध्यानु । अकाल पुरुष पूरा गुर ज्ञानु ॥
अगमु रूप तिसु रूपु न रेखिआ । सतिगुर परचै अंतरि देखिआ ॥
अलिप्तु अदृष्टु तिसु दर्शनु पाया । आदि पुरुष गुर पुरुष मिलाया ॥
आदि निरंजनु मिलिआ सुभाय । नानक साचे मनु पतीआय ॥२४॥
बोलै सति सति सति पूरा । सत्ति पुरुष बचनाँ का सूरा ॥
अगमु निगमु कै वाचै जाणु । गुर का शब्दु सचु नीशाणु ॥
पूरे गुर दीक्षा सचु दीनी । चीनसि आपि तत्तु परबीनी ॥
मनु मानिआ पूरे गुर एका । नानक जोग जुगति सचि टेका ॥२५॥
त्रैबिधि ऊपरि बैठा सचि चउकि[4] । नउँ घरु थापे बैठा नायकु ॥

---

(१) मायावी कलेशों कर कलेशित सुरति रूप बालकी को परचाने वाली रसीली बाणी । (२) बांध रखे । (३) थिरता, वा गगन मंडल में सुरति की थंम्बी देकर रहे । (४) इंगुला, पिंगुला, सुष्मना इन तीनों के संगम पर सहस्रदल कमल ।

नाभ कवल सतसर परगास । सहजि सुभाय रवै गुणतासु[1] ॥
चढ़ि सुमेर बैसै अस्थानु । निझरु झरै धुनि सहजि ध्यानु ॥
चंचल चलतु परम तत्तु हीरा । नानक जोती जोति मिली मनु धीरा २६
उलटि पवनु मनु सुन्न समावै । गगनंतरि बैसै थानि सुहावै ॥
चेतन पुरुष बैठा हुश्यारा । राखै वस्तु अनूप अपारा ॥
अउघट घाट विषम है वाट । गुरमुखि खोले बज्र कपाट ॥२७॥
जोगी जुगति निरंजन रूप । आत्म चीनै देवै धूप ॥
धूपै आपु गगनंतरि चढ़ै । ज्ञान खड़ग ले दूता लड़े ॥
कायाँ नगरी मंगण चढ़ै । नानक अस्थिर कंधु न जोगी पड़ै ॥२८॥
गुर के शब्दि अडोलु न डोलै । मनूआ जीते चउँपड़[2] खेलै ॥
हुकमै बूझै पासा[3] ढाले । रहे अतीतु न पवे जंजाले ॥
थोड़ी निंद्रा अलप अहारु । प्रणवत नानक तत्तु वीचारु ॥ २९ ॥
ग्रिह[4] कुटंब महि रहै अलिप्ता । गुर प्रसादी सदही मुक्ता ॥
अहरणि[5] मत्ति अचलु नहि चलै । पंच अगनि[6] महि पै नहिँ जलै॥
रहे अतीतु जैसे जलि कवलु निराला। ओह दैयावंत हरि दीन दैआला
धीर्जु धर्मु क्षिमा धनु गहे । प्रणवत नानक असथिर घरि बहै ॥३०॥
अस्थिरु मनूआ राखे चीतु । पंजे इंद्री दृढ़ करि जीतु ॥
काँया अगनि ब्रह्म परिजाले । चंचल चीतु न पर घरि चाले ॥
असुरा नदी उपुठी तरे । कवलु विगासे सचु उचरे ॥
जोग जुगति की पाण[7] पछानु । सचु जोगु नानक परवाणु ॥३१॥
बोले सचु जिह्वा सचु सूचा । सचु चढ़ै पउड़ी गढ़ ऊचा ॥
ले मणीआ लालु परोवै कंठि । अवघट घाटि मजनु अठसठि ॥
हीरे रत्न परोवै माला । नानक ध्यानु निरंतरि रहे निराला ॥३२
ज्ञान खड़ग सरु संधे बानु । ऐसी जुगति जोगि परवाणु ॥

(१) गुणों का भंडार (सर्व का आधार)। (२) प्रदक्षणा क्रम से चढ़ाई रूप चौपड़ खेल को खेड कर मन से बाजी जीते। (३) गुरु उपदेश रूपी हुकम को बूझकर उलटा प्रवाह रूप पासा ढाले। (४) शरीर रूपी घर में और इंद्रियां रूप कुटंब में अलेप रहिता है भाव ऐसा मगन (उलटि करि) होता है कि तन के भीतर रहिता भी पीछे की सभ सुध्य बिसार ही देता है। (५) लुहार की अहरणवत अचल। (६) पांच विषय अगनी में पड़कर नहीं जलता। (७) पष, आब।

पंच मारि जुगति पति पावै । अकाशि निरंतरि सुन्नि समावै ॥
निज घरि रहै अकुलीणि[1] निराला। तब दशवै द्वारै खोलै ताला॥
लहै पदार्थु नामु निधानु। सतसर मजनु करि इस्नानु ॥
तत्तु त्रिबेणी त्रिकुटी खूले। नानक तब दर्शन पाया आदि चलूले[2]३३
लोभ लहरि मनु मारि संतोषी। सगल की रेणु न किसे का दोषी ॥
सुरति बिचक्षण पूरी मत्ति। घटि घटि रवि रहिआ सर्बत्तु[3] ॥
सूर्ज एक सगल ज्यौं जोति । राज रंक समसरि द्रष्टोति ॥ ३४ ॥
धावतु बरजि रखे इक ठाँइ । हरि रसु राता निर्मल नाँइ ॥
कंचन कायाँ निर्मल हंस । सची जोति निरंजन अंस ॥
गुर का शब्दु जपि मिटै अँधेर। लक्ष चौराशी चूकै फेरि ॥
आसा मनसा ते रहे निरास । प्रणवत नानक हउँ ताका दास ॥३५॥
प्रथमे सोधे कायाँ सुधु । अम्रित नामु प्राप्त दुधु ॥
सहजि सुभाय होय अम्रित जंमै । अम्रित मथीअै तत्तु अगंमै ।
अम्रित खाय विषु वैरी छेदे[4] । मनु माणकु गुर शब्दी भेदे ॥
अस्थिर कंधु जोगी निज घरि रहै । कउलासण[5] ऊपरि जोगी बहै ॥
शब्दु अनाहद आदि जुगादी । जोगी राता गुर परसादी ॥३६॥
कवलासणु ऊपरि जोगी सचु थानु। तहँ त्रिभवणु प्रीतमु अपरंपर मानु
तहँ अस्थिर जोगी निज घरि बसै। पेखि अचरजु अनाहदि रचै ॥
तहँ ही जोग प्रापति होय। अस्थिर कंधु फिरि मरै न कोय ॥३७॥
सुन्न सरोवर मजनु करै। सहजि गुफा के घर महि बरै[6] ॥
माणक लालु वणजै वणजारा । नानक परखै परखण हारा ॥
खरे षजाने खोटे रालि । सचु सराफु सिञाणे सालि ॥ ३८ ॥
सुन्न गुफा महि ताड़ी लाए । दशवैं दुआरै नादु बजाए ॥
जोति प्रगासु गुर शब्दीं होवै । त्रैगुण मेटे चउथे सुखि सोवै ॥
दे परदक्षणा करे नमस्कार । चढ़ि सुमेरि देखै गैनारि ॥ ३९ ॥

(१) कुल (गोत्र) के अभिमान से रहित। (२) आदि का गूढ़ा लाल रंग भाव परम प्रकाश स्वरूप आदि देव। (३) सर्ब ठौर। (४) बैरी विषय छिन्न भिन्न कर दिये, बल पा सकने को अस्मर्थ कर दिये। (५) सच्चा खंड बिषे। (६) प्रवेश करै।

जपु तपु संजमु सुरति बिचक्षण। सतिगुर साध का एहै लक्षण ॥
सुचेत पिंड न कदे अचेता। साध पिंड कउ सदा ही चेता ॥
चेतन मुखी सदा दरि सुखी। अचेत पिंड नानक दरि दुखी ॥४०
हरि गुण गावै सहज विगासी। गुर कै शब्दि अतीत उदासी ॥
अनहद बाजे रुणझुण कार। त्रिकुटी फूटी मुक्ति[१] द्वार ॥
दशवैं द्वारि चढ़ि अम्रितु पीवै। नानक जुग जुग अस्थिर थीवै ॥४१॥
जपु तपु संजमु सचु निराला। ऐसी रत परोवै माला ॥
रहै इकंति अनग्रिहि[२] निहचलि। एक टेक एकै है अंचलि ॥
जोग जुगति की सची चाला। प्रणवत नानक सुण हो बाला ॥४२॥
सुणि हो अवधू जोगु न पाया। पिंड अपरचे भिक्षा खाया ॥
बिनु गुर शब्दि अँधेरु गुबारु। अंतिकालि शिरि आवै भारु ॥
जोगु न पाया जुगति गवाई। कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥४३॥
बारा पंथी जोगु न पाया। बिनु गुर शब्दे भरमि भुलाया ॥
पाखंड कीने जोगु न होई। बिनु गुर पूरे मुक्त न कोई ॥
बिनु नावैं भेषु करहि बहुतेरे। जोगु न पाया लिखतु लिलेरे[३] ॥४४
रंगि नही राता रसि नही ढलिआ। बिनु गुर शब्दे जलिआ बलिआ॥
कनूआ फाटे शशीअर[४] नही फूटा। जोगु न पाया सुनि अवधूता ॥
माया माँगतु लोभ लुभाना। बिंदु टारि अंति पछुताना ॥
काचो पिंडी शब्दु न चीने। बूडत बूडे भव जल भीने।
पवन साधि साधना नही करी। नहँ सचु अराधिआ तारी[५] तरी ॥४५
अंतरि दुर्मति हउँ मै रोग। बनिता छोडि बद नदरि बयोग ॥
काम क्रोध जले दिनु राति। भूख सहे पर घर की ताति ॥
मूँड मुँडाए जोगु न होई। घरि घरि माँगतु जन्मु गइओई ॥
जोगु न पाया जुगति गवाई। कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥४६॥
जोग अभ्यास षट कर्म कमावहि। दशवैँ द्वारि जीउ पौन चढावहि ॥

(१) सुन्न मंडल। (२) नवग्रहि से निआरा ग्रहि दशम द्वार। (३) मस्तकि। (४) कान पड़वा लीए प्रंतु चंद्र तो ना फूटा भाव सहसदल (ऊंधा) कमल नां खिला। (५) सच अराध के तारी (इस भव जल विषे) नां तरी भाव निज घर में बैठ करि कभी जींते जागते हुए पूर्वोक्त अलिप्तताई का अनुभव नां किया।

तट तीरथ भवैं दिशंतर देश । बिनु शब्दै झूठे सभ भेष ॥
मोन धारी बहु मोनि ध्याना । इक निरहारी सभु झूठ गुमाना ॥
इक तपी हठी हठीए इक टाँगे । इक नगन फिरहिँ सद सदही नाँगे॥
इक फिरै बिब्राणीं[1] मड़ीं मसाणे । बिनु गुर पूरे तत्तु न पछाणे ॥४७॥
गुर प्रसादी रंगि रसि मिलिआ । अमरु भया फिरि पिंड न पड़िआ ॥
सचु जोगु गुर शबिद कमाई । शब्दु अनाहदु किंगुरी वाई ॥
शब्दु अराधिआ पवनु वशि कीता । मनु अजीतु गुर शब्दी जीता ॥
सचु जोगु सतिगुर ते पाया । नानक जोगी सहजि समाया ॥४८
अकुल पुरुष पूरा गुर ज्ञानु । घटि घटि अंतरि ब्रह्मु पछानु ॥
शाष तरोवर जिसकी सभ छाया । अचरज रूप हरि नदरी आया ॥
ऊचारे सुलतानु सहीआ[2] । आपहु आपि उपाए जीआ ॥
अपनी गति मिति आपे जाणै । प्रणवत नानक सद कुरबाणै ॥४९
अगम अगाध मिति किनै न पाई । खंड ब्रह्मंड रहे लिव लाई ॥
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले । अफरिउ[3] कालु शब्दु बिनु पेले[4] ॥
ताँका अंतु न किनहूँ पाया । बहु बिअंत सचु साचि समाया ॥
एहु अंतु न जाणे कोई । नानक कीमति कहणु न होई ॥ ५० ॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरु ग्रंथे बृद्ध रत्नमाला योग समुंद्र बरननं नाम बीस्वों ध्याउ संपूर्णं । २० ॥

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

अध्याय २१

रत्न माला दा जद भोग पया[5] ताँ राजा शिव नाभ हाथ जोड़कर बोलिआ हे गुरू परमेश्वर जी ! इह बुद्धि हमारी महा मलीन है । हुण[6] तुसारे प्रताप ते प्रकाश होंदा देखदे हां । गुरू जी ! कई जन्मांदा जंगाल लगा होया है हुण आप की कृपा द्रिष्टि सें शुद्ध होवेगा । ते सभ ते परावर[7] तुमारी कृपा नाल (अब) ऊची नदरि (सराफी निगह) होवैगी । जां राजे इऊं आखिआ तां श्री सतिगुरू अंतर की जाणकरि इकीस्वां ध्याउ बोले जीव की नसीहत के लायक—

---

(१) बीआबान (घने) जंगलों में । (२) निश्चे करके, निरसंशय, सभ पर विदित है । (३) अभिमानी । (४) पीड़ेगा, (तिल कोल्हूवत) । (५) जब समाप्त हुई । (६) अब । (७) बिबेक अवगाहिनी ऊची द्रिष्टि ।

॥ महला १ ॥

॥ बाय आतश आब षाक इनाँ जाती बुझसी ॥

उम्मति पैदे पंज[1] टोल हदर्थ पाक षुदाय ।
जे करि वडी छाल देइ भी फिर धरती पाय ॥
जे करि उडै पंखणू पाणी पउण रजाय ।
सो किस जेवड[2] आखीऐ किसनोँ पुछाँ जाय ॥
वडी[3] वडा वड मेदनी हउमै करि करि जाय ।
पुछे चारे बेद मैं लेखे अंतु न पाय ॥
चार कतेबाँ पुछीआँ कीमति कहणु न जाय ।
नवखंड पुछे मेदनी इकदूँ[4] इक चढ़ाउ ॥
सायर सभ[5] ढँढोलिआ बोहिथ दिल द्रयाउ ।
नदीआँ नाले वसिआ अठसठि तीर्थ न्हाय ।
वण तृण त्रिभवण वसिआ कउड़ा मिठा खाय ॥
सप्त पतालाँ देखिआ असमाणी अस्माणु ।
नानक भउ करणी जे मिलै सच रहै ईमाणु ॥ १ ॥
वीर सलामा[6] लेषु बरा षुदाई सच चउ दरगह कितु विशेष ।
जेहा बीजै सो लुणै हुकमी मिलै सु खाय ।
नानक सचे नामु बिनु बद्धा दुःख सहाय ॥ २ ॥
षालक कूँ[7] सुब्हान गोर निमाणी अंधगी[8] ।
कुदरति के नीशाणु आए हुकमु फरेशते कुदरति के अउगान[9] ॥
तर्गश गुरजाँ छहूीआँ खन्ने हत्थ कमाण ॥

---

(१) पांच फरिश्ते रूप उम्मति (निज बंश संप्रदाय) जिस हज़रत भगवंत ने पैदा (उत्पन्न) किये हैं, उसको टोलो भाव ढूंढो। (२) किस के बराबर, कितना बड़ा। (३) बड़ी विस्तार वाली मेदनी (भूमि) संयुक्त बड़ा (राजा) जो हो उस से भी बड़ा महाराजा होता है। सो बृथा ही अभिमान कर करके नष्ट हो जाता है। भाव ऐसे २ बड़े प्रतापी भी जब नही रहने पाते तो तुच्छ लोगों की क्या कहनी है। (४) एक से एक बढ़ा चढ़ा है। (५) सर्ब समुद्र भाव समग्र संसार में ढूंढा तो अपना दिल ही इस सागर से पार उतारने वाला जहाज़ निकला। (६) हे भ्राता सलाम होवे उस भगवंत को, वास्ते उस (मालक) के सच्च कहो। (७) कर्त्तार को ही स्मर्ण करो। (८) अंधेरी। (९) सिपाही, मददगार।

साँगा[१] सिपर आतशी पवन गलीं जंजीर ।
हुकमी बंन्न चलाया निंदक ज्यों बेपीर ॥
नानक दरगह मंन्नीअहि सचु नामु कलि धीर ॥ ३ ॥
सिंघ सिआलहुँ[२] सर्पहुँ डरपहु सो घर कीना गोर ।
घट्टे खउरू[३] कर गए दुर्मत ठंढे वैर ।
भाई सके मुहब्बती जेतड़े फथिआ[४] देन दुआय ।
नानक गल्लाँ कूड़ीआँ सच्चा एक षुदाय ॥ ४ ॥
गुनाही बन्नि चलाया जेते कीए बिकार ।
गुनहा[५] संदी पोटली चुक न सकाँ भारु ॥
अग्गै डूँगर[६] धुंधली पिछै सिर जंदार[७] ।
अगै सागर आतशी क्योँ करि उतराँ पार ॥
कऊए मारहि सीस चढ़ि वर्खनि ज्योँ अँगिआर ।
नानक किथै छुट्टीऐ हुकमी होवै मारि ॥ ५ ॥
चशमे[८] कढे अउगुणी अंध घोरु अंधयारु ।
कंन्नी कोलू पीड़ीऐ नासीं गंध गुबारु ।
जीभ कटाए कउल[९] सिर सचु विसारण हारु ।
कोपुर[१०] उत्तै ढाढड़ी जलदी करै पुकार ॥
त्रिश्ना रख न सकए बेपीराँ गावारु ।
अउगुण गुणी बषशीअन नानक सोई सार ॥ ६ ॥
ज्योँ तिलु तावण पीड़ीऐ पिंजै तंद चढ़ाइ ।
कागत वाँगी कुटीआ मुँगलीए इशकु[११] चढ़ाइ ॥
लोहे वाँगू ताईऐ भषै[१२] तै बिललाइ ॥

---

(१) दो या तीन ऊंगली खड़ी करने से जैसा आकार बनता है इस प्रकार का शस्त्र। (२) गीदढ़ों से। (३) अहंकार बशि हूए; षरमस्ती कर गए। (४) फ़त्त्वा=अंत समय 'यत्र आया तत्र गता' इस प्रेत मंत्र उच्चारण पूर्वक तृण तोड़ने का श्लोक। (५) गुनाहों की गठड़ी। (६) आगे तो धुंदूकार मय बड़ा ऊचा पर्वत है। (७) जिंद का अरि (शत्रु) काल। (८) आंखे। (९) बचन (प्रतिज्ञा) के नां पालने के कारण। (१०) कपाल क्रिया करते समय जब जलती हुई म्रितक देह के खोपड़े पर चोट चलाई जावेगी तो इस प्रकार वुह शब्द करेगी मानो कलावंत (डूम) का बाजा बज रहा है। (११) शिकंजों में खैंचेंगे, कागज वत मुंगलीओं से कूट २ कर। (१२) तपेगा और बिरला करेगा।

संन्नी[१] पकड़ि चलाईऐ अहिरणि सिर वीचार ।
घणीअर[२] मारे तित ताल ज्यौं कहै लोहारु ॥
नानक सच्चे नामु बिनु ना उरवार न पारु ॥ ७ ॥
पैरीं कंडे सार[३] दे सिर तपे आकाशि ।
पातालौं पति उत्तरे परत्रिय रत्ता मास ।
थंम्माँ नालि लगाईऐ कोइ न आवै पासि ॥
भी फिरि[४] लाय विछोड़ीऐ तोबा करै फरीआदि ।
अउगणिआरे[५] नानका सभे कोई वाद ॥ ८ ॥
भठी अंदरि पाईआ मिली अगन सलाइ[६] ।
बालू रेत भखाईआ दिचै अगनि जलाइ ॥
अंदर भुजै धाण ज्यौं तड़फै तै बिललाय ।
आपि बषशै नानका किसनो कहीऐ जाय ॥ ९ ॥
इखु जिवैं रस कढीऐ सभ सिर आईआँ भार ।
खाणा पीणा पैनणा मन की षुशी षुआरु ॥
मनथैाँ[७] लेखा मँगीऐ जिन कीता वापारु ।
हथाँ पैराँ चाकरी करि फुरमाई कारु ॥
जीभ पुकारे दरि खड़ी चखि चखि साद विकारु ।
कंन्न देन जगाहीआँ मनि झूठा कूड़िआरु ॥
नासाँ लेइण[८] मुकरे[९] अंधे दे सिरि मारु ।
इंद्री सभ जग मोहिआ बद्धा जमु कै दुआरु ॥
रल[१०] करि विद्धुण सुहिआ आरण ज्यौं लोहारु ।
नानक सतिगुर सहजि न भेटिआ नाँ उरवार न पारु ॥ १० ॥
सत्तर वेराँ रेतीऐ तीर जिवैं कलबूतु[११] ।
सोने वाँगी ढालीऐ सहजे इहु कंम्म कीतु ॥

---

(१) जंबूर । (२) धर्म राय (लोहार) जिस प्रकार आज्ञा करेगा उसी तरह पर बदानों की एक तार चोट पर चोट मारेंगे । (३) फुलादी लोहे के कांटे पांवों में चुभेंगे । (४) लगा लगा कर फिर पीछे हटाय २ कर तप्त थंम्मों से लगावेंगे । (५) अपराधी । (६) तप्त की हुई सूलाखें देवेंगे । (७) मन के पास ते । (८) नेत्र । (९) काम करके फिर जाना । (१०) सभी इंद्रिय आदि ने मिल कर दुःखी कर डाला । (११) लिंग शरीर—जिसका कि पूर्ण यथार्थ ज्ञान हुए बिना कदाचित भी बीज नाश नहीं हुआ करता ।

घोड़े वाँग फुलाईआ अजगर जीनु सहाइ ।
नानक बद्धा काल का फिरि फिरि आवै जाय ॥ ११ ॥
जलि थलि दुशमन केतड़े[1] व्रण त्रिण मारण हार ।
घरि घरि वैरी नानका सच्ची सुरत अपार ॥ १२ ॥
त्रै जम जोहिन लोइणी रक्त नेत्र विकालि ।
सभ जगु तिनका भक्खु[2] है निर्दया जम कालि ॥
नानक पकड़ चलाया हुकमी हुकमि वीचारि ।
इहु तनु अगै तूँ षसम तूँ रखहिं तूँ मारि ॥ १३ ॥
मात पिता न बँधपो ना बईअर[3] ना वीरु ।
नाँ सुत्त नाँ लखमी क्यौं करि बँधा धीरु ॥
नाँ तर्गश न धनषड़ो नाँ सिपर[4] तलवारि ।
तपै कड़ाहा अहिनिसी[5] देखहु गुर वीचारि ॥ १४ ॥
धर्म घोड़ा सत जीन करि जति की पाखर[6] मान ।
पंच तत्तु सर बाणि खगु सिपरि सचु निदानि ॥
नानक गुरमुख सचु मनि दरगहि पावहि मानि ॥ १५ ॥
ब्रह्मा आइ न आखसी वेद पढ़ै मुख चारु ।
किश्न[7] किसंदा बपुड़ा जि हुकमु लए अवतार ॥
सिउ[8] सालाहिन दरिखड़े देवी देव असंख ।
अपुठा होय त झुर मरां सचु सदा बषशिंदु ॥ १६ ॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरु ग्रंथे जीव नसीहत करण नाम इकीस्वों ध्याउ संपूर्ण ॥ २१ ॥

---

(१) कितने ही । (२) भोजन । (३) स्त्री । (४) ढाल । (५) रात दिन (एकसार) । (६) ऊपर डालने वाला पलाणा घोड़े का । (७) कृष्ण किसका बेचारा है । (८) शिवजी कई एक ।

शुद्धि पत्र

नं० पृष्ठ	नं० पौड़ी	नं० टिप्पण	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
२	सूचीपत्र	४ सत्र	सुन्त ते उत्पति	सुन्न ते उत्पति
,,	,,	६ ,,	अध्माय	अध्याय
१४०		(१) सत्र २	भा——————ह	भी——————हैं
		(७) सत्र ५	एश्वय	ऐश्वर्य
		(१०) सत्र ७	नश्चे	निश्चे
१४५		(६) सत्र २	साकार	सा कार
१६०	८		चौषड़	चौपड़
१६६	३०		भातरि	भीतरि
१७०		(१)	उधर से बंद	इधर से बंद
१७५		(३)	बूली में	धूली में
१८७	२५		तहिं तहां तंबू	नहिं तहां तंबू
(पृष्ठ नं)			१७८	१८७
१६१		(१) सत्र ६	लोक रत्ताथ	लोक रत्तार्थ
२००		सत्र १५	बात एक हा है	बात एक ही है
,,		,, ३२	ज्ञान (गन)	ज्ञान (गुन)
२२४		(२)	'आंख' पाठ होने में	'आख' पाठ होने में
२४०	५१		कालु जालु तसु	कालु जालु तिसु
२४८	१७ कड़ी ४		क्योंकार	क्यों करि
,,	१८ कड़ी १		बिनु जग आपु	बिनु गुर आपु
२६३	६ कड़ी ३		बै न मरहिं तू ठगीए	बै न मरहिं न ठगीए
२६७		(३)	सिद्धां का	सिद्धांत को
२७०		(५)	(उलाट करि)	(उलटि करि)
२८०		(५)	सच्चा	सच्च
२८४	४ कड़ी ३		फथिआ[8]	फाथिआ[8]
,,		(१२)	बिरला	बिरलाप

पाठक महाशयों की सेवा में प्रर्थना है कि इस पुस्तक-माला के जो दोष उनकी दृष्टि में आवैं उन्हें हमको कृपा करके लिख भेजें जिस में वह दूसरे छापे में दूर कर दिये जावैं और जो दुर्लभ ग्रंथ संतबानी के उन को मिलैं उन्हें भेज कर इस परोपकार के काम में सहायता करैं।

यद्यपि ऊपर लिखे हुए कारनों से इन पुस्तकों के छापने में बहुत ख़र्च होता है तौ भी सर्व साधारण के उपकार हेतु दाम आध आना फ़ी आठ पृष्ठ रायल से अधिक किसी का नहीं रक्खा गया है। जो लोग सबस्क्रैबर अर्थात पक्के गाहक होकर कुछ पेशगी जमा कर देंगे जिस की तादाद दो रुपये से कम न हो उन्हें एक चौथाई कम दाम पर जो पुस्तकें आगे छापैंगी बिना माँगे भेज दी जायँगी यानी रुपये में चार आना छोड़ दिया जायगा परंतु डाक महसूल उनके ज़िम्मे होगा और पेशगी दाम न देने की हालत में वी० पी० कमिशन भी उन्हें देना पड़ेगा। जो पुस्तक अब तक छप गई हैं (जिनके नाम आगे लिखे हैं) सब एक साथ लेने से भी पक्के गाहकों के लिये दाम में एक चौथाई की कमी कर दी जायगी पर डाक महसूल और वी० पी० कमिशन लिया जायगा।

अब दादू दयाल की बानी हाथ में ली गई है।

प्रोप्रैटर, बेलवेडियर छापाख़ाना,

जून, १९१३ ई०   इलाहाबाद।

फ़िहरिस्त छपी हुई पुस्तकों की

तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... २)

,, ,, रत्न सागर मय जीवन चरित्र ... |||≈)

,, ,, घट रामायन दो भागों में, मय जीवन-चरित्र पहिला भाग

,, ,, दूसरा भाग ... ...

गुरु नानक साहेब की प्राण-संगली सटिप्पण (प्रथम भाग) जीवन-चरित्र सहित ... १।

गुरु नानक साहेब की प्राण-संगली सटिप्पण (द्वितीय भाग) ... ...

ग़रीबदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... |||-)

कबीर साहेब का साखी-संग्रह (२१५२ साखियाँ) ... ... |||)||

कबीर साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ दूसरा एडिशन ... ||)

,, ,, शब्दावली भाग २ ... ... ||=)

,, ,, शब्दावली भाग ३ ... ... |)

,, ,, ज्ञान गुदड़ी व रेख़ते ... ... ≡)

,, ,, अखरावती ... ... -)

,, ,, अखरावती का पूरा ग्रंथ जिस में १७ चौपाई दोहा और सोरठा विशेष हैं ... ... -)||

धनी धरमदास जी की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... |=)

पलटू साहेब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ||)

पलटू साहेब की शब्दावली, भाग २ ... ... |-)||

चरनदास जी की बानी और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ... ||)||

,, ,, ,, भाग २ ... ... |≡)||

रैदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... |-)||

जगजीवन साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ... ||-)

,, ,, शब्दावली भाग २ ... ... ||-)

दरिया साहेब (बिहार वाले) का दरियासागर और जीवन-चरित्र ... ... |-)

,, ,, के चुने हुए पद और साखी ... ... ≡)||

दरिया साहेब (मारवाड़ वाले) की बानी और जीवन-चरित्र ... ... |)||

भीखा साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... |≡)

गुलाल साहेब (भीखा साहेब के गुरू) की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ||-)||

बाबा मलूकदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ≡)

मीरा बाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... |-)

सहजो बाई की बानी (विशेष नये पदों के साथ) और जीवन-चरित्र ... ... |-)

दया बाई की बानी और जीवन-चरित्र ... ... =)||

गुसाँई तुलसीदास जी की बारहमासी ... ...)||

यारी साहेब की रत्नावली और जीवन-चरित्र ... ... -)||

बुल्ला साहेब का शब्दसार और जीवन-चरित्र ... ... =)||

केशवदास जी की अमीघूँट और जीवन-चरित्र ... ... -)

धरनीदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... |)

अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र अँग्रेज़ी पद्य में ... ... =)

मूल्य में डाक महसूल व वाल्यू पेअबल कमिशन शामिल नहीं है।

मनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।